डॉ. मोहनलाल रत्नाकर



पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

कहानीकार : उपन्यासकार

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

कहानीकार : उपन्यासकार

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

कहानीकार : उपन्यासकार

डॉ० मोहनलाल 'रत्नाकर'
वरिष्ठ प्रवक्ता, भगतसिंह कालेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

ऋषभचरण जैन एवम् सन्तति
नई दिल्ली □ मसूरी

संस्करण	१९८०
प्रकाशक	दिग्दर्शन चरण जैन ऋषभचरण जैन एवम् सन्तति २१, दरियागंज, नई दिल्ली-२ ११, गार्डन रीच, कुलड़ी, मसूरी
मूल्य	तीस रुपये
मुद्रक	भारती प्रिंटर्स शाहदरा, दिल्ली-११००३२

Pandey Bechan Sharma 'Ugra', Kahanikar : Upanyaskar
by Dr. Mohanlal 'Ratnakar' Price Rs. 30 00

आमुख

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' हिन्दी के तेजस्वी लेखक एवं शैलीकार हैं। उन्होंने हिन्दी-जगत् को अनेक मनोरंजक तथा उत्तेजनापूर्ण रचनाएं प्रदान की हैं; जिनमें समाज के कुत्सित अंगों को नज़दीक से देखने-दिखाने का साहसिक प्रयत्न किया गया है।

प्रस्तुत कृति में 'उग्र' के व्यक्तिगत जीवन, उनकी प्रायः सभी कहानियों और उपन्यासों का आलोचनात्मक परिचय दिया गया है। लेखक ने 'उग्र' जी के व्यक्तिगत जीवन तथा परिवेश के सन्दर्भ में उनके कथा-साहित्य की मूल-चेतना तथा अभिव्यंजना-पक्ष का तटस्थ भाव से उद्घाटन किया है।

मुझे आशा है कि हिन्दी-जगत् डॉ० मोहनलाल 'रत्नाकर' की इस रचना का स्वागत करेगा।

मेरी शुभकामनाएँ—

हिन्दी-विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय

नगेन्द्र

विषय-सूची

प्राक्कथन

लौह-लेखनी के धनी पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' व्यक्तिगत जीवन में ही नहीं, साहित्यिक जगत् में भी उपेक्षित ही रहे। वे विद्रोही थे, लीक छोड़कर चलने वाले थे और उसका मूल्य भी उन्हें चुकाना पड़ा। वे एक संगठित आन्दोलन के शिकार हुए। फिर भी उनके 'उग्र व्यक्तित्व' ने उन्हें सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक रूढ़ियों, अन्धविश्वासों एवं विकृतियों के विरुद्ध क्रांति करने के लिए निरन्तर प्रेरित किया। वे अपनी 'उग्रशैली' में, देश एवं समाज के यथार्थ जीवन को लेकर, ज्वालामय रचनाएं लिखते ही रहे।

हिन्दी की पुरानी पीढ़ी के विशिष्ट लेखक और शैलीकार पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने हिन्दी जगत् को विभिन्न, विवादास्पद, मनोरंजक और उत्तेजनापूर्ण रचनाएं दी हैं। उन्हें 'उग्र' का विद्रोही, विस्फोटक और आग्नेय व्यक्तित्व प्राणवान् बनाता है। वे ऊंची कल्पनाओं और खोखले आदर्शों में अविश्वास प्रकट करते हैं। उन्होंने समाज के कुत्सित अंगों को निकटता से देखना और दिखाना अनिवार्य समझा है। उनका विरोध स्वस्थ समाज-व्यवस्था से नहीं, वरन् पतित, गलित और ध्वस्त गतिविधियों से है, जो मानव को दानव बनाती हैं। वे अन्याय, अनाचार और शोषण के विरुद्ध बम्बार्डमेंट करने में देश और समाज का मंगल समझते हैं। उनकी रचनाएं गर्हित यथार्थ के उद्घाटन को प्रधान विषय बनाती हैं, इसीसे प्रेमचन्द-युग में उनका अलग व्यक्तित्व उभरता है। उनकी शैली की ओजस्विता तथा सम्मोहनशक्ति उन्हें सभी लेखकों से पृथक् कर देती है। उनका अपना व्यक्तित्व है, जो उनके साहित्य के विषय-चयन और शैली-विधान दोनों में परिव्याप्त है। इस प्रबन्ध में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के

व्यक्तिगत जीवन और उनके सम्पूर्ण कथा-साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसका प्रधान उद्देश्य 'उग्र' की कहानियों एवं उपन्यासों की मूल-चेतना और उसके अभिव्यंजना पक्ष का तटस्थ उद्घाटन करना है। मैंने 'उग्र' के कथा-साहित्य का समुचित विश्लेषण करने के लिए ही उनके व्यक्तिगत जीवन तथा परिवेश का विवेचन किया है। वस्तुतः साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है और उसमें साहित्यकार का निजी जीवन तथा सामाजिक जीवन साकार हो उठता है। युगीन परिस्थितियां कभी प्रत्यक्ष और कभी अप्रत्यक्ष रूप से उसकी रचनाओं को प्रभावित करती हैं।

प्रस्तुत प्रबन्ध में छः अध्याय हैं। 'प्रथम अध्याय' में, उग्र और उनके साहित्य के निर्मायक तत्त्वों का दिग्दर्शन कराया गया है, जिससे उनके कथा-साहित्य के सबल और दुर्बल पक्षों के मूल उत्स को भली भांति समझा जा सके। इस अध्याय की अधिकांश सामग्री मुझे उग्र कृत 'अपनी खबर' और 'व्यक्तिगत' नामक पुस्तकों से मिली है। 'अपनी खबर' उनकी आत्मकथा ही नहीं, वरन् हिन्दी की अमर गद्य-पुस्तक है, जिसमें लेखक ने अनेकों की 'खबर' ली है। 'व्यक्तिगत' पुस्तक के संस्मरण, उनके साहित्यिक व्यक्तित्व को प्रकाश में लाते हैं। उग्र के जीवन और साहित्य का प्रधान गुण सत्य का उद्घाटन है, इसलिए मैंने अन्तःसाक्ष्य से सम्बद्ध तथ्यों को उचित महत्त्व देना अनिवार्य समझा है।

'द्वितीय अध्याय' में उनके सम्पूर्ण कथा-साहित्य के विधेय और विधान का आलोचनात्मक परिचय दिया गया है। इस अध्याय को दो भागों में विभाजित किया गया है, प्रथम भाग में उनकी कहानियों और द्वितीय भाग में उपन्यासों को लिया गया है। उग्र के आरम्भिक कहानी-संग्रह ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त कर लिए गए थे। देश के स्वतन्त्र होने के उपरान्त, उनके कुछ कहानी-संग्रह तो अपने मूल रूप में ही प्रकाशित हुए, किन्तु अधिकांश नए रूप में प्रकाशित हुए। नए कहानी-संग्रहों में, उनकी कहानियों का काल-क्रम के अनुसार नहीं, वरन् प्रवृत्ति के अनुसार संकलन हुआ है। उग्र के उपन्यास अपने मूल रूप में प्रायः सुरक्षित हैं, इसलिए उनका काल-क्रम से विवेचन सुलभ हो सका है। किन्तु कहानियों के विवेचन

में ऐसा नहीं हो सका है। उनका आलोचनात्मक परिचय नए कहानी-संग्रहों के आधार पर दिया गया है।.

'तृतीय अध्याय' में उग्र के कथा-साहित्य की समष्टि-चेतना के विविध रूपों का विवेचन हुआ है। इसमें यह भी दिखाने का प्रयास किया गया है कि उग्र की समष्टि-चेतना का क्षेत्र यद्यपि व्यापक है, वे प्रेमचन्द के समान ही देश और समाज की विविध समस्याओं का चित्रण करते हैं, तथापि उनका दृष्टिकोण प्रेमचन्द्र से भिन्न है और वे सामाजिक जीवन के कुत्सित अंगों पर ही अधिक विस्तार के साथ लिखते हैं। उचित उपचार के लिए, वस्तुस्थिति का नग्नरूप उपस्थित करना ही, उन्हें अभीष्ट है। वे अपने युग की आदर्शवादी प्रवृत्ति को आंशिक रूप में ही ग्रहण कर सके हैं। उनका विद्रोही व्यक्तित्व, सामाजिक अनाचारों और व्यभिचारों को अनावृत्त करने में अपनी लेखनी की सार्थकता समझता है।

'चतुर्थ अध्याय' में विभिन्न विद्वानों के मतों को दृष्टि में रखकर, उग्र के दृष्टिकोण को स्पष्ट किया गया है। इसमें प्रकृतवाद और यथार्थवाद के आलोक में यह दिखाने का प्रयास भी किया है कि आलोच्य कथाकार अनेक वादों के तत्त्वों को एक साथ ग्रहण करता है, किन्तु उसका प्रधान दृष्टिकोण यथार्थवादी ही है। वह 'कटु सत्य' कहने में आत्म-संतोष का अनुभव करता है।

'पंचम अध्याय' में शिल्प-सम्बन्धी मुख्य उपकरणों, वस्तु-विन्यास, पात्र एवं चरित्र-चित्रण, भाषा और संवाद की दृष्टि से उग्र की कहानियों और उपन्यासों का विश्लेषण किया गया है। उनके शिल्प की सार्थकता इस कसौटी से परखी गई है कि वह विषय के अधिक से अधिक अनुकूल होकर प्रभावपूर्ण सम्प्रेषण में कितना सफल रहा है। उसमें परम्परा और प्रयोगों के विवेचन के साथ कथाकार की निजी उपलब्धियों का उल्लेख भी किया है।

'षष्ठ अध्याय' में विषय-निरूपण में हास्य-व्यंग्य की उपादेयता आदि के विचार से, उग्र के कथा-साहित्य पर प्रकाश डाला गया है। इसमें यह भी प्रदर्शित किया गया है कि कथ्य के अनुसार ही उग्र हास्य की सीमा को लांघकर कटु, तीखा और तिलमिलाने वाला व्यंग्य-विधान अधिक समीचीन

समझते हैं। उनका उद्देश्य सामाजिक विद्रूपताओं को दिखाना ही है। वह अपने आलम्बनों के प्रति घृणा और विद्रोह-भाव जगाना चाहते हैं।

'उपसंहार' में पूर्वलिखित अध्यायों का निष्कर्ष और मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है, जो मुख्यतः उग्र के कथा-साहित्य के विधेय के विधान की विशिष्टताओं से सम्बद्ध है।

यह प्रबन्ध पूज्य गुरुवर डॉ॰ नगेन्द्र की छत्रछाया और माननीय डॉ॰ सत्यपाल चुघ के निर्देशन में सम्पन्न हुआ है। इस प्रबन्ध में जितने भी सारग्राही तत्त्व हैं, वे निश्चित रूप से उन्हीं के सफल निर्देशन, सुलझी हुई समीक्षा-दृष्टि तथा प्रेरणा के परिणाम हैं। उनकी मर्मज्ञता ने जहां मुझसे सच्चे अर्थों में शोध-कार्य कराया वहां उनके वात्सल्यमय व्यवहार तथा उदार व्यक्तित्व ने शोध जैसे शुष्क कार्य-भार को कभी अनुभव तक न होने दिया। मैं उनके प्रति मौन कृतज्ञता व्यक्त करता हूं।

अन्त में, मैं उन सभी विद्वानों के प्रति आभार प्रदर्शित करता हूं, जिनके सम्पर्क अथवा ग्रन्थों या लेखों से मुझे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहायता प्राप्त हुई है।

भगतसिंह कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मोहनलाल 'रत्नाकर'

उग्र और उनके साहित्य के निर्मायक तत्व

हिन्दी की पुरानी पीढ़ी के विशिष्ट लेखक तथा शैलीकार पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने हिन्दी जगत् को विभिन्न और विवादास्पद, मनोरंजक और उत्तेजनापूर्ण रचनाएं दी हैं। संस्मरण, जीवन-अनुभव, भाव-कथा, प्रतीक-कथा, स्कैच, यात्रा-विवरण आदि कथा-शिल्प के अनेक रूपों का प्रयोग-उपयोग उन्होंने अपनी रचनाओं में किया है। उनकी भाषा-शैली व्यंजनाओं, लक्षणाओं एवं वक्रोक्तियों से समृद्ध है। समाज के विभिन्न दुर्गुणों, कुरूपताओं तथा दुर्नीतियों पर कटाक्ष करनेवाली उनकी शैली 'उग्र-शैली' के नाम से प्रसिद्ध है।[1]

साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है, उसमें साहित्यकार का निजी जीवन और सामाजिक जीवन साकार हो उठता है। उसके निर्मायक तत्वों में साहित्यकार का जीवन, उसका परिवेश और युगीन परिस्थितियां कभी प्रत्यक्ष और कभी अप्रत्यक्ष रूप में कारण बनती हैं। 'उग्र' और उनके साहित्य के निर्मायक तत्त्वों पर विचार करते समय हम यही देखना चाहेंगे कि आलोच्य साहित्यकार को साहित्यिक जीवन की ओर लाने वाले तथा प्रोत्साहन देनेवाले मुख्य कारण कौन-कौन से थे? उसका साहित्य अपने युग के साहित्य से पृथक् क्यों हो गया? उसने जीवन के कुत्सित अंगों पर ही अधिक क्यों लिखा, उसमें विद्रोह-भाव की प्रबलता क्यों रही?

'उग्र' का जन्म विक्रमीय सम्वत् १९५७, पौष शुक्ल अष्टमी की रात साढ़े आठ बजे, मिर्ज़ापुर ज़िले की चुनार तहसील के सद्दूपुर नामक मुहल्ले में श्री बैजनाथ पाण्डेय कौशिक गोत्रोत्पन्न सरयू-पारीण ब्राह्मण के

---

१. उग्र : 'पोली इमारत' प्रकाशकीय, पृ० १

घर हुआ। इनके पिता श्री बैजनाथ पाण्डेय बड़े तेजस्वी, सतोगुणी, वैष्णव-हृदय के थे। इन्होंने अभी तुतलाना भी नहीं सीखा था कि इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। इनकी माता का नाम जयकली था। वे परम उग्र, कराल-क्षत्राणी स्वभाव की थीं, परम क्रोधिनी होने के साथ वे भोली भी कम न थीं। जब कभी किसी बेटे को रुपया भुनाने को देती थीं, वह साढ़े पन्द्रह आने ही लौटाता था और दूसरा बेटा पैसे पुनः गिनने के बहाने पन्द्रह आने को ही सोलह आने बताकर अपना उल्लू सीधा कर लेता था। वे परिश्रमी भी बहुत थीं और लम्बे-चौड़े दरिद्र परिवार के भरण-पोषण में ही घुल गईं। उग्र के स्वभाव की उग्रता जो उनके सम्पूर्ण साहित्य में परि-लक्षित होती है, वह सम्भवतः उन्हें अपनी मां से ही संस्कार रूप में प्राप्त हुई थी।

'उग्र' के बहन-भाइयों की संख्या एक दर्जन तक पहुंची परन्तु उनमें अधिकतर उत्पन्न होते ही अथवा वर्ष-दो वर्ष के होते-होते ईश्वर के प्यारे हो गए। पहले भाइयों के नाम उमाचरण, देवीचरण, श्रीचरण, श्यामचरण, रामचरण आदि थे। बच्चों की अकाल मृत्यु से भयभीत होने के कारण, 'उग्र' के जन्म पर थाली तक न बजाई गई और जन्मते ही इन्हें बेच दिया गया। उनके अपने शब्दों में—'सो, जन्मते ही मुझे यारों ने बेच डाला। और किस कीमत पर? महज़ टके पर एक। उसका भी गुड़ मंगाकर मेरी मां ने खा लिया था। अपने पल्ले उस टके में से एक छदाम नहीं पड़ा था, जो मेरे जीवन का सम्पूर्ण दाम था।'[१] उग्र का बेचन नाम जन्मते ही बिकने का सूचक है। यह नाम उत्तर भारत के पूर्वी जिलों में चलनेवाला नाम है, अहीरों, कोरियों आदि निम्न-वर्गीय जातियों में प्रचलित है। ब्राह्मण वंश में जन्म लेने पर भी इनके परिवार वालों ने यह मन्द नाम इन्हें प्रदान किया, जिससे ये अकाल मृत्यु का ग्रास न बनें। यह नाम तिलस्मी गंडा बना और ६७ वर्ष तक ये जीवन-संग्राम के योद्धा बने रहे, काल को इनका मन्द[२] नाम पसन्द न आया और ये उसका ग्रास बनने से बचते रहे। अपने 'उग्र'

१. उग्र : 'अपनी खबर' प्रथम संस्करण, पृ० १८
२. वही, पृ० १८

उपनाम के विषय में ये लिखते हैं—'उग्र' उपनाम तो मैंने राष्ट्रीय गान-द्वन्द्व में सम्मिलित होने से पूर्व चुना था। आज मुझे अपने लिए उपनाम चुनना हो, तो सम्भव है—बुरा न होने पर भी—'उग्र' मैं न चुनूं। लेकिन आज से चालीस वर्ष पूर्व राष्ट्र-भक्त लेखक ऐसे कर्कश उपनाम इसलिए चुना करते थे कि बलवान ब्रिटिश साम्राज्य के नृशंस शासक नाम ही से दहल जाएं। शायद शक्तिहीनता छिपाने के लिए लोग प्रचण्ड नामोपनाम चुना करते थे, जैसे 'त्रिशूल', 'वज्रपाणि', 'धूमकेतु', 'भीष्म', 'भीम', 'भयंकर', 'प्रलयंकर' या अपना ढाई अक्षर का 'उग्र'।[१]

उग्र के आरम्भिक जीवन, व्यक्तित्व और साहित्य पर उनके बड़े तथा मझले भाइयों का बहुत कुछ प्रभाव पड़ा। बालक बेचन केवल दो वर्ष छः माह के थे कि उनके पिता जी का देहान्त हो गया। नेता के अभाव में अराजकता का बल पकड़ना भी स्वाभाविक था। उनके मझले भाई पिता-मरण के कुछ ही दिन के अन्दर बड़े भाई तथा भाभी से लड़कर अयोध्या भाग गए और साधु बनकर मण्डलियों में अभिनय करने लगे। बड़े भाई ने अपनी पत्नी और माता के आभूषण जुआ-यज्ञ में स्वाहा कर दिये, घर के बरतन-भांडों तक को बेच डाला। धार्मिक ग्रन्थों, भागवत, गरुड़पुराण, रामायण, गीता आदि को भी बेच डाला और उनसे मिली धन-राशि को जुआ, गांजा-चरस के धुएं में उड़ा दिया। इस सम्बन्ध में वे लिखते हैं—"जब भी मेरे घर में जुआ जमता, भाई की आज्ञा से दरवाज़े पर बैठकर मैं गली के दोनों नाके ताड़ता रहता कि पुलिस वाले तो नहीं आ रहे हैं। ज़रूर इस ड्यूटी के बदले पैसा-दो-पैसा मुझे भी किसी परिचित जुआरी से मिलता रहा होगा।"[२] उग्र के बड़े भाई घोर पियक्कड़ तथा वेश्यागामी थे, वे मां और पत्नी को मकान के पिछले खण्ड में कैद कर, सुरा-सुन्दरी तथा जुआ की कुटेव के शिकार रहे। उनका प्रभाव बालक बेचन के संस्कारों पर इतना अधिक पड़ा कि वे अपने जीवन तथा साहित्य में इन बुराइयों को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उतारे बिना न रहे। अक्षरारंभ से पहले उनके कान

---

१. 'अपनी खबर', पृ० १०८
२. वही, पृ० २४

में 'वेश्या' या 'रण्डी' शब्द पड़ गया था और उसका आकर्षण अन्त तक बना रहा।

'उग्र' का जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ, जहां निर्धनता ने अपना साम्राज्य स्थापित कर रखा था। आय के साधन अति सीमित थे, उससे पेट भर भोजन भी न मिलता था। बड़ी कठिनाई से यदि प्रातः भोजन मिलता तो रात्रि को व्रत रखना पड़ता। ऐसी स्थिति में उसकी शिक्षा-दीक्षा का प्रश्न ही नहीं उठता। आंख खोलते ही जीवन-ग्रन्थ का जो पृष्ठ उसे देखने को मिला, वह शिक्षा-दीक्षा को चौपट करने वाला था। उसी से वह नरक की ओर अधिक आकर्षित हुआ और उसकी खोज में दूर, बहुत दूर तक चला गया। उसका साहित्यिक दृष्टिकोण भी घोर यथार्थवादी बना। नरक बुरा होने पर भी उसका प्रिय जीवन-संगी बन गया। जैसे डालडा खाते-खाते शुद्ध घी की सुध-बुध भी समाप्त हो जाती है, पहचान-परख भूल जाती है, वैसे ही निरन्तर सुलभ होने से नरक भी धीरे-धीरे परिचित, प्रिय, प्रियवर, यानी प्रियतम हो जाता है।[1] इस प्रकार कथाकार ब्राह्मण-वंश में जन्म लेकर भी ब्राह्मण-ब्राह्मणियों की अपेक्षा शूद्र-शूद्राणियों की ओर अधिक आकृष्ट रहा और उसे शूद्र, खानाबदोश एवं बंजारे अपने अंग से प्रतीत होते रहे।

'उग्र' के साहित्य में नाटकीयता का जो अपूर्व सौष्ठव मिलता है, उसका मूलस्रोत उनका वह जीवन है, जिसमें वह रामलीला मण्डलियों के साथ वर्षों घूमते रहे और समय-समय पर कई प्रकार का अभिनय भी करते रहे। उनके पिता अभी जीवित ही थे कि उनके बड़े पुत्र रामलीला में अभिनय करने लगे। उन्होंने कुल, पैतृक-व्यवसाय आदि को धता बताकर, चुनार से मिर्जापुर भागकर रामलीला में लक्ष्मण का अभिनय करना आरम्भ किया। पिता के देहान्त के उपरान्त चुनार की विजयदशमी वाली लीला में, वे प्रायः कोई न कोई अभिनय करते और एक-दो बार बेचन को भी सीता बनाकर इस घाट उतारा। घरेलू परिस्थितियों ने भी इन्हें रामलीला की ओर प्रेरित किया। इन्होंने ऋणदाताओं द्वारा अपमानित होने और भूखों

१. 'अपनी खबर', पृ० २७

मरने से, रामलीलाओं में काम करना मंगलकारी समझा। बेचन के दोनों भाई काशी तथा अयोध्या की रामलीला मण्डलियों में अभिनय करने लगे और इन्हें बनारस की एक लीला-मण्डली में किसी खत्री मित्र को सौंप दिया गया। उस समय इनकी आयु ८ वर्ष के लगभग थी, ये जुल्फ़ों में तीन-तीन फूल-चिड़ी बनाते, बालों में पर्याप्त तेल लगाने के बाद सस्ती वेसलीन भी लगाते थे। उसके उपरान्त इन्हें साधुओं की रामलीला-मण्डली में बुला लिया गया और ये लक्ष्मण तथा जानकी का अभिनय करने लगे। हनुमान चालीसा के प्रभाव ने भी इन्हें स्कूली शिक्षा की अपेक्षा रामलीला मण्डली की ओर अधिक आकृष्ट किया और इन्होंने रामायण का कई बार पाठ किया, उसके विविध अंश इन्हें कंठस्थ हो गए। महाकवि तुलसीदास और रामचरित मानस के प्रति इनकी श्रद्धा बढ़ती चली गई। इसी से इनके साहित्य में महाकवि तुलसीदास और उनके कवित्व का यत्र-तत्र उल्लेख हुआ है।

बेचन पाण्डेय को रामलीलाओं की ओर प्रेरित करने वाली घरेलू परिस्थितयां ही थीं, परन्तु समयानुसार इनकी अपनी चित्तवृत्तियां भी इस कार्य में रमने लगीं और ये विभिन्न रामलीला-मण्डलियों में भरत, लक्ष्मण, सीता आदि के अभिनय बड़े मनोयोग से करते रहे। महन्त भागवत कानियां की नागा जमात के साथ ये पंजाब और नार्थ वेस्ट फ्रेण्टियर अर्थात् अमृतसर, लाहौर, सरगोधा मण्डी, चूहड़ काणा, पिंड दादनखां, मिंटगुमरी, कोहाट और बन्नू तक रामलीलाओं को दिखाने के निमित भ्रमण करते रहे। तदुपरान्त ये महन्त राममनोहरदास की रामलीला मण्डली में कार्य करने लगे और अयोध्या, फैजाबाद, बाराबांकी, प्रतापगढ़, दलीपपुर, अलीगढ़, बुलन्दशहर, मेरठ, दिल्ली, दमोह, सागर, गढ़ाकोटा, कटनी आदि स्थानों में सीता और लक्ष्मण के रूप में सहस्र-सहस्र नर-नारियों से अपने चरण पुजवाते रहे। उस समय इनकी आयु ११-१२ वर्ष के लगभग थी और ये मण्डली के विलास-जाल के कुप्रभाव में आने लगे। महन्त राममनोहरदास की राम-मण्डली पाप-मण्डली में परिवर्तित हुई। महन्त जी लंगोटे के कच्चे थे, वे किसी-न-किसी 'स्वरूप' पर रीझकर, उसी के गुदगुदे गदेले पर रात्रि व्यतीत कर लिया करते थे। बेचन पाण्डेय अपने दो तगड़े जवान, तेजस्वी

अभिनेता भाइयों के कारण महन्त के विलास-जाल से तो प्रायः बच जाते थे, परन्तु इस बीच की एक अन्य घटना से जीवन की दिशा ही बदल गई। ये एक विवाहित अभिरामा श्यामा पर मोहित हो गए और उसके लिए दिनभर बेचैन रहते। इनका प्रथम और अन्तिम प्रेम वही था, उसके बाद जो मामले हुए उसी शाश्वत साहित्य के संक्षिप्त, सस्ते संस्मरण मात्र थे। उस बाराबंकी वाली अभिराम श्यामा से दिल लगने के बाद ये बराबर कुंआरे ही बने रहे, उसकी बांकी छवि, मादक, छलकती, अछूतीजवानी की हवा, इनके हृदय से न गई। महन्त जी और उनकी पाप-मण्डली ने उस १७ वर्षीय अभिरामा श्यामा को पाप-पंक में इस तरह फंसाया कि उसके पति ने उत्तेजित होकर उसका अंग-अंग दाग दिया और वह चिकित्सालय में लाई जाने पर भी बच न सकी, उसने दम तोड़ दिया। उसकी हृदय-विदारक मृत्यु से १२ वर्षीय बेचन उदास-उदास रहने लगे, प्रेत-बाधित जैसे। इनकी चंचलता कम होने लगी, भीड़ छटने लगी। मिर्ज़ा ग़ालिब का शेर इन पर चरितार्थ होने लगा—"दिलेनादां, तुझे हुआ क्या है ? आख़िर इस दर्द की दवा क्या है ?"[१] वस्तुतः उसी सुन्दरी के रूप ने इनके सीने में दर्द जगाया, सूने हृदय-मरुस्थल में प्रेम की आग लगाई, जो आयु भर इन्हें गरमाती, तपाती, जलाती और जिलाती रही।

'उग्र' की शिक्षा-दीक्षा १४ वर्ष की आयु से ही आरम्भ हुई, उससे पूर्व वह विभिन्न रामलीला-मण्डलियों में अच्छे-बुरे अनुभव प्राप्त करता रहा। उस समय तक शब्द-शिक्षा उसके निकट आते-आते भिक्षा बन जाया करती थी और वह यह सब कुछ करने के लिए बाध्य भी था। परन्तु रामलीला मण्डलियों के अव्यवस्थित तथा अनैतिक वातावरण से जब वह तंग आ गया और अपने बड़े भाई के गांजा-मत्त क्रोधी स्वभाव से जब उसका दम घुटने लगा तो ईश्वर ने उसके जीवन को एक नया मोड़ दिया। उसके पुत्रहीन चचा ने उसे गोद ले लिया और उसकी विधिवत् शिक्षा-दीक्षा का उत्तरदायित्व संभाला। वह १४ वर्ष की आयु में चुनार के चर्च मिशन स्कूल में तृतीय श्रेणी में पढ़ने लगा, परन्तु यह सौभाग्य केवल षष्ठ श्रेणी तक ही उसे प्राप्त

---

१. 'अपनी खबर', पृ० ६६

हुआ। इस बीच उसकी चची ने एक सुन्दर बालक को जन्म दिया और इससे उनके वात्सल्य-भाव में कमी आने लगी। विधि-विरहित दत्तक पुत्र बनने के कारण उसे पुनः कठोर धरती पर पटक दिया गया। उसके चचा-चची परिवार सहित काशी चले गए और उसे पुनः कसाई समान क्रूर बड़े भाई के चरणों में आना पड़ा। उससे शिक्षा, खान-पान आदि की कठिनाइयां उसे सताने लगीं और वह विचित्र संकट में फंस गया। उसके बड़े भैया जुआरत रहते, उन्होंने जीवन को सम्यक् कर्म के सहारे न छोड़कर जुआ के सहारे छोड़ रखा था।

बेचन पाण्डेय को जो उग्रता अपनी माता के संस्कारों के रूप में प्राप्त हुई थी, उसीने विद्यार्थी-जीवन तथा साहित्यिक जीवन में विस्तार पाया। षष्ठ श्रेणी में अध्ययन करते समय वह उग्रता प्रथम बार एक भयानक रूप में प्रस्फुटित हुई, इन्होंने एक मुसलमान अध्यापक मौलवी लियाकत अली के विरुद्ध बनारस के जयनारायण हाई स्कूल के प्रिन्सिपल को तार दिया—'मौलवी लियाकत अली मिशन टीचर इन्सल्ट्स अवर रिलिजस फीलिंग्स, नो सेटिसफैक्ट्री इन्क्वायिरी। बेचन पांडेय।'[१] इस उग्रता-प्रदर्शन के मूल में अध्यापक महोदय की साम्प्रदायिक प्रवृत्ति भी प्रेरक थी, वे पढ़ाते-पढ़ाते कोई-न-कोई ऐसा प्रसंग छेड़ देते थे, जिससे हिन्दू विद्यार्थियों के धार्मिक भावों को चोट लगती थी। एक दिन उन्होंने कक्षा में पढ़ाते समय कहा कि हिन्दुओं के देवता, उसके पाजामे में बन्द रहते हैं।[२] यह सुनकर अनेक हिन्दू-छात्रों में विद्रोह की अग्नि भड़क उठी और उसका नेतृत्व बेचन ने संभाला। फलतः इनका नाम स्कूल से काट दिया गया और ये पुनः चचा की शरण लेने को बाध्य हुए। उन्होंने बनारस में ही रहकर पढ़ने की आज्ञा दी और ये उनकी आज्ञानुसार पढ़ने भी लगे, परन्तु उनकी यह कृपा अधिक समय तक न चल सकी। सातवीं कक्षा पास करते ही इन्हें अपने पांव पर खड़े हो जाने का संकेत मिल गया। ये निराश्रय होने के उपरान्त जलालपुर गांव के काका रामानन्द दुबे के साथ रहने लगे। दयालु कालीप्रसन्न चक्रवर्ती ने बाबू

१. 'अपनी खबर', पृ० ९२
२. वही, पृ० ९२

शिवप्रसाद गुप्त के नाम एक दया-पत्र लिख दिया, जिससे इनके शिक्षा-शुल्क, खान-पान आदि की व्यवस्था हो गई। ये एक वर्ष तक आटा, चावल, तेल, नमक, लकड़ी आदि वस्तुएं और कुछ नकद पैसे उनसे पाते रहे। परन्तु स्वभाव की उग्रता के कारण अपनी शिक्षा आगे न बढ़ा सके। स्कूल के हैडमास्टर श्री गुरुसेवक सिंह उपाध्याय के कड़े अनुशासन से खीझकर, विद्यार्थियों और अध्यापकों की एक गोष्ठी में उपाध्याय जी के स्वर में एक तुकबन्दी सुनाई, जो भयानक दुस्साहस था, नितान्त अनुचित व्यवहार था। इस उग्रता-प्रदर्शन का कुपरिणाम पहले से भी अधिक भयानक निकला और 'उग्र' सदैव के लिए स्कूली शिक्षा से वञ्चित हो गए। बनारस में निराधार ठोकरें खाने से इन्हें बड़े भाई की लातें अच्छी लगने लगीं और ये बनारस से चुनार चले गए।

उग्र जी के उग्र स्वभाव को सर्वाधिक उत्तेजना उनके बड़े भाई के अनुचित एवं अनैतिक आचरण ने ही दी, वह उस कसाई के समान थे जो कभी सन्तुष्ट नहीं होता, जिसके सम्बन्ध में कहावत प्रसिद्ध है—'ख़स्सी जान से गया, कसाई को कोई ज़ायका ही नहीं मिला।'[1] इसीसे बेचन को अपना घर संसार का सबसे बड़ा कारावास लगता था। बड़े भैया की अनुपस्थिति में, दस रुपए का नोट हाथ लगते ही ये धोती-कमीज पहने, एक अंगोछा लिए, घर से भागकर कलकत्ता चले गए। 'विश्वामित्र' के विज्ञापन-विभाग से सम्बद्ध श्री विश्वनाथ त्रिपाठी (पड़ोसी भाई) उन दिनों कलकत्ता में ही रहते थे, परन्तु इनकी भेंट उनसे न हो सकी, वे उन दिनों चुनार चले आए थे। दयालु अग्रवाल ने इन्हें निराश-हताश देख, चुनार के मुंशी जी से इन्हें मिला दिया, जो इनके परिचित ही नहीं यजमान भी थे। उसी दिन उन्होंने चुनार सूचना भेज दी कि बेचन कलकत्ता भाग आए हैं। एक सप्ताह के बाद श्री विश्वनाथ कलकत्ता आ गए और उन्होंने एक बासे वाले को कहकर इनके खाने की व्यवस्था करा दी। उन्हीं की कृपा से इन्हें आर० एल० बर्मन कम्पनी में एक रुपया प्रतिदिन की नौकरी मिली और ये कम्पनी के कार्यालय के आगे तख्त पर बैठकर ग्राहकों के पते छपे

---

१. 'अपनी खबर', पृ० ६०

फार्मों पर लिखने लगे। विश्वनाथ त्रिपाठी जब 'विश्वमित्र' के लिए विज्ञापन ढूंढने निकलते तब प्रायः इन्हें भी साथ ले लेते, जिससे यह धन्धा भी इन्हें आ जाए और अवसर पड़ने पर उसे कर सकें।[1] इसी बीच इनके बड़े भैया ने श्री विश्वनाथ को पत्र लिखकर इन्हें बनारस बुला लिया। तब तक ये एक मास के लगभग कम्पनी की नौकरी कर चुके थे, परन्तु बिना आगामी सूचना दिए नौकरी छोड़ने के कारण वेतन रोक लिया गया, जो आयु भर फिर न मिला। वह उनकी पहली और अन्तिम नौकरी थी। उसके बाद वे यायावरी जीवन ही व्यतीत करते रहे, किसी एक स्थान या व्यवसाय को न अपना कर, घाट-घाट का पानी पीते रहे और साहित्य-सृजन को अपना लक्ष्य बनाए रहे। उनके विद्रोही व्यक्तित्व ने उन्हें साहित्य-सृजन से भी कुछ वर्ष विरत कर दिया और वे चल-चित्र जगत् में काम करने लगे। घुमक्कड़ प्रकृति से उन्हें कई प्रकार के अनुभव मिले और उग्र तथा विद्रोही स्वभाव ने उन्हें सामाजिक कुरीतियों की कड़ी आलोचनाओं के लिए प्रेरित किया। वस्तुतः उनके कथा-साहित्य में विभिन्न अनुभवों को ही अभिव्यक्ति मिली है। वे वाराणसी, कलकत्ता, बम्बई, इन्दौर, दिल्ली आदि नगरों में देखे स्वस्थ एवं अस्वस्थ जीवन को अपनी कई रचनाओं का प्रतिपाद्य-विषय बनाते हैं।

पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र के साहित्यिक जीवन के निर्माण में अनेक महापुरुषों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहयोग और तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियां ही प्रधान प्रेरक रहीं जिससे उनकी साहित्यिक प्रतिभा निरन्तर विकास प्राप्त करती चली गई। इस सम्बन्ध में उनका कथन है—'त्रिदंडी से मुझे लिखने का शौक़ मिला, काशीपति जी से सहृदयता, 'दीन' जी से दृष्टि, पराड़कर जी से राह और पालीवाल जी से उत्साह। कहा न, सब कुछ किसी ने नहीं दिया हो, पर कुछ-कुछ दिया सबने, और हिन्दी में एक 'वज़न' पैदा हो गया। 'दस की लकड़ी, एक का बोझ।'[2]

---

१. 'अपनी ख़बर', पृ० १२८

२. उग्र : 'व्यक्तिगत', प्रथम संस्करण, पृ० २७

उग्र के बड़े भाई पं० उमाचरण पाण्डेय 'त्रिदंडी', जिनकी तुलना हम कसाई से कर चुके हैं, वे यद्यपि चरित्रहीन, गैर-जिम्मेदार, धूर्त तथा लम्पट थे तथापि उसके आदि गुरु थे। वह जब क, ख, ग लिखना भी नहीं सीखा था, तब उन्हें साहित्य पढ़ने, यथाशक्ति लिखने का चाव भी था। तत्कालीन समस्यापूर्ति ('रसिक रहस्य', प्रियंवद आदि) मासिक पत्रों में वे अपने तथा अपनी पत्नी के नाम से रचकर समस्यापूर्तियां प्रकाशित कराते थे। वे उसके सामने बैठकर कविता रचते, लेख लिखते और अप्रत्यक्ष रूप से साहित्य-सृजन की प्रेरणा देते थे।[1] लाला भगवानदीन से भी उसे आरम्भ में अप्रत्यक्ष प्रेरणा ही प्राप्त हुई, वे भक्ति-विभोर-भाव से समझदारों को 'विनय पत्रिका' पढ़ाते थे और वह तन्मय होकर उनके भाषण सुना करता था। उसके बाद वह स्वयं तुक बन्दियां, कविताएं कहानियां, नाटक, उपन्यास आदि लिखने लगा और उसे पं० बाबूराव विष्णु पराड़कर, सम्पूर्णानन्द, लाला भगवानदीन आदि विद्वानों से प्रत्यक्ष सहयोग तथा प्रोत्साहन मिलने लगा।

उग्र का साहित्यिक जीवन सन् १९२० से प्रारम्भ होता है। इन्होंने शहीद मैक्स्विनी पर एक लम्बी कविता लिखी, जिसे सुनकर पं० सांवली जी नागर बहुत प्रभावित हुए और इन्हें ज्ञानमण्डल ले गए। वहां बाबू शिवप्रसाद गुप्त और बैरिस्टर श्रीप्रकाश जी के सामने इन्हें अपनी कविता सुनाने के लिए कहा गया। इन्होंने बड़े उत्साह से कविता सुनाई। उससे प्रसन्न होकर गुप्तजी ने इनकी वह कविता 'आज' में प्रकाशित करा दी। तदुपरान्त इसी पत्र में इनकी 'गांधी आश्रम' कहानी को प्रकाशित होने का सौभाग्य मिला। इस कहानी की भी एक लम्बी कहानी है, इसे बाबू हरिहर नाथ ने जब 'आज' के प्रधान सम्पादक श्रीप्रकाश के सामने रखा तो उन्होंने बिना पढ़े इसे रद्दी की टोकरी में फेंक दिया। उनका तर्क था—'आज' छोकरों की रचनाओं के लिए नहीं है।[2] यह सुनकर बेचन पाण्डेय मारे ग्लानि के अपने काका श्री छविनाथ की कोठरी में जा छिपे। श्री हरिहर-

---

१. 'अपनी खबर', पृ० ९७

२. 'व्यक्तिगत', पृ० २८

नाथ ने प्रकाश जी के चले जाने पर उस कहानी को संभालकर दूसरे दिन पराड़कर जी के सामने रखा और उन्होंने बिना लेखक का नाम जाने, आवश्यक सुधार करके, 'पास' कर दिया। वह कहानी 'शशिमोहन शर्मा' के नाम से प्रकाशित हुई, उसके छपने से उसके निर्माता को अपूर्व उत्साह मिला। उसके अपने शब्दों में—'पराड़कर जी ने मुझे जिला लिया। साहित्य के जगमग मग पर मैं डगमग पग चल डगरा।'[१] इन दो मुख्य रचनाओं के प्रकाशित होने के बाद बेचन पाण्डेय, 'उग्र' उपनाम से लिखने लगे। यह उपनाम इन्होंने राष्ट्रीय चेतना से प्रभावित होकर ही चुना था और इनकी उग्र लेखनी ने उसे सार्थक भी कर दिखाया। उन दिनों राष्ट्रीयता की लहर बड़ी तीव्र गति से प्रवाहित हो रही थी। इनके स्वभाव की उग्रता जो वर्षों से प्रायः दबी हुई थी, वह सुअवसर पाकर इनकी रचनाओं में अभिव्यक्त हो उठी। उससे प्रभावित होकर श्री पराड़कर जी ने इन्हें बे-बोले ही मानों गोद ले लिया। वे सारे ज्ञानमण्डल की कानाफूसी एक ओर रख, अपना काम छोड़, घंटों इनकी कहानियों को व्याकरण की पटरी पर लाते, गलत-बयानियां सुधारते, कुरूप शब्द या मुहावरे काट-छांटकर, सुन्दरता से संवारकर इनकी शूद्र रचनाओं को दिव्य द्विजत्व दिया करते थे।[२] इस प्रकार श्री पराड़कर की छत्रछाया में रहकर इन्होंने कहानी, कविता, हास्य-व्यंग्य प्रधान लेख आदि लिखने का अच्छा अभ्यास किया और वह सभी कुछ 'आज' में प्रकाशित भी होता रहा। उनकी रचनाओं की क्रान्तिकारी उग्रता उन्हें प्रिय लगती परन्तु राज विद्रोह के अपराध को दृष्टि में रखकर कहते—'नहीं, नहीं, आपने लिखा सुन्दर है, सच है, पर कानून लोचदार होता है। संस्था श्रीमानों की है। इस तरह आप सबको संकट में डाल देंगे।[३] फिर पराड़कर जी उस रचना रूपी बिच्छू को सुधारते यों कि बिच्छू का रूप तो बदल जाता, लेकिन शब्दों के मायाजाल में मारक डंक और विष बना-का-बना ही रहता।[४]

---

१. वही, पृ० २६

२. 'अपनी खबर', पृ० १०८-१०९

३. वही, पृ० १०९

४. वही, पृ० १०९

उग्र के साहित्यिक जीवन को प्रोत्साहित करने वालों में श्रीकृष्णदत्त पालीवाल का नाम भी उल्लेखनीय है। वे 'प्रभा' के सम्पादक थे और उनकी कृपा से ही उग्र की रचनाएं इस पत्रिका में प्रकाशित हुआ करती थीं। इनकी 'ध्रुव धारणा' कहानी की सराहना करते हुए उन्होंने इन्हें २८ रुपये पुरस्कार दिया और साथ ही उत्साह-भरा पत्र लिखा। अपने पत्र में उग्र को अच्छा लेखक माना—ऐसा, सिनकी 'खोज में' वे थे। उनके प्रोत्साहन से इन्हें बल मिला और ये निरन्तर लिखते चले गए।

'ध्रुव धारणा' के उपरान्त इनकी प्रसिद्ध रचना 'महात्मा ईसा' प्रकाश में आई। यह नाटक इन्होंने सन् १९२३ में लिखा और इसका सम्यक् संशोधन लाला भगवानदीन ने किया। इस नाटक के कलात्मक सौष्ठव से प्रेमचन्द जी भी प्रभावित हुए और उन्होंने कहा—'हिन्दी में अच्छे 'ड्रामों' की कमी है। डी० एल० राय के नाटकों को निकाल दीजिए तो हमारे पास कुछ रह नहीं जाता। अब हम भी एक उच्चकोटि के मौलिक ड्रामा को अन्य भाषाओं के सामने पेश कर सकते हैं। 'महात्मा ईसा' महाशय 'राय' के किसी भी नाटक से टक्कर ले सकता है। ऐसे मौलिक और गहन विषय पर नाटक लिखकर उग्र जी ने हिन्दी का मस्तक ऊंचा कर दिया है।"[1] सन् १९२४ तक उग्र हिन्दी के लोकप्रिय लेखकों में गिने जाने लगे और 'भूत', 'स्वदेश' आदि पत्रों का सम्पादन भी करने लगे। इसी वर्ष ये काकीनाडा कांग्रेस में भी सम्मिलित हुए और वहां से कलकत्ता लौटने पर एक मित्र के साथ 'मतवाला-मण्डल' देखने गए। यहीं इनका श्री शिवपूजन तथा निराला जी से परिचय हुआ।

उग्र के साहित्यक व्यक्तित्व पर समसामयिक परिस्थितियों का प्रभाव भी कम नहीं पड़ा है। वे रूसी क्रान्ति, तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना, हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रचार, अछूतोद्धार आन्दोलन, नारी स्वातन्त्र्य आन्दोलन, विधवा-विवाह समर्थन, दहेज प्रथा उन्मूलन आदि से अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होंने जब साहित्य सृजन का कार्य आरम्भ किया था, उससे कुछ ही दिनों पहले रूस ने जारशाही को समाप्त किया था। रूस के 'बोल्शेविक'

---

१. 'महात्मा ईसा', भूमिक

और 'निहिलिस्ट' क्रान्तिकारियों की वीरतापूर्ण कहानियां भारतीय देश-भक्तों के लिए आदर्श दृष्टान्त बन गई थीं। उग्र ने रूसी क्रान्ति से प्रभावित होकर 'पागल', 'कर्त्तव्य और प्रेम', 'वीर कन्या', 'निहिलिस्ट', 'भीषण सन्तोष' आदि ऐतिहासिक कहानियों का सृजन किया। ज़ारशाही की प्रबल राजसत्ता को जड़-मूल से उखाड़ फेंकना इतिहास की एक अद्वितीय घटना था। उस युगान्तकारी घटना के शहीदों और क्रान्तिकारियों को अपनी कहानियों का पात्र बनाकर उग्रजीने अपने देश के लोगों को क्रान्ति का नवमन्त्र दिया।[1] इसी प्रकार भारतीय स्वाधीनता संग्राम से प्रभावित होकर उग्र ने 'उसकी मां', 'मेरी मां', 'वह दिन', 'मां कैसे मरी', 'जैतू में' आदि कहानियों का निर्माण किया। राजद्रोह के अभियोग में उन्हें जेल जाना पड़ा, ब्रिटिश सरकार ने उनकी अनेक कृतियों को जब्त कर लिया। किन्तु उससे राष्ट्र-धर्मी उग्र कभी निराश न हुए वरन् पहले से भी अधिक क्रान्तिकारी भावना लेकर राष्ट्रीयता का मन्त्र देशवासियों में फूंकते रहे। इस नाते उन्होंने गांधीवादी आदर्शों और मर्यादाओं को अत्यधिक सम्मान दिया। गांधी जी ने जो कार्य राजनैतिक क्षेत्र में किया, वही कार्य प्रेमचन्द, उग्र जैसे कथाकारों ने साहित्यिक क्षेत्र में कर दिखाया। ये कथाकार भी हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रचार में महत्त्वपूर्ण कार्य करते रहे। इन्होंने अछूतोद्धार के कई सुझाव अपनी रचनाओं द्वारा प्रस्तुत किए। नारियों की स्वतन्त्रता का समर्थन किया और सामाजिक तथा धार्मिक पाखण्ड का घोर विरोध किया। इन्होंने अपनी विचारोत्तेजक रचनाओं द्वारा देश और समाज को नव-जीवन प्रदान किया। ये साम्प्रदायिकता के विरोध और राष्ट्रीयता के प्रचार में क्रियात्मक सहयोग देते रहे। इनकी कृतियां अपने साहित्यिक महत्त्व के साथ ऐतिहासिक महत्त्व भी रखती हैं, उनमें तत्कालीन राजनैतिक गतिविधियों, समाज-सुधार की योजनाओं तथा धार्मिक रूढ़ियों का सजीव इतिहास चित्रित हुआ है।

उग्र का क्रान्तिकारी व्यक्तित्व उनकी कहानियों में तो अभिव्यक्त होता ही था, सम्पादक रूप में भी वे उसे मुखरित किए बिना न रहे। सन्

---

१. 'काल कोठरी', भूमिका (श्री राजकमल चौधरी)

१९२४ के आरम्भ में गोरखपुर के प्रसिद्ध साप्ताहिक 'स्वदेश' के दशहरा अंक का भयानक सम्पादन करने वाले यही थे । यह पत्र प्रेमचन्द जी के सरस्वती प्रेस से प्रकाशित हुआ था और सम्पूर्ण अंक विस्फोटक आग्नेय मन्त्रों से ओतप्रोत था । उससे प्रेमचन्द के भाई महतबराय पकड़े गए, 'स्वदेश' के संचालक श्री दशरथ प्रसाद द्विवेदी को २७ मास और इन्हें ९ मास का कठोर कारावास दण्ड मिला । सन् १९२७ में जेल से आने के बाद इन्होंने 'बुढ़ापा' और 'रुपया' नाम से रचनाएं लिखीं जो 'आज' में प्रकाशित हुई ।

उग्र के लेखन-जीवन में १९२७, २८ और २९ बड़े कोलाहलकारी रहे। 'मतवाला' मण्डल से उसका सम्बन्ध घनिष्ठ हुआ । इनकी अनेक लोकप्रिय प्रसिद्ध तथा विवादास्पद कृतियों का निर्माण इन्हीं वर्षों में हुआ । यथा—'चाकलेट', 'दिल्ली का दलाल', 'चन्द हसीनों के खुतूत', 'बुघुआ की बेटी' आदि । इनमें मुख्यतः 'चाकलेट' को लेकर 'घासलेटी' आन्दोलन इनके विरुद्ध चला । इस सम्बन्ध में उग्र लिखते हैं—'इन्हीं दिनों में एक नहीं दो-दो बार गांधी जी ने मेरी पुस्तक 'चाकलेट' पढ़ी थी और उसके लेखक की सचाई का अनादर-'चाकलेट' की निन्दा-करने से अस्वीकार कर दिया था । हिन्दी वालों के कौआरोर में एक प्रहार स्पष्ट यह था—आक्षेप मुझ पर—कि मैं अश्लील-साहित्य टकों के लिए लिखता था । मेरा विश्वास आज भी यही है कि रुपये ही कमाना हो, तो कहानी-उपन्यास लिखने से कहीं सरल धन्धे और हैं । वही अहंकार । मैंने सोचा—परे करो इस हिन्दी को । चरने दो उन्हें, चर्रा रही है मेरी चर्चा—चलो बम्बई चलें···।'[1] इस प्रकार 'घासलेटी' आन्दोलन के क्रान्तिकारी प्रभाव ने इनके जीवन की दिशा को ही कई वर्षों के लिए अन्यत्र मोड़ दिया । ये साहित्य-सृजन का कार्य छोड़कर फिलम कम्पनियों में चले गए और १९३० से १९३८ तक फिलमों में लेखन कार्य करते रहे । फिलम निर्माता, निर्देशक स्वयं इनके पास आते थे और अग्रिम भेंट पूजा देकर ही इनसे लिखा लेते थे—कथा, संवाद, गीत सब कुछ । रास विलास, सजीव मूर्ति, पतित पावन, अहिल्योद्धार, राधामोहन, जन्म के

---

१. 'अपनी खबर', पृ० १३४

लाला आदि चित्र इन्हीं की लेखनी से उतरे थे।[1] परन्तु इनके जीवन का यह समय न केवल साहित्यिक जीवन को ह्रासोन्मुख बनाने वाला है वरन् नैतिक दृष्टि से भी इन्हें नीचे ले जाने वाला है। ये सुरा-सुन्दरी के फेर में पड़कर ऋणी हो गए और ऋणदाताओं के भय से भागकर मालवा-इन्दौर चले आए। सन् ३८ से ४५ तक ये इन्दौर और उज्जैन रहे। इन वर्षों में पुनः साहित्यिक जीवन को गति देने में प्रयत्नशील रहे। अपनी रचनाओं द्वारा सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक जीवन की विद्रूपताओं का यथार्थ चित्रण किया और खण्डवा के 'स्वराज्य', इन्दौर की 'वीणा', उज्जैन के 'विक्रम' आदि पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया। मध्य भारत साहित्य-समिति, मालवा के राजनैतिक और सामाजिक जीवन तथा उज्जैन की राजनीति से गहरा सम्पर्क भी स्थापित किया।

सन् १९२९के उपरान्त कई वर्षों तक 'उग्र' उखड़े-से रहे, उनका साहित्य से नाता शिथिल हुआ और यह हिन्दी का दुर्भाग्य ही कहा जाएगा। सन् १९२९ से १९३८ तक हमें इनसे केवल दो उपन्यास—'शराबी' और 'सरकार तुम्हारी आंखों में' मिले। इन वर्षों में निर्मित कहानियों की संख्या भी अधिक नहीं है। उसके बाद पुनः जब ये साहित्यिक वातावरण में आए तो अनेक कहानियां, लेख और 'जीजीजी' प्रभृति उपन्यासों का सृजन हुआ। राजनैतिक तथा सामाजिक चेतना से प्रभावित होकर इन्होंने अपने छिपे साहित्यकार को प्रकाश में आने दिया और उत्कृष्ट कलाकृतियों के निर्माण से गौरव भी प्राप्त किया। परन्तु बम्बई जिसे ये 'भारत का पेरिस' मानते हैं, उसने अपनी विलासिता की आकर्षण-शक्ति से इन्हें पुनः अपनी लपेट में ले लिया और ये सन् १९४५ में इन्दौर से बम्बई चले गए। भारत के स्वतंत्र होने तक वहीं रहे। इन वर्षों में 'विक्रम' और 'संग्राम' का सम्पादन किया और अपने व्यक्तित्व के अनुसार ही ये गरजते तथा बरसते रहे।

सन् १९४७ में ये बम्बई से उत्तर प्रदेश लौट आए तथा मिर्जापुर से 'मतवाला' का सम्पादन करने लगे। किन्तु कुछ ही वर्षों के उपरान्त पुनः कलकत्ता चले गए। कलकत्ता महानगरी की तुलना इन्होंने 'भोग-भरी

---

१. श्रीनिधि द्विवेदी : 'सारिका', जनवरी १९६८

रखेली' से की है, जिसमें संतुष्टि, शान्ति तथा नैतिकता का अभाव है। सन् १९५० से ५३ तक उग्र वहीं भटकते रहे, ये वर्ष इन्होंने पर्याप्त कठिनाई से व्यतीत किए। इस बीच छोटी-मोटी रचनाओं के अतिरिक्त किसी उपन्यास आदि का सृजन नहीं कर सके। इनके साहित्य-सृजन का कार्य दिल्ली आने से ही पुनः गति पकड़ता है। सन् १९५३ से लेकर अन्त समय तक प्रायः दिल्ली में ही रहे। इस अवधि में 'कढ़ी में कोयला', 'फागुन के दिन चार' आदि उपन्यासों का निर्माण किया। इन उपन्यासों में कलकत्ता और बम्बई के व्यभिचारी तथा स्वार्थी जीवन का घोर यथार्थवादी चित्रण किया। इन कृतियों पर तत्कालीन सामाजिक अनैतिकता, कामुकता तथा स्वार्थपरता का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। कथाकार ने कलकत्ता के धनलोलुप सेठों तथा बनियों, बम्बई के फिल्म निर्देशकों, अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों के अनाचारों को सूक्ष्म तथा गहरी दृष्टि से देखा और दिखाया है। उनकी भीतरी तथा बाहरी कुरूपताओं पर अति तीक्षण व्यंग्य-प्रहार किए हैं।

उग्र अपनी रचनाओं के स्वयं प्रकाशक भी बने। इन्होंने 'उग्र-प्रकाशन' की स्थापना की और इस सम्बन्ध में अपनी विवशता तथा कटु अनुभूतियों का उद्घाटन करते हुए लिखा—'ये पंक्तियां लिखते समय मेरी अवस्था ५४ साल ४ महीने और ४ दिन है। मैं तो ढीठ या निर्लज्ज या क्रूर या 'उग्र' होने से अभी तगड़ा हूं, नहीं तो मेरी अवस्था वाले अनेक मित्र न जाने कभी के निज-निज कर्मानुसार नरक या स्वर्ग की राह लग गए। लेकिन मैं आप ही से पूछूं कि इस अर्थ-युग में, ऐसी आर्थिक-दुर्वस्था में मेरे जैसा कटु-कषाय 'उग्र' यदि कुछ दिनों के लिए—ख़ुदा न करे।—बीमार पड़ जाय या कलम घिसकर चना चबेना जुटाने में असमर्थ हो जाय, तो क्या होगा ?···अस्तु, अब सिवा इसके कि मैं अपनी सारी पुस्तकें स्वयं छाप लूं और बिक्री का प्रबन्ध करूं मेरे लिए दूसरा कोई चारा नहीं।'[1]

'उग्र' के अन्तिम वर्ष दिल्ली में ही व्यतीत हुए। वे दिल्ली सब्जीमण्डी, पंजाबी बस्ती, कृष्णानगर आदि स्थानों में रहकर निरन्तर साहित्य-सृजन करते रहे। २३ मार्च १९६७ को प्रातः तीन बजे उन्होंने अन्तिम सांस ली।

---

१. 'ख़ुदाराम और चन्द हसीनों के ख़ुतूत' (अष्टम संस्करण), प्रकाशकीय पृ० ५

बड़े आराम से, बिना किसी विशेष कष्ट के, दिल के दौरे से, वे इस पाषाण हृदय जगत् से सदैव के लिए प्रस्थान कर गए। वे जीवन भर उपेक्षित ही रहे, अन्तिम समय भी उन्हें उपेक्षा ही मिली। डॉ० प्रभाकर माचवे के कथनानुसार उनके शव के साथ बीस-पच्चीस साहित्यकार, मुहल्ले के थोड़े से लोग एवं नए-पुराने कुछ पत्रकार ही गए। विश्वविद्यालय, हड़ताली अखबारों आदि से कोई न गया। यह कैसी दिल्ली है ? पैंतीस लाख में दो-तिहाई तो हिन्दी भाषी होंगे। और श्मशान में पच्चीस-तीस लेखक, चार प्रकाशक और उतने ही लोग।[1] उग्र और उनके साहित्य की उपेक्षा के मूल में उनका उग्र, यथार्थप्रिय तथा फक्कड़ व्यक्तित्व था। प्रेमचन्द युग और प्रेमचन्दोत्तर युग में रहकर वे निजी रुचि, धारणा तथा आस्था को प्रधानता देते रहे। उन्होंने देश और समाज से वही कुछ ग्रहण किया, जो उन्हें भाया। वे किसी एक वाद या संस्था के बनकर न रहे, उन्होंने जो उचित समझा, उसे ही अपने साहित्य का वर्ण्य विषय बनाया। गरजना और बरसना उनके जीवन का लक्ष्य रहा। वे युग के साथ समझौता न कर सके, युग उन्हेंउपेक्षा देता रहा और वे युग की कड़ी आलोचना करते रहे। फिर भी वे पाठकों के प्रिय रहे, उनकी रचनाएं उन्हें अजर और अमर रखेंगी।

संक्षेप में, 'उग्र' पुरानी पीढ़ी के विशिष्ट लेखक तथा शैलीकार हैं। उन की रचनाएं उत्तेजक, मनोरंजक तथा विवादास्पद हैं। उनमें उग्र व्यक्तित्व की अभिव्यंजना सर्वत्र मिलती है। वे एक ओर अपनी माता, बड़े भाई, श्री पराड़कर, भगवानदीन, पालीवाल आदि से प्रभावित हुए हैं और दूसरी ओर तत्कालीन स्वतन्त्रता आन्दोलन, सामाजिक व्यभिचार, धार्मिक आडंबरों तथा आर्थिक शोषण से प्रेरित हुए हैं। गांधी-दर्शन, आर्य समाज के सिद्धान्तों, रूसी क्रान्ति और निजी अनुभूतियों का अद्‌भुत तथा प्रभावशाली अभिव्यंजन ही उनका साहित्य है। गांधी-दर्शन का प्रभाव, अछूतोद्धार, हिंदू मुस्लिम-एकता और राष्ट्रीय भावनाओं के प्रचार के रूप में लक्षित होता है। सामाजिक तथा धार्मिक आडम्बरों के विरोध रूप में आर्यससाज का

---

१. धर्मयुग' १६ अप्रैल १९६७

प्रभाव उन्होंने ग्रहण किया है। रूसी क्रान्ति का प्रत्यक्ष समर्थन वे अपनी अनेक कहानियों में करते हैं। निजी अनुभूतियां, मान्यताएं तथा रुचियां उन्हें यथार्थवादी बनाती हैं। इसीसे वे अपने युग से पृथक् नितान्त अकेले और उपेक्षित बने रहे।

कथा-साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन

उग्र ने हिन्दी कथा-साहित्य को अनेक विवादास्पद, मनोरंजक, उत्तेजनापूर्ण एवं क्रान्तिकारी रचनाएं प्रदान की हैं। उनकी विषयगत तथा शैलीगत अपनी विशिष्टताएं हैं। वे समाज-सुधार तथा जन-जागरण को वर्ण्य-विषय बनाती हैं। उनकी शिल्पविधि मौलिक है। कथाकार के 'उग्र' तथा स्वच्छन्द व्यक्तित्व के कारण, उनमें अनुभूति तथा अभिव्यक्ति सम्बन्धी कतिपय दोष भी आ गए हैं, उन्हीं के फलस्वरूप कथाकार को विभिन्न वरिष्ठ और कनिष्ठ आलोचकों की बौछारें सहनी पड़ी हैं। उनकी कहानियों और उपन्यासों का सामान्य आलोचनात्मक अध्ययन इस प्रकार है—

(क) कहानी-साहित्य

'उग्र' द्वारा निर्मित लगभग १५० कहानियां, समय-समय पर अनेक कहानी-संग्रहों के रूप में प्रकाशित हुई हैं। उनके प्रारम्भिक कहानी-संग्रह हैं—'चाकलेट', 'रेशमी', 'सनकी अमीर', 'शैतान मंडली', 'चिनगारियां', 'पंजाब की रानी', 'जब सारा आलम सोता है', 'दोज़ख़ की आग', 'उग्र का हास्य', 'निर्लज्ज', ,बलात्कार', 'कला का पुरस्कार' आदि। परन्तु ब्रिटिश सरकार ने उनकी अनेक रचनाओं को जब्त कर लिया, उन पर राजद्रोह का आरोप लगाया और उनके निर्माता को कठोर कारावास दण्ड दिया। देश के स्वतन्त्र होने के उपरान्त 'उग्र' की कुछ रचनाएं तो अपने प्रारम्भिक रूप में ही प्रकाशित हुई और कुछ नए रूप में। सन् १९६४ में आत्माराम एण्ड संस से उनकी उत्कृष्ट कहानियों के अनेक कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए। उनकी भूमिकाएं श्री राजकमल चौधरी ने लिखी हैं, जो अति-संक्षिप्त होने पर भी, 'उग्र' की कहानियों के प्रतिपाद्य विषय तथा शिल्पविधान का सांकेतिक परिचय देने में समर्थ हैं। भूमिका लेखक ने उनकी कहानियों के

मर्म को समझा है, उनकी महत्ता का उद्घाटन किया है, किन्तु उनके दोषों से पाठकों का परिचय नहीं कराया है।

'उग्र' के कहानी-साहित्य का सम्यक् अध्ययन करने के लिए नए-कहानी-संग्रह ही अधिक उपयोगी हैं। उनमें प्रवृत्तियों के अनुसार कहानियों का संकलन हुआ है, शिल्पगत सौष्ठव के ज्ञान के लिए उन्हीं को आधार बनाना अधिक उपयुक्त है। उनके नाम हैं—'ऐसी होली खेलो लाल', 'मुक्ता', 'चित्र-विचित्र', 'यह कंचन-सी काया', 'काल कोठरी', 'पोली इमारत' और 'कला का पुरस्कार'। इनमें अन्तिम कहानी-संग्रह, नाम से तो पुराना है, किन्तु इनका प्रकाशन नए रूप में हुआ है। इसकी भूमिका स्वयं कथाकार ने लिखी है। उसके शब्दों में—"इस संग्रह की कहानियां पहले-ही-पहल पुस्तक रूप में प्रकाश में आ रही हैं। मेरी निगाह में इस संग्रह की ज्यादातर रचनाएं बलवती हैं, विचित्र तो हैं ही।"[१] इन नए कहानी-संग्रहों में 'उग्र' की सभी कहानियां समाविष्ट नहीं हो सकी हैं' इसलिए अन्य उपलब्ध कहानी-संग्रहों का विवेचन भी अपेक्षित है। इस अध्याय में सर्वप्रथम तो व्यवस्थित कहानी-संग्रहों की कहानियों का और उसके उपरान्त अन्य कहानी-संग्रहों की कहानियों का विवेचन प्रस्तुत किया जाएगा।

ऐसी होली खेलो, लाल

इस कहानी-संग्रह की अधिकांश कहानियां राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत हैं। इसमें कुल १४ कहानियां संकलित हुई हैं, इनके नाम है—'उसकी मां', 'राम, डिक, हैरी एण्ड कम्पनी लिमिटेड', 'मेरी मां', 'दिल्ली की बात', 'दोज़ख़ ! नरक !!', 'ईश्वरद्रोही', 'खुदा के सामने', 'शाप', 'खुदाराम', 'नागा नरसिंह दास', 'वह दिन', 'मां कैसे मरी', 'जैतू में' और 'ऐसी होली खेलो, लाल'। इन कहानियों में उग्र का राष्ट्रधर्मी, विद्रोह तथा क्रांन्तिकारी व्यक्तित्व प्रस्फुटित हुआ है। वे तत्कालीन हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रादायिकता का घोर विरोध करते हैं। इन जातियों की एकता और मानवीय धर्म की प्रतिष्ठा उनका प्रधान उद्देश्य है। वे धार्मिक तथा सामाजिक पाखण्ड की

---

१. 'कला का पुरस्कार', मुखड़ा।

निन्दा करते हैं और गांधीवादी आदर्शों तथा मर्यादाओं की स्थापना में, अपनी कला की सार्थकता समझते हैं। वे श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर, श्री सम्पूर्णानन्द, श्री शिवप्रसाद गुप्त, लाला भगवानदीन प्रभृति के साहित्यिक, राष्ट्रीय तथा क्रान्ति-प्रिय व्यक्तित्व से भी बहुत कुछ प्रभावित हुए हैं। उन्होंने अपने उग्र स्वभाव के अनुकूल उनसे प्रेरणा प्राप्त की। उनकी लेखनी से अंग्रेजों के प्रति घोर घृणा और क्रान्तिकारियों के लिए सम्मान अभिव्यंजित हुआ। उन्होंने ब्रिटिश आधिकारियों को कुपित किया और देश-प्रेमियों को नव-उत्साह प्रदान किया।

'उसकी मां' उग्र की प्रसिद्धतम कहानी है। इसमें स्वतन्त्रता-संग्राम की बेला में एक मां की ममता, युवकों के देश-प्रेम, ज़मींदारों की राजभक्ति और अंग्रेजों के दमन-चक्र का हृदय-विदारक चित्रण हुआ है। इस कहानी की मार्मिकता मैक्सिम गोर्की कृत 'मां' रचना का स्मरण करा देती है। इसकी मूल संवेदना राष्ट्रीय है, इसका महत्व भाव-घनत्व में देखा जा सकता है। यह देश-प्रेम की उदात्त भावना को जगाती और भड़काती है। इसका 'उसकी मां' शीर्षक, मां और भारत-माता दोनों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। इसी प्रकार नायक लाल का नाम भी पात्र-विशेष और भारत-माता के सच्चे लाल की अर्थ-व्यंजना करता है।

रचना-शैली की दृष्टि से यह कहानी आत्मकथात्मक प्रणाली में निर्मित हुई है। इसका एक ज़मींदार पात्र, सारे घटना-चक्र को आत्मकथा के रूप में सुनाता है। रचना-लक्ष्य के विचार से यह यथार्थ गतिविधियों का उद्-घाटन करने पर भी, आदर्शवादी भावों को प्रश्रय प्रदान करती है। इसमें कथाकार के राष्ट्रीय उद्गार यत्र-तत्र मुखरित हो उठे हैं। इसकी भाषा सजीव-सशक्त है, उसमें अवसरानुसार ओज, करुण आदि का संचार करने की पूर्ण क्षमता है। किन्तु कथाकार ने पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग नहीं कराया है, सरल मां के मुंह से भी प्रायः वैसी ही भाषा निःसृत कराई जाती है, जैसी लाल और उसके नवयुयक साथियों के मुंह से।

'राम, डिक, हैरी एण्ड कम्पनी लिमिटेड' कहानी में युगधर्मी कलाकार विदेशी वणिकों की शोषण-वृत्ति, आचार-विचार तथा आडम्बरमय जीवन का बहिष्कार करने की प्रेरणा देता है। वह नहीं चाहता कि विदेशी

व्यापारी हमारी सम्पति, संस्कृति तथा रीति-नीति को नष्ट करें, आत्मा के पुजारी देश को, शरीर का भक्त बनाएं। इसी से वह गोरे भेड़ियों के भेड़-सा बनने पर भी उनका बहिष्कार कराना उपयुक्त समझता है, उनकी पैशाचिक योजनाओं से देशवासियों को सावधान करता है। उन्हें अपने-अपने देश भेजकर ही, वह सन्तोष तथा शान्ति अनुभव करता है।

इस कहानी का सृजन कथात्मक शैली में हुआ है। इसमें कथाकार स्वयं ही सभी घटनाओं का, इतिहासकार के समान वर्णन करता है। उसकी शैली में संकेतात्मकता भी कम नहीं है, इसी से यह कहानी उसकी उत्कृष्ट संकेतात्मक कहानियों में गिनी जाती हैं। इसके प्रायः सभी पात्र विदेशी हैं, उनका आयोजन घटनाओं के अनुसार हुआ है, उनके संवाद कथा-सूत्रों से सम्बन्धित हैं तथा उनके स्वार्थी तथा अडम्बर-प्रिय व्यक्तित्व को प्रकाश में लाते हैं। कथाकार की शिल्पविधि, इन विदेशी शोषकों के प्रति उपेक्षा-भाव जगाने में समर्थ है, उसे कथ्य की अभिव्यक्ति में पूर्ण सफलता प्राप्त है।

'मेरी मां' में एक ऐसी भारतीय मां की जीवन-गाथा चित्रित हुई है, जो साहस, वीरता, स्वाभिमान, देश-प्रेम आदि की साक्षात् प्रतिभा है। वह अपने कायर, शराबी, अकर्मण्य तथा अस्थिर प्रकृति के पुत्र को उत्साही पराक्रमी तथा देशभक्त बनाना चाहती है। वह अबला होने पर भी सबला है और अबला कहलाना स्त्रीत्व या मातृत्व का अपमान समझती है। उसका बड़ा पुत्र वीरेन्द्र देशभक्त एवं क्रांन्तिकारी है, वह जेल की हथकड़ियों में हंसता-खेलता है, मां को इस बात का गर्व है, वह अपने छोटे पुत्र को भी उसी राह पर अग्रसर देखना चाहती है।

'उग्र' की यह कहानी आत्मकथात्मक शैली में विरचित है। इसमें कायर पुत्र अपनी देशभक्त तथा वीरतामयी मां के आदर्शवादी चरित्र को आत्म-कथा के रूप में प्रस्तुत करता है। इसकी भाषा विषयानुरूप, नए-नए उपमानों से सुसज्जित, अत्यन्त ओजमयी है। कथा का आरम्भ असाधारण मां के चारित्रिक परिचय से हुआ है और अन्त भीरु पुत्र की उत्साह-वाणी से, जो लाल पगड़ी वाले सिपाही को वीरता की मूर्ति (मां) की ओर बढ़ने से रोकता है। मध्य में राष्ट्रीय चेतना को उत्तेजित करने वाली घटनाएं हैं,

जो कथानक को विस्तार, कुतूहल तथा चरम-सीमा की ओर ले जाती हैं। राष्ट्रीय ज्योति को उद्दीप्त करना ही कथाकार का मूल ध्येय है, जिसे उसकी लेखनी अभिव्यंजित करने में अपूर्व सफलता प्राप्त कर सकी है।

"दिल्ली की बात" की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक है, इसमें दिल्ली के ऐतिहासिक साम्प्रदायिक संघर्ष की घटना का कल्पना द्वारा चित्रण हुआ है। साम्प्रदायिक संघर्ष को शान्त कराने के उद्देश्य से, महात्मा गांधी और मौलाना मुहम्मद अली सक्रिय भाग लेते हैं। गांधीवादी आदर्शों की स्थापना के साथ-साथ, कथाकार हिन्दू-समाज की उस विद्रूपता को भी हमारे सम्मुख रखता है, जिसके परिणामस्वरूप हिन्दू विधवाओं को नारकीय कष्ट सहने पड़ते हैं और वे इस्लाम धर्म को ग्रहण करने के लिए बाध्य हो जाती हैं। उनमें प्रतिहिंसा की भावना भड़कती है और वे अपनी सन्तानों को रक्तपात के लिए उकसाती हैं। इन मूल भावों को कथाकार ने संवाद-पद्धति तथा वर्णनात्मक-पद्धति में अंकित किया है। कथ्य के अनुसार उसके अभिव्यक्ति पक्ष का उपयोग, उसके प्रभाव को बढ़ाता है और कलात्मक सौन्दर्य की सृष्टि करता है। संवाद-योजना पात्रों के अनुरूप है और वर्ण्य-विषय से पूर्णतः सम्बद्ध है। कथा के मध्य में पार्वती आत्म-कथा सुनाती है, जिससे समस्या के मूल स्रोत का उद्घाटन होता है और अन्त में गांधीवादी अहिंसा से संघर्ष को शान्त किया जाता है। यह कहानी उग्र की कथा-शैली के विकास की परिचायक है।

"दोज़ख़! नरक!!" की मूल संवेदना, हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता के विरोध और इन दोनों जातियों की एकता से सम्बद्ध है। इसकी कथा 'अदालत', 'मुलज़िम', 'दूसरा बन्दी' और 'फ़ैसला' नामक उपशीर्षकों के अन्तर्गत कही गई है। इसमें प्रश्नोत्तर शैली का वर्ण्य-विषय के अनुरूप उपयोग, बड़ा प्रभावशाली बन पड़ा है। कहानी पढ़ते समय ऐसा लगता है कि हम वास्तव में किसी न्यायालय में खड़े हैं और साम्प्रदायिकता के प्रसारकों को ईश्वर द्वारा दण्ड पाते हुए देख रहे हैं। कथाकार की व्यंग्यात्मक शैली समस्या के उद्घाटन में विशेष सहायक है। कहानी का अन्त गांधीवादी आदर्शों के अनुसार, हिन्दू-मुस्लिम एकता और उच्च मानवीय भावों के प्रचार से होता है। इसकी भाषा अरबी-फारसी के शब्दों से युक्त

विषयानुसारिणी है, उसमें तीखे व्यंग्य-भरे शब्द धर्मान्ध लोगों को कुमार्ग से विरत करने के लिए बाणों का-सा कार्य करते हैं। इस कहानी के कलात्मक प्रभाव को आघात पहुंचाने वाली उपदेशात्मकता है, जो युगीन प्रभाव की स्पष्ट परिचायक है।

'ईश्वरद्रोही' में मानवीय धर्म की स्थापना और साम्प्रदायिक संकीर्णता का घोर विरोध किया गया है। कथाकार के विचारानुसार मनुष्यत्व ही सच्चा धर्म है, संसार के दुर्बल, अपमानित, दरिद्र तथा पथभ्रष्ट लोगों को सहायता देना ही ईश्वरोपासना है। इस कहानी का निर्माण भी विभिन्न उपशीर्षकों—'भिखारिन', 'नवाबजादी', 'गोपालजी', 'रामजी', 'मौलवी साहब', 'दंगे में' और 'युद्ध देहि' के अन्तर्गत हुआ है। रचना-शैली की दृष्टि से यह वर्णनात्मक एवं संवादात्मक कहानियों की कोटि में आती है। इसकी उपदेशात्मकता गांधीवादी आदर्शों के प्रभाव को अभिव्यंजित करती है।

'खुदा के सामने' कहानी का वर्ण्य-विषय भी हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक संघर्ष को दिखाना और मानवीय धर्म की स्थापना है। कथाकार ने 'हिन्दू', 'मुसलमान', 'दंगा', 'अन्धा जोश' एवं 'खुदा के सामने' उपशीर्षकों में कथा कही है। धर्मान्धता की भर्त्सना करना उसे अनिवार्य-सा प्रतीत होता है, वह धार्मिक कट्टरता का घोर विरोधी है। वह हिन्दू-मुसलमानों को ईश्वर के सम्मुख ले जाकर नरबलि करने वाले नराधमों को नरक का दण्ड दिलाता है। उसकी संवाद-योजना, शब्द-चयन, प्रतिपादन शैली और चरित्र-चित्रण कला मूल संवेदना को अभिव्यक्ति देने में ही अपनी सार्थकता समझती है। इस प्रकार की कहानियों में कथाकार का 'कला जीवन के लिए है' वाला दृष्टिकोण साकार हो उठा है।

'शाप' कहानी हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष पर निर्मित कहानियों में सर्वश्रेष्ठ स्थान की अधिकारिणी है। यह पाठकों के मस्तिष्क और हृदय को झकझोरने तथा द्रवित करने में समर्थ है। इसका सृजन वर्णनात्मक, वार्तालापात्मक तथा आत्म-कथात्मक पद्धतियों के मिश्रण से हुआ है। कथाकार रूढ़िवादी धर्मों के विनाश के लिए परमहंस जी के शाप की कल्पना करता है। उससे कुछ अस्वाभाविकता का संचार अवश्य होता है, किन्तु कहानी के मूल उद्देश्य को कोई आघात नहीं पहुंचता है। घटना-चक्र, पात्रों के क्रिया-

कलाप, संवाद-योजना और भाषा-शक्ति का उपयोग साम्प्रदायिकता के दुष्परिणाम दिखाने में हुआ है। यह कहानी भी तत्कालीन हिन्दू-मुस्लिम धर्मान्धता के विरोध का लक्ष्य चरितार्थ करती है। 'कला, कला के लिए है' के समर्थक इसमें स्थूलता, उपदेशात्मकता तथा सौन्दर्य-अभाव की गन्ध भी प्राप्त कर सकते हैं।

'खुदाराम' चरित्रप्रधान कहानी है, इसमें खुदाराम नामक पात्र अपने मानवधर्मी विराट व्यक्तित्व से हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष को मिटाता है। वह इस ध्येय की पूर्ति में नारियों, छोटे-छोटे बच्चों आदि का सहयोग लेकर कथा को मार्मिकता तथा प्रभावोत्पादकता प्रदान करता है। कथा का प्रारम्भ वर्णनात्मक शैली में हुआ है। उसके बाद रुकमिनिया अपनी आत्म-कथा सुनाती है, कथाकार उसके प्रवेश से कथा को विकास तथा संघर्ष प्रदान करता है। उसी के कारण देवनन्दन प्रसाद को परिवार-सहित मुसलमान बनना पड़ता है और उनके पुत्र (रघुनन्दन) इनायत अली को हिन्दू बनने के लिए भयानक संघर्ष मोल लेना पड़ता है। यही घटनाएं हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता की अग्नि को भड़काती हैं और खुदाराम का उच्च मानवीय दृष्टिकोण उस जलती अग्नि को शान्त करता है। कथा के बीच-बीच में कवितांशों का प्रयोग नायक के चरित्र का उद्घाटन करता है, मूल संवेदना को वाणी देता है और उससे सरसता का संचार भी होता है।

'नागा नरसिंहदास' में कथाकार का देशप्रेमी व्यक्तित्व अकर्मण्य साधुओं को भी, गांधी जी के सत्याग्रह आन्दोलनों में सम्मिलित होने की प्रेरणा देता है। इस कहानी के नागा नरसिंहदास देश-भक्त सन्यासी हैं, जिनमें कथाकार की आत्मा मुखरित हो उठी है। वे अपने मनोबल से, अपनी समाधि से साधु-समाज को देश के उद्धार के लिए ललकारते हैं। इस कहानी का आरम्भ संवादों से होता है, इसी पद्धति में प्रायः सारी कथा विस्तार प्राप्त करती है, बीच-बीच में वर्णनात्मक शैली कथा-सूत्रों को जोड़ने में सहयोग देती है। भारतीय साधुओं के अलौकिक चरित्र के शुभ्र तथा अशुभ्र पक्षों का उद्घाटन करती हुई यह कहानी संवादों से ही समाप्त होती है। इसकी भाषा सरल, सुबोध तथा कवितांशों से युक्त है, वह वर्ण्य-विषय को स्वाभाविकता से व्यक्त करने में सशक्त भी है।

'वह दिन' में स्वतन्त्रता से पूर्व के राष्ट्रीय जागरण और स्वतन्त्रता के उपरान्त की दुर्दशा का एक साथ चित्रण हुआ है। कथाकार राष्ट्रीय चेतना को तो वरदान मानता है, किन्तु देश के स्वतन्त्र होने पर भी, उसका दुर्दशा-ग्रस्त होना उसे व्यथित कर देता है। उसे पुराने दिनों का स्मरण सताता है, जिसमें एक देशभक्त ने स्वर्गिक सुख अनुभव किया था। प्रतिपाद्य-विषय की उपयुक्त अभिव्यक्ति के लिए कथाकार ने आत्मकथात्मक तथा संस्मरणात्मक शैली का आश्रय लिया। उसमें नाटकीय तत्त्व के स्पर्श से कुतूहल और रोचकता लाई गई है। कहानी में कहीं उत्साह-भाव हिलोरें लेता है और कहीं निराशा का अन्धकार विकीर्ण है।

'मां कैसे मरी' का पृष्ठाधार ऐतिहासिक है। इसमें जलियांवाला बाग के हत्याकाण्ड के समय का घटना-चक्र आत्मकथात्मक शैली में चित्रित हुआ है। बर्बर आतातायी अंग्रेज अधिकारियों के निर्मम दमन-चक्र में एक निर्दोष भारतीय मां प्रसव-वेदना से कराह कर दम तोड़ देती है। यह करुण-कथा कहानी का प्रधान-पात्र, अपने पुत्र दुर्भाग्यचन्द को सुनाता है। उसके आत्मकथन में हृदय-विदारक करुणा है, जो पाठकों को संवेदना से भर देती है। कथाकार अंग्रेजों के प्रति उपेक्षा और विद्रोह के भावों को उद्दीप्त करता है। उसका घटना-चयन, पात्र-नियोजन और वातावरण-निर्माण इसी सिद्धि के निमित क्रियाशील है।

'जैतू में' देशप्रेम और मानवीय संवेदनाओं का अभिव्यंजन हुआ। है इसकी पृष्ठभूमि भी भारतीय इतिहास के उन पृष्ठों से सम्बद्ध है, जो अंग्रेजों के पाशविक अत्याचारों से रक्तरंजित हैं। इसकी कथा और जैतू के हत्या-काण्ड के मार्मिक घटना-चक्र को लेकर चलती है। यह आत्मकथात्मक पद्धति की कहानी है। इसमें पत्रात्मक शैली का भी यथास्थान उपयोग हुआ है। भाषा सरल होने पर भी विचारोत्तेजक तथा मर्मस्पर्शी है। कथाकार का राष्ट्रप्रेमी हृदय उसे प्रवाह और ओज प्रदान करता है।

'ऐसी होली खेलो, लाल' राजपूती वीरता से सम्बद्ध है—रोमांचकारी कहानी है। इसकी मूल संवेदना राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत है। इसका प्रारम्भ आत्मकथात्मक पद्धति से, और विकास अभिनयात्मक प्रणाली से होता है। ठाकुर बघेलसिंह, युवक-युवती आदि सभी पात्रों का चरित्र-

चित्रण अप्रत्यक्ष शैली से ही प्रकाश में लाया जाता है। कथाकार स्वयं तटस्थ रहता है, पात्रों के क्रिया-कलापों और वार्तालापों से उनके राष्ट्रीय तथा मानवीय प्रेम-भरे व्यक्तित्व का उद्‌घाटन करता है। वर्ण्य-विषय को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए बघेलसिंह द्वारा राष्ट्रीय गीत के गान का बार-बार आयोजन किया जाता है। वह विविध प्रकार से तलवार घुमा-घुमाकर पैंतरे बदल-बदलकर, नाचने और गाने लगता है। उससे कहानी में नाटकीयता का अद्‌भुत सौन्दर्य विकीर्ण होता है।

उपर्युक्त कहानियों के विवेचन से स्पष्ट है कि कथाकार का राष्ट्रधर्मी 'उग्र' व्यक्तित्व सर्वत्र मुखरित हुआ है। उसने एक ओर धर्मान्धता, सामाजिक अनैतिकता आदि का घोर विरोध किया है और दूसरी ओर विदेशी शासकों के दमन-चक्र को दिखाकर भारतीय नवयुवकों तथा नवयुवतियों को देश के लिए सर्वस्व समर्पण की पुनीत प्रेरणा प्रदान की है। उसकी शिल्प-विधि मूलसंवेदनाओं के अनुरूप है और कथ्य को अधिक-से-अधिक मार्मिक बनाने में अपनी सार्थकता समझती है।

मुक्ता

प्रस्तुत कहानी-संग्रह में प्रतीकात्मक कथाएं तथा भाव कथाएं संकलित हुई हैं। इनकी संख्या १८ है और इनके नाम हैं—'प्रार्थना' 'रिसर्च', 'भ्रम', 'मुक्ता', 'टीला और गड्ढ़ा', 'दोज़ख़ की आग', 'नेता का स्थान', 'देश-भक्त', 'रेशमी', 'लाइन पर', 'फुलझड़ी', 'आचार्य लाल बुझक्कड़', 'प्यारी पताका', 'तीन कलाकारों की एक भूल', 'और तब महाराज कुमार को नींद आई', 'घूंघट के पट खोल री', 'अवतार' और महाराजाधिराज'। ये कहानियां 'उग्र' की प्रारम्भिक कहानी-कला की परिचायक हैं। इनकी शिल्प-विधि प्रसाद की कहानी-कला से प्रेरित है। कलाकार के स्वच्छन्द व्यक्तित्व के कारण ही, कई कहानियां अविकसित रह गई हैं, उनमें अस्पष्टता आ गई है।

'प्रार्थना' में 'उग्र' पुरुष की भावना पर बल देते हैं और निष्क्रिय प्रार्थनाओं का खण्डन करते हैं। इनके विचार से शक्तियां मांगने से नहीं मिलतीं, वे तो साधना से प्राप्त होती हैं। जो व्यक्ति स्वार्थ-पूर्तियों के उद्देश्य

से प्रेरित होकर भक्ति-भावना प्रदर्शित करते हैं, यह कहानी उनका उपहास उड़ाती है। इसका निर्माण कथात्मक और अभिनयात्मक पद्धति में हुआ है। यह 'क्लासिक्स' के गुण से सुसज्जित, अत्यन्त लघु आकारमयी कहानी है। इसकी मूल संवेदना सांकेतिक रूप में अभिव्यंजित हुई है।

'रिसर्च' 'उग्र' के उत्कृष्ट भाव-कथाओं में से एक है। यह मनुष्य की स्वार्थलोलुपता का उद्घाटन करती है, जो मनुष्य को शैतान की राह पर अग्रसर करती है। उसी के आदेश से मनुष्य अबोध बालकों तक की हत्या करने को तत्पर हो जाता है। इस कहानी में नाटकीय तत्व की प्रधानता मिलती है और इसका आकार अत्यन्त लघु है। पात्रों का चरित्र-चित्रण, वार्तालापों और क्रिया-कलापों द्वारा प्रकाशित किया जाता है। कथाकार स्वयं तटस्थ रहा है।

'भ्रम' में सम्प्रदायवाद और जातिवाद की विजय और सरल सत्य की पराजय दिखाई गई है। इसका 'रक्तासुर' नामक पात्र सम्प्रदायवाद और जातिवाद का प्रतीक है, उसी की जय-जयकार होती है। माता मनुष्यता का बालक भगवान् सत्य-पथ पर चलता हुआ परास्त होता है। रचना-लक्ष्य की दृष्टि से यह यथार्थवादी और रचना-शैली के नाते कथात्मक भाव-कथा है। इसकी मूलसंवेदना कुछ रहस्यमयी पद्धति से व्यक्त हुई है। उस पर छायावादी शैली का प्रभाव लक्षित होता है।

'मुक्ता' 'उग्र' कृत प्रतीक कथाओं में सर्वोच्च स्थान रखती है। इसमें 'मुक्ति' और 'मुक्ता' दो प्रधान शब्द हैं। 'मुक्ता' लोभ, लालसा और काल का प्रतीक है। उसे 'मुक्ति' समझकर लोग फंस जाते हैं। वह स्वाधीनता की द्योतक नहीं, वरन् 'माया के गले का चमकीला फन्दा' है। कथाकार की शैली छायावादी कवियों की-सी है, उसने अमूर्त को मूर्त रूप देने का प्रयास किया है। उसका उद्देश्य सांकेतिक पद्धति से अभिव्यक्ति प्राप्त करता है। उसकी भाषा कुसुमित शब्दों से लदी हुई है।

'टीला और गड्ढा' में टीला, अमीरी और गड्ढा निर्धनता का प्रतीक है। कथाकार की सहानुभूति निर्धनों के प्रति है, इसी से वह भूकम्प द्वारा टीले अर्थात् धनिकों को धराशायी होते हुए दिखाता है। यहां भूकम्प को राज्य-क्रान्ति का प्रतीक मान सकते हैं, उसी से समता स्थापित होती है और

अभिमानियों का मिथ्या गर्व चूर-चूर होता है। कथाकार ने मानवीकरण की पद्धति को अपनाया है और अभिनयात्मक शैली में कथानक को विस्तार दिया है। उसकी भाषा सरल होने पर भी प्रतीकात्मक भावों को व्यक्त करने में समर्थ है।

'नेता का स्थान' का कथानक भी प्रतीकात्मक है। इसमें चित्रित अभिमानी नेता, देश के उन नेताओं का प्रतीक है, जो जनता के प्रतिनिधित्व से सशक्त बनकर, फिर उसी के साथ विश्वासघात करते हैं। इस कहानी की उत्तेजित जनता, देश के उबलते मनोभावों की प्रतीक है। इस कहानी का निर्माण वर्णनात्मक पद्धति में हुआ है। पात्रों का चरित्र-चित्रण विश्लेषणात्मक प्रणाली से किया गया है। संवाद-योजना सोद्देश्य है और कहानी को स्फूर्ति प्रदान करती है। इस कहानी के सुनियोजित व्यंग्य मूल संवेदना में प्रभावोत्पादकता का संचार करते हैं।

'देश भक्त' में कथाकार का देशप्रेमी व्यक्तित्व मुखरित हुआ है। वह उसी को सच्चा देशभक्त मानता है, जो देशद्रोहियों को समाप्त करने और देश को स्वतन्त्र कराने के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर सके। इस कहानी की कथा प्रतीकात्मक है, रचना-लक्ष्य के आधार पर उसे आदर्शवादी कह सकते हैं। रूमानी युग में, रूमानी शिल्पविधि में, क्रान्तिकारी राष्ट्रीय भावों को अभिव्यक्त करना 'उग्र' भली प्रकार जानते हैं। यह कहानी इस तथ्य का उत्कृष्ट उदाहरण है।

'रेशमी' में सूफ़ी-रहस्य-भावना प्रस्फुटित हुई है। सूफ़ी सर्वस्व त्याग में चिर-अनुराग की मादकता का प्रचार करते हैं। यह कहानी इसी भूल-भाव को प्रतीकात्मक रूप में व्यक्त करती है। रेशम के कीड़े की कहानी, इस बात का प्रमाण है कि विरह की भट्ठी में तपकर कोई भी स्वर्ण बन सकता है। कहानी में लाक्षणिकता, सांकेतिकता तथा प्रतीकात्मक अत्यधिक होने से अस्पष्टता आ गई है। कथाकार के स्वच्छन्द व्यक्तित्व के कारण कथानक कुछ अविकसित सा है उसकी रचना-शैली आत्मकथात्मक है। भाषा भावुकता और कल्पना से युक्त है। यह अलंकृत तथा काव्यमयी है।

'लाइन पर' उग्र की एक साधारण भाव-कथा है। इसमें भारतीय नारी की कुण्ठा-ग्रस्त मनः स्थिति का उद्घाटन हुआ है। वह पुरुषों के समान

अधिकार सम्पन्न भी बनना चाहती है और पतिव्रता के आदर्श को भी नहीं त्यागना चाहती है। इसी संघर्ष में उसकी शक्तियों का अपव्यय होता है। कथाकार इस मानसिक दशा के चित्रण के साथ-साथ, स्वतन्त्र भारत के नेताओं के यथार्थ रूप का सांकेतिक चित्रण करना भी नहीं भूलता। उसका व्यंग्य-प्रिय कलाकार यथावसर चुटकियां लेता हुआ चलता है। उसने कथात्मक और अभिनयात्मक पद्धतियों द्वारा कथा को विस्तार दिया है। पात्रों का चरित्र उनकी वार्ता से प्रकाशित होने दिया है।

'फुलझड़ी' में कथाकार नन्हीं-सी फुलझड़ी के प्रकाश में विराट सत्य का दर्शन करता है। जलने में उसे जीवन की सार्थकता और उससे भागने में दुर्भाग्य प्रतीत होता है। इसी भाव-विशेष को जगाना उसे अभीष्ट है। यह कहानी शिल्प की दृष्टि से साधारण है। इसमें कहानी-कला के उपकरण अपना काम ठीक नहीं कर पाए हैं। कहानी में सर्वत्र अस्पष्टता-सी बनी रहती है।

'आचार्य लाल बुझक्कड़' व्यंग्यात्मक भाव-कथा है। इसमें कथाकार अनधिकारी साहित्यकारों, प्राध्यापकों और आलोचकों को अनावृत करता है। उसे आचार्य लाल बुझक्कड़ जी की जीवन-गाथा के माध्यम से मूलभाव को कथात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। विषयानुरूप व्यंग्य-विधान का आयोजन और नई-नई उपमाओं का प्रयोग कथ्य को प्रभावोत्पादक बनाने में अपने उपमान आप हैं।

'प्यारी तलवार' में राष्ट्रीय गौरव सम्बन्धी भावनाओं की अभिव्यक्ति प्रतीकात्मक शैली में हुई है। प्यारी तलवार गत गौरव, साहस तथा देशप्रेम का प्रतीक है, जिसे नई पीढ़ी संभालने में असमर्थ-सी है। उसमें इच्छा-शक्ति प्रधान है, उसके अनुरूप पौरुष का अभाव है। कथा का आकार अत्यन्त लघु है, कथा-विकास के अंग, सांकेतिक रूप में ही अपना-अपना कार्य करते हैं। कथाकार एक भाव-विशेष को प्रश्रय देता है।

'तीन कलाकारों की भूल' में नारी के वासनात्मक आकर्षण को अभिशाप सिद्ध किया गया है। इस कहानी का 'कलाल' निजी कटु अनुभव के आधार पर तीन कलाकारों से विनती करता है कि नारी से वैसे ही दूर रहें, जैसे शेरनी से मनुष्य दूर रहता है। कलाकार उसकी विनती का

उपहास उड़ाते हैं और उसी के परिणामस्वरूप वे मृत्यु का ग्रास बनते हैं। कथाकार तिलस्मी क्रिया-कलापों का आश्रय भी लेता है, उससे कहानी में अस्वाभाविकता का संचार होता है।

'और तब महाराजकुमार को नींद आई' में 'उग्र' उन धनिकों का उपहास उड़ाते हैं, जो दूसरों के परिश्रम से अर्जित की हुई सम्पत्ति का भोग करते हैं। इस कहानी के महाराजकुमार इन्हीं धनिकों के प्रतीक हैं, उन्हें अनिद्रा-रोग विकल करता है, वे भिखारियों के बीच जाकर ही इस रोग से मुक्ति पाते हैं। इससे कथाकार यही व्यंजित करता है कि सुखी रहने का अधिकार उसी को मिलना चाहिए, जो दुःख सहने को तत्पर है। रचना-लक्ष्य की दृष्टि से यह स्वस्थ यथार्थवादी कहानी है। इसका निर्माण वर्णनात्मक शैली में हुआ है और उसे बल प्रदान करने वाला व्यंग्य-विधान है।

'घूंघट के पट खोल री' में सच्चे प्रेम का समर्थन और वासनात्मक प्रेम की अवहेलना की गई है। कथाकार पावन प्रेम को जाति और वर्ण की परिधि से ऊंचा मानता है और उसका अपमान करना ईश्वर का अपमान करना है। इस कहानी के प्रधान-पात्र यथार्थ जीवन से सम्बन्धित होने पर भी, आदर्शवादी हैं, उनके जीवन की दुर्घटनाएं उन्हें विरक्ति-मार्ग की ओर प्रेरित करती हैं। वे अपनी चित्तवृतियों का उदासीकरण करते हैं। कथाकार भारतीय संगीत के अलौकिक प्रभाव, मानवीय दुर्बलता और बाल-मनोविज्ञान को भी यथास्थान उभारता है। उससे कहानी के प्रभाव में वृद्धि होती है।

'अवतार' नामक भाव-कथा, मानवीय स्वभाव की विचित्रता का उद्‌घाटन करती है। इसका कथानक यथार्थवादी है, इसके पात्र काल्पनिक हैं और शैली में नाटकीय सौन्दर्य यत्र-तत्र विकीर्ण मिलता है। कथाकार मानवीय स्वभाव पर व्यंग्य करता है। मानव विपत्ति में 'अवतार-अवतार' का राग अलापता है और उसके उपस्थित होने पर उसे अपमानित करता है। इस कथ्य को अभिव्यंजित करने में कथाकार का वर्णन-कौशल महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त कर सका है।

'महाराजाधिराज' में एक विलासी महाराजा का यथार्थवादी वृतान्त

अंकित हुआ है। कथाकार काल-चक्र की टेढ़ी चाल का और राजसी अहं के वास्तविक रूप को दिखाना चाहता है। उसने आत्मकथात्मक तथा वर्णनात्मक शैली में कथा-निर्माण किया है। उसका लक्ष्य यद्यपि यथार्थ गतिविधियों का उद्घाटन करना है, तथापि कुछ स्थलों का कुप्रभाव बल पकड़ लेता है। कथाकार यथार्थवाद की सीमा का उल्लंघन करता है। उसकी भाषा अनावरण चित्र प्रस्तुत करती है, उसमें 'साले', 'हरामी' आदि अशिष्ट शब्दों का प्रयोग खटकता है।

संक्षेप में 'मुक्ता' कहानी-संग्रह की अनेक प्रतीकात्मक तथा भाव-प्रधान लघु-कथाएं, उग्र की कहानी-कला का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। उनमें अनुभूति और अभिव्यक्ति का सौष्ठव टैगोर की कथाओं का स्मरण करा देता है। उनका कवित्वमय व्यंग्य उन्हें अमरता प्रदान करता है। किन्तु 'रेशमी', 'फुलझड़ी', 'प्यारी तलवार' आदि कहानियां कथाकार के स्वच्छन्द व्यक्तित्व के कारण अविकसित ही रह गई हैं। उनमें कहानी के उपकरणों को अपना कार्य करने का पूर्ण अवसर नहीं मिला है। इसी प्रकार 'महाराजाधिराज' में अश्लीलता का दोष भी लक्षित होता है।

चित्र-विचित्र

इस कहानी-संग्रह में उग्र की १३ हास्य-व्यंग्य-प्रधान कहानियां संकलित हुई हैं। उनके नाम हैं—'पिशाची', 'ब्लेक एण्ड ह्वाइट', 'जब सारा आलम सोता है', 'मूसलब्रह्म', 'गंगा, गंगदत्त और गांगी', 'सोसायटी आफ डेविल्स', 'काने का ब्याह', 'मूर्खों का मीना बाजार', 'सनकी अमीर', 'प्राइवेट इंटरव्यू रील', 'कम्युनिस्ट दरवाजे पर' और 'चित्र-विचित्र'। इन कहानियों में कथाकार का अलमस्त फक्कड़पन और व्यंग्य-प्रिय व्यक्तित्व मुख्यत: अभिव्यंजित हुआ है। कहानीकार मनोरंजन की सामग्री जुटाने के साथ-साथ अनेक सामाजिक कुप्रथाओं, विसंगतियों तथा विद्रूपताओं का व्यंग्यात्मक चित्रण भी करता है। उसके व्यंग्य व्यक्तिगत आक्षेप न होकर, सामाजिक कुरूपता पर किए गए कटाक्ष हैं। उसकी ये कहानियां हिन्दी-हास्य-व्यंग्य को समृद्ध बनाती हैं।

'पिशाची' का उद्देश्य मोटरगाड़ियों द्वारा होने वाली हत्याओं और

उनके स्वामियों या बालकों की पाशविकता को दिखाना है। इस विषय पर निर्मित हिन्दी कहानियों में इस कहानी का उत्कृष्ट स्थान है। कथाकार ने हास्य-व्यंग्य-प्रधान शैली में कथानक का निर्माण किया है। उसने पात्रों का चरित्र अभिनयात्मक पद्धति से प्रकाशित होने दिया है। विषयानुक्रम भाषा का सौष्ठव कहानी को प्रभावोत्पादक बनता है।

'ब्लेक एण्ड ह्वाइट' में आधुनिक बाल्मीकि का विद्रूपमय जीवन, व्यंग्यात्मक शैली में वर्णित हुआ है। यह आधुनिक बाल्मीकि सेठ भारत भूषण है, जिसके परिवार वाले उसकी पाप-कमाई के ही हिस्सेदार हैं, विपत्ति में उसका साथ देने से इन्कार कर देते हैं। कथाकार ने पात्रों के चरित्र-चित्रण में मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी शैली का भी सहयोग लिया है। उसका आधुनिक बाल्मीकि यथार्थ से आदर्श की ओर अग्रसर होता है।

'जब सारा आलम सोता है' कहानी राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की हत्या के समय की एक झांकी प्रस्तुत करती है। सी० आई० डी० विभाग की विलासिता और प्रमाद ने, नाथूराम गोडसे को बापू की हत्या में अप्रत्यक्ष सहयोग दिया था। कथाकार व्यंग्यात्मक शैली में, पत्रकारों, ज्योतिषियों और पुलिस अधिकारियों पर प्रकाश डालता है। किन्तु उसके तर्क-वितर्क को विस्तार देने से, कथा में व्यर्थ का विस्तार आ गया है, जो उसे बोझिल बनाता है।

'मूसल ब्रह्म' अन्ध विश्वासों पर पद-प्रहार करने वाली सशक्त कहानी है। इसमें ग्राम्य जीवन की अज्ञानता का व्यंग्यात्मक चित्रण हुआ है। कथाकार के अनुसार 'विषस्य विषमौषधम्' अर्थात् विष ही विष का उपचार है। वह गंगू गोसाईन और उसके सहयोगी अब्दुल्ला के पाखण्ड तथा व्यभिचार को अनावृत करने के लिए निर्भयदेव को 'मूसब्रह्म' के रूप में अवतरित करता है। आडम्बरों और अनाचारों के घोर विरोध में कथाकार को अपनी लेखनी की सार्थकता प्रतीत होती है। उसने अभिनयात्मक तथा हास्य-व्यंग्यात्मक शैलियों में मूल संवेदना को अभिव्यंजित किया है।

'गंगा, गंगदत्त और गांगी' हिन्दी कहानी-साहित्य के विशिष्ट 'फेन्टेसीज़' में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इसके कथानक का पृष्ठाधार पौराणिक है। इसकी रूपक-कथा वृद्ध ब्राह्मण की शास्त्र-सम्मत और

शास्त्रीय भोग-लिप्सा पर करारा व्यंग्य करती है। ब्राह्मण और ब्राह्मणी के कार्य-व्यापार उत्कृष्ट हास्य का संचार करते हैं। उनके संवाद कथा को गति और उनकी चारित्रिक विशेषताओं को प्रकाश प्रदान करते हैं।

'सोसायटी आफ डेविल्स' संस्मरणात्मक शैली में निर्मित सफल हास्य-प्रधान कहानी है। इसका कथानक आदि से अन्त तक हास्य को प्रश्रय देता है। इसके पात्रों में 'पीटर दि ग्रेट' हास्य की साक्षात् मूर्ति है, जिसके कार्य-कलापों से गोरे साहब अंगारे की तरह लाल और गर्म होते हैं और पाठक हास्य रस का रसास्वादन करते हैं। इसी प्रकार जासूस जामवन्तसिंह के आगमन से भी कथानक के हास्य-प्रधान बनने में सहयोग मिला है। हास्य-विनोदप्रिय शैतान-मण्डली के सदस्य उसे उल्लू बनाते हैं। हास्य की सृष्टि में ग्रामीण भाषा, लंगड़ी हिन्दी और शैतानी भाषा का प्रयोग भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।

'काने का ब्याह' में उग्र हास्य-व्यंग्य शैली में काने लड़के-लड़कियों की विवाह-समस्या का उद्घाटन करते हैं। पुरुष स्वयं काना होकर भी कानी स्त्री से विवाह नहीं करना चाहता। कथाकार उसके इस अहंकार को मिथ्या सिद्ध करता है और इस बात पर बल देता है कि दिल काना नहीं होना चाहिए, आंखों में क्या रखा है ? यह तो केवल मन की भावना है। कथाकार काने कमलनैन के कार्य-कलापों को निष्फल और विधि के विधान को सबल दिखता है। वह अपने इस पात्र का यत्र-तत्र उपहास उड़ाता है। उसके उपहासों को तीखा और मार्मिक बनाने वाली भी भाषा है। 'मूर्खों का मीना बाजार' कहानी 'मोनताज' के शिल्प में लिखी गई है। उसका निर्माता यद्यपि पुरानी पीढ़ी का लेखक है, तथापि इसमें आधुनिक शिल्प-शैली का साधिकार प्रयोग करता है। वह समाज के नाना वर्गों और परि-स्थितियों पर कहीं मृदु और कहीं कठोर व्यंग्य करता है। उसने छोटे-छोटे प्रतीकों में कथ्य को अभिव्यक्ति दी है। उसकी यह कहानी उसकी शिल्प-जागरूकता का सुन्दर उदाहरण है।

'सनकी अमीर' उग्र कृत उत्कृष्ट व्यंग्य-प्रधान कहानियों में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इसमें कथाकार का व्यंग्य अपने उत्कर्ष पर लक्षित होता है। वह अपने प्रधान-पात्र चौधरी रनजीत राय के जीवन पर

तीखे व्यंग्य-प्रहार करता है। उसका यह पात्र सनकी अमीर है, जो धन के नशे में चूर है, उसका दान प्रदर्शन-मात्र है, वह अपनी सनक में आकर किसी की निन्दा करता है और किसी पर दया दिखाता है। यही सनक उसे पागल बनाती है, वह अपने बाल नोचता है और चिल्लाता है।

'प्राइवेट इण्टरव्यू' में उग्र मिथ्या समाजवादी नेताओं पर व्यंग्य-बाणों का प्रहार करते हैं। ये समाजवादी नेता बंगलों में रहते हैं, जिनके सिंहदारों पर चमकदार मोटरें खड़ी रहती हैं। कथाकार इन नेताओं को सर्वस्व छोड़ने, गांवों में जाने और विचारानुसार आचरण बनाने की सम्मति देता है। उसने आत्मकथात्मक शैली में इस कहानी का निर्माण किया है और उसे प्रभावोत्पदक बनाने के लिए अभिनयात्मक शैली का उपयोग भी यथा-स्थान किया है।

'न्यूज रील' में देसी नेताओं, दयालु वृद्धाओं और भद्दे भिखारियों के यथार्थ स्वरूप को यात्रा-विवरण के रूप में अंकित किया गया है। कथाकार का सामाजिक यथार्थवादी दृष्टिकोण, देसी नेताओं पर तीखे व्यंग करने में विशेष उत्साह दिखाता है—'न जाने क्यों बिना थप्पड़ लगे ही नेता का चेहरा सूज उठा, बिना तमाचे लाल होकर सफेद हो गया।'[1] उसने अपने देश की दिव्य दान-रीति को वृद्धा के माध्यम से दिखाया है। उसकी मानवीय भावनाओं को अभिव्यंजित करने में यह कहानी विशेष महत्त्व रखती है।

'कम्युनिस्ट दरवाज़े पर' आत्म-संस्मरणात्मक कहानी है। यह सामाजिक विषमता पर सरस व्यंग्य करती है। इसमें कलकत्ता महानगर की सामाजिक गतिविधियों का सजीव चित्रण हुआ है। कहानीकार गोरीमल कोरिया के माध्यम से धनिकों का उपहास उड़ाता है और जनबल को धनिकों के विरुद्ध भड़कता है। उसके विचार से साम्यवाद रूप से नहीं, वरन् काले बुखार की भांति देश-देश से स्वयं ही आविर्भूत हो जाता है।[2] उसका यह व्यक्तिगत अनुभव साहित्य का अनुपम संस्मरण कहा जा

---

१. 'चित्र-विचित्र', 'न्यूज़ रील', पृ० ११०

२ 'चित्र-विचित्र', कम्युनिस्ट दरवाजे पर', पृ० ११८

सकता है।

'चित्र-विचित्र' कहानी व्यक्ति की मानसिक दशाओं का मनोवैज्ञानिक चित्रण करती है। कथाकार के अनुसार आन्तरिक पाप व्यक्ति के चेहरे पर प्रकट हो जाते हैं। पाप मनुष्य को कुरूप और सद्धर्म ज्योतिर्मय बनाता है। इस मूलभाव को उसने कंचनराम के जीवन-चरित्र के माध्यम से दिखाया है। उसके पतन को मनोवैज्ञानिक पद्धति से दिखाने में कहानीकार की सफलता स्तुत्य है। इस कहानी के रचना-काल तक, हिन्दी-कथा-साहित्य में ऐसी कहानियां बहुत कम लिखी गईं। इसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, तीखे व्यंग्य और उसी के अनुरूप भाषा-सौष्ठव इसे उत्कृष्ट कहानियों की पंक्ति में प्रतिष्ठित कराने में पर्याप्त सबल हैं।

इस प्रकार 'चित्र-विचित्र' कहानी-संग्रह की कहानियां उग्र की विकासशील प्रौढ़ लेखनी की परिचायक हैं। ये अनुभूति की तीव्रता और अनुभूति की सूक्ष्मता को एक साथ महत्त्व देती हैं। इनमें तथाकथित अश्लीलता का भी अभाव मिलता है। ये कहानियां स्वस्थ मनोरंजन और समाज-सुधार की भावना को प्रश्रय देती हैं। इनमें स्थूल उपदेशात्मकता के स्थान पर मृदु तथा तीखे व्यंग्य-विधान का आयोजन विषयानुरूप मिलता है। वह व्यंग्य-विधान उर्दू के महान व्यंग्यकार सआदत हसन मंटो के व्यंग्य-विधान से बहुत कुछ समानता रखता है। उसका लक्ष्य सामाजिक दुर्गुणों का उपचार है। वह अमानवीय व्यवहार के प्रति घृणा जगाता है।

यह कंचन-सी काया

आलोच्य कहानी-संग्रह में प्रेम और आदर्श सम्बन्धी १२ कहानियां संकलित हुई हैं। इनके नाम हैं—'कला का पुरस्कार', 'चांदनी', 'मलंग', 'दितवारिया', 'प्रस्ताव-स्वीकार', 'ध्रुव धारणा', 'करुण कहानी', 'हत्यारा समाज', 'स्वदेश के लिए', 'संगीत-समाधि', 'सुधारक' और 'यह कंचन-सी काया'। इन कहानियों में वासनात्मक प्रेम की निन्दा और उच्च प्रेम की प्रशंसा की गई है। कथाकार सुधारवादी तथा पुनरुत्थानवादी दृष्टिकोण से ही सामाजिक अनाचारों को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करता है। उसका विश्वास भारतीयता में है, उसके रुग्ण रूप में नहीं। वह अप्रत्यक्ष रूप से

आदर्शवाद का समर्थक और प्रचारक है। उसे अपने प्रयास में बहुत कुछ सफलता भी मिली है, किन्तु कुछ स्थलों पर वह यथार्थवाद की सीमा से बाहर हो गया है, उसने अतियथार्थवाद या प्रकृतवाद के कुछ तत्त्वों को ग्रहण किया है। उससे अश्लीलता का समावेश भी इन कहानियों में हुआ है।

'कला का पुरस्कार' कहानी उग्र की बहुप्रशंसित कहानियों में से एक है। इसमें कलाकार के सामाजिक दुर्भाग्य के प्रति गहन व्यथा अभिव्यंजित हुई है। कलाकार की आत्मा स्नेह के लिए छटपटाती है और उसे मिलता है—अपमान, मिथ्या लांछन, दैन्य-दारिद्रय और प्राणदण्ड। इस कहानी के कलाकार कलाधर के साथ यही दुर्व्यवहार होता है। कन्दर्पपुर के प्रतापी राजा, उसी की एक-एक रचना के आगे उसे अपमानित कराते हैं। उसका एकांगी प्रेम उसे कोड़ों की मार दिलाता है और वह उसी मार से दम तोड़ देता है। इस कहानी का सृजन वर्णनात्मक शैली में हुआ है। रचना-लक्ष्य की दृष्टि से यह यथार्थवादी रचना है। इसका अन्त अत्यन्त करुणाजनक है और कलाकारों के प्रति सहानुभूति जगाना इसका प्रधान लक्ष्य है।

'चांदनी' में सामन्तवाद के अन्तिम भूपतियों की भोग-विलासिता, पाशविक प्रेम, अनैतिकता, अत्याचार और निष्ठुर व्यवहार का यथार्थ चित्रण हुआ है। कथाकार वासनात्मक प्रेम के प्रति घृणा और आदर्श के प्रति आदर-भाव प्रदर्शित करता है। उसकी चांदनी (स्त्री-पात्र) आदर्श-प्रेम के निर्वाह में अपने प्राण तक गंवा देती है। उग्र की कहानी विवादग्रस्त है, इस पर घोर अश्लीलता का दोष लगाया गया है, जिसमें आंशिक सत्य भी मिलता है। फिर भी, व्यंग्यात्मक चित्रण और करुण-भाव को जगाने से इस कहानी का महत्त्व अक्षुण्ण रहेगा।

'मलंग' चरित्र-प्रधान सामाजिक कहानी है। यह शिल्प और उद्देश्य दोनों दृष्टियों से उग्र की सर्वोत्तम कहानियों में से एक है। इसकी मूल संवेदना हिन्दू-मुस्लिम एकता, विश्वबन्धुत्व की भावना आदि से सम्बन्धित है। कथाकार का व्यंग्य-प्रिय व्यक्तित्व सामाजिक कुसंस्कारों पर बरसे बिना भी नहीं रहा है। किन्तु उसकी मुख्य उपलब्धि 'चाचाजी' जैसे अविस्मरणीय चरित्र की अवतारणा है, जिसके माध्यम से कथानक बल

करता है और प्रतिपाद्य-विषय प्रभावोत्पादकता की चरम-सीमा पर पहुंचा है।

'दितवारिया' संस्मरणात्मक कहानी है। इसका उद्देश्य उद्दण्ड भावुकता के सार्थक उदात्तीकरण को प्रश्रय देना है। कथाकार तुच्छ भावनाओं, बासनात्मक आकर्षण तथा पाशविक प्रवृत्ति के स्थान पर मानवीय सहानुभूति, स्वाभिमान और कृतज्ञता के उच्च भावों की स्थापना करता है। कथानक वार्तालापों से आरम्भ होता है और उन्हीं से समाप्त होता है। उसमें नाटकीय सौन्दर्य, विषयानुरूप भाषा-शैली का परिवर्तित रूप तथा कुतूहल सर्वत्र मिलता है।

'प्रस्ताव स्वीकार' कहानी देश-प्रेम, मानव-प्रेम और ऐतिहासिक दमन-चक्र का सजीव चित्र अंकित करती है। वह देश-द्रोह के प्रति उपेक्षा और राष्ट्रीय वीर-भावना के प्रति सम्मान का भाव जगाती है। उसके कथानक का पृष्ठाधार ऐतिहासिक है। उसकी रचना वर्णनात्मक शैली में हुई है, उसमें पत्र-पद्धति तथा अभिनयात्मक-पद्धति का प्रयोग भी, कुछ स्थलों पर मिलता है। उसके पात्रों में सलोनी का चरित्र बड़ा प्रभावशाली है, वह वीरता की साक्षात् मूर्ति है।

'ध्रुव धारणा' कहानी देश-प्रेम के ऊंचे आदर्श को लेकर चली है। इसमें दाम्पत्य-प्रेम की पावन सुगन्धि और हृदयद्रावक घटनाओं का सौष्ठव भी मिलता है। इसका उत्तेजनापूर्ण कथानक, उत्साही-पात्र और मार्मिक संवाद मूल संवेदना को अभिव्यंजित करने में पूर्ण सफलता प्राप्त कर सके हैं। रचना-शैली की दृष्टि से, यह कहानी अभिनयात्मक पद्धति में निर्मित हुई है, वर्णनात्मक शैली का सहयोग भी लिया गया है। रचना-लक्ष्य के विचार से इसे आदर्शवादी कहानियों में स्थान देना समीचीन होगा।

'करुण कहानी' नारी जीवन की करुण कथा है। इसमें उसकी विवशता, दुर्दशा, घुटन और हृदयद्रावक अन्त को अभिव्यक्ति मिली है। कथाकार समाज में नारी के निरीह अस्तित्व को प्रधान विषय बनाता है। वह पुरुष के अनैतिक तथा अधिनायकवादी आचरण को भी अनावृत करता है। उसका झुकाव नर-नारी के स्वाभाविक तथा उच्च प्रेम की ओर लक्षित

होता है। कहानी में आदर्श-प्रेम की व्याख्या, कवितांशों का प्रयोग तथा नाटकीय तत्त्व उसे महत्त्वपूर्ण बनाते हैं। किन्तु अशिष्ट शब्दों का प्रयोग उसके साहित्यिक सौष्ठव को आघात भी पहुंचाता है।

'हत्यारा समाज' में उग्र पाषाण-हृदय समाज की कड़ी आलोचना करते हैं। वे उस समाज-व्यवस्था पर तीखे व्यंग्य-बाण छोड़ते हैं, जो युवकों तथा युवतियों को अपनी इच्छानुसार विवाह नहीं करने देता और दहेज, जाति-पांति आदि कुप्रथाओं को प्रधानता देकर, उनके जीवन से खिलवाड़ करता है। इस कहानी का कथानक 'कोतवाल का कथन', 'रघुनन्दन का बयान', 'स्त्री की कहानी' और 'लेखक का कथन' नामक उपशीर्षकों में विभक्त हुआ है। उसकी रचना-शैली आत्मकथात्मक तथा पत्रात्मक है।

'स्वदेश के लिए' कहानी देश-प्रेम की भावनाओं से ओतप्रोत है। इसमें रूसी देशभक्त वसीली लायवफ अपनी-अपनी प्रेमिका रोजी एवं स्वजनों को भूलकर स्वदेश के लिए हंसते-हंसते आत्म-बलिदान करता है। उसके संवाद पाठकों की वीर-भावनाओं को उत्तेजित करते हैं, उसका बलिदान विपक्षियों के हृदय पर भी देशप्रेम की अमिट रेखा अंकित करता है। इस कहानी का कथानक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि लिए हुए है, उसका प्रारम्भ एवं विकास अभिनयात्मक पद्धति से होता है और अन्त देशप्रेम के उच्च भावों के प्रसार से होता है।

'संगीत-समाधि' में कथाकार का निजी दर्द ही प्रस्फुटित हो उठा है। उसके अनुसार समाज कलाकारों की उपेक्षा करता है, उन्हें सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करने की सुख-सुविधाएं नहीं देता। कलाकार दीपक की भांति निरन्तर जलते रहते हैं, वे समाज को उल्लास और मंगल का प्रकाश देते हैं। किन्तु उनका अन्त रुग्णता, निर्धनता तथा अपमान में होता है। वे प्रभात के दीपक की अन्तिम लौ की भांति भभककर बुझ जाते हैं। इस कहानी का कथानक लघु आकारमय है, उसकी रचना वर्णनात्मक शैली में हुई है। उसमें करुणा, संगीत और मानवीय संवेदनाओं के अनुरूप भाषा का सौष्ठव, प्रतिपाद्य-विषय को प्रभावोत्पादक बनाता है।

'सुधारक' कहानी के माध्यम से 'उग्र' पाखण्डी तथा व्यभिचारी समाज-सुधारकों का अनावरण करते हैं। इसका कथानक अभिनयात्मक शैली में

निर्मित हुआ है। पात्रों का चरित्र-चित्रण अप्रत्यक्ष पद्धति में मिलता है। कथाकार की सहानुभूति रामकिशोर की विधवा के प्रति है, जो अपने नारीत्व को संकट में पाकर विष-पान कर लेती है। इस कहानी की भाषा अति मार्मिक है। इसके संवाद मूलसंवेदना को सफलतापूर्वक अभिव्यंजित करते हैं। उनमें खटकने वाली बात अश्लीलता है, कथाकार ने उनके आयोजन में, यथार्थ की सीमा का उलंघन भी किया है।

'यह कंचन-सी काया' आत्मकथात्मक शैली में विरचित कहानी है। इसमें समाज की विरोधमयी स्थितियों, मिथ्या अहंकार तथा एकांगी प्रेम का व्यंग्यात्मक सफल चित्रण हुआ है। इसकी हुस्नबानू अपने मिथ्याभिमान, नश्वर शारीरिक सौन्दर्य और अपने निरीह प्रेमी का वृतान्त स्वयं सुनाती है। उसके कथनों का यथार्थ, उसके पश्चात्ताप का भाव और प्रतिपादन-शैली का सौन्दर्य कहानी को मार्मिकता, स्वाभाविकता तथा प्रभाव-शक्ति प्रदान करता है।

संक्षेप में, 'यह कंचन-सी काया' की अधिकांश कहानियां अनुभूति और अभिव्यक्ति की प्रौढ़ता, मौलिकता तथा उद्देश्यपूर्णता के गौरव से युक्त हैं। ये समाजसुधार, देश-प्रेम तथा मानवीय प्रेम को प्रोत्साहन देती हैं। उनमें यथार्थ की प्रधानता और आदर्श की स्थापना के संकेत मिलते हैं। किन्तु 'चांदनी', 'करुण कहानी', 'मंगल', 'सुधारक' आदि कहानियों में कहीं-कहीं अश्लीलता भी आ गई है, वह कथाकार के उद्देश्य में सन्देह उत्पन्न करती है। उसका कारण यथार्थवाद की सीमा का उल्लंघन है। कथाकार ने नैतिक बन्धनों की अवहेलना-सी की है, उसकी भाषा में गालियों तक का प्रयोग हुआ है।

काल कोठरी

इस कहानी-संग्रह में 'उग्र' की ऐतिहासिक कहानियां संकलित हुई हैं। उनके नाम हैं—'पंजाबी की रानी', 'देशद्रोही', 'रेन आफ टेरर', 'एक भीष्म स्मृति', 'सिक्ख-सरदार', 'प्यारी पताका', 'पागल' 'कर्तव्य और प्रेम', 'वीर कन्या', 'पवित्र पताका', 'नादिरशाही', 'निहिलिस्ट', 'भीषण सन्तोष' और 'काल-कोठरी'। ये कहानियां देश और विदेश के इतिहास से सम्बन्धित हैं

इनका मुख्य लक्ष्य राष्ट्रीय भावनाओं का प्रसार है। कथाकार रूसी क्रान्ति से विशेष रूप से प्रभावित हुआ है। उसने अन्याय के निर्भीक विरोधियों तथा देश-भक्तों के उत्तेजक कथानक उत्साह-भाव को जगाने तथा क्रान्ति-कारी आन्दोलनों की शक्ति देने के लिए प्रस्तुत किए हैं।

'पंजाब की रानी' कहानी आत्मकथात्मक शैली की है। इसका कथानक भारतीय इतिहास के उन पृष्ठों को स्मरण कराता है, जो अंग्रेज़ों के अन्याय और अमानुषिक व्यवहार से रंगे हुए हैं। उनका वास्तविक चित्रण देखकर ही, ब्रिटिश सरकार ने इस कहानी को जब्त कर लिया था। यह अपने कथ्य और शिल्प की दृष्टि से हिन्दी की उत्कृष्ट कहानियों में से एक है। इसमें महारानी जिन्दां के जीवन की ऐतिहासिक घटनाएं विभिन्न उपशीर्षकों में वर्णित हुई हैं। उनके वर्णन में कथाकार की निर्भीकता, भाषा-शैली की परिपक्वता तथा मौलिकता स्तुत्य है।

'देश-द्रोह' का कथानक एक ऐसी भारतीय युवती का ऐतिहासिक वृत्तान्त प्रस्तुत करता है, जो अपने पिता के देश-द्रोह का मूल्य अपने बलिदान से चुकाती है। कथाकार देश-द्रोही लालसिंह के प्रति घृणा और उसकी देश-भक्त बेटी जया के प्रति सम्मान-भावना जगाता है। उसने वर्णनात्मक-शैली में इस कहानी की रचना की है। उसकी भाषा में विषयानुरूप ओज, करुणा तथा दर्द मिलता है। वह भावाभिव्यक्ति का पूर्ण सामर्थ्य लिए हुए है।

'रेन आफ टेरर' कहानी सन् १८५७ के भारतीय राष्ट्रीय जागरण से सम्बन्धित है। यह अंग्रेज़ों के बर्बर अत्याचारों, क्रूर दमन-चक्रों आदि का सच्चा इतिहास पाठकों के सामने रखती है। इसका कटु सत्य भारतीय जनता को उत्तेजित करने में जादू का-सा कार्य कर सका और करता रहेगा। इसे भी अन्यायी अंग्रेज़ों ने जब्त कर लिया था। इस कहानी का यथार्थ चित्रण, नाटकीय सौन्दर्य और निर्भीक अभिव्यंजन 'उग्र' की कहानी-कला का उत्कृष्ट उदाहरण है।

'एक भीषण स्मृति' में भी कथाकार ब्रिटिश सरकार के अमानुषिक व्यवहार तथा अधिनायकवादी शासन का इतिवृत प्रस्तुत करता है। सन् १८५७ के भारतीय राष्ट्रीय जागरण को कुचलने के लिए, अंग्रेज़ों ने निर-पराध, निरीह तथा अबोध बालकों को प्राण-दण्ड दिया। उसे सुनकर

मनुष्यता छटपटाती है, आंखों में आंसुओं का झरना प्रवाहित हो उठता है। यह कहानी उन्हीं भयानक स्मृतियों को ताज़ा करती है। इसका निर्माण संस्मरणात्मक शैली में हुआ है, उसमें वर्णनात्मक तथा भावात्मक शैलियों का उपयोग भी मिलता है। कथाकार की निर्भीक लेखनी ऐतिहासिक पृष्ठों को सजीव चित्रों के रूप में चित्रित करने में पूर्णतः समर्थ है।

'सिक्ख-सरदार' कहानी पंजाब के शूरवीरों के देश-प्रेम को वर्ण्य-विषय बनाती है। इसकी कथा ऐतिहासिक सिक्ख-युद्ध में वीरगति पाने वाले सिक्ख-सरदार श्यामसिंह के बलिदान से सम्बन्धित है। वह भारतीय योद्धा अंग्रेज़ों को अपने देश का पराक्रम दिखाता है। उसकी वीरता एक ज्वलन्त उदाहरण बन जाती है। उसी के शौर्य के माध्यम से कथाकार मूल-भाव को वाणी देता है। उसने वर्णनात्मक तथा पत्रात्मक शैली में कथा-निर्माण किया है। उसकी भाषा-शैली में ओज, उत्तेजना तथा उत्साह-वर्धक शक्ति का गुण सर्वत्र लक्षित होता है।

'प्यारी पताका' की कथा जापानी वीर कप्तान ओकू के देश-प्रेम से सम्बन्धित है। वह अपने देश की राष्ट्रीय पताका की सम्मान रक्षा के लिए हंसते-हंसते प्राण दे देता है। चीनी पशु बल के सामने अपने देश की पताका झुकाने के स्थान पर वह पताका सहित अपना दाहिना हाथ तोप के मुंह पर टेक देता है। तोप का गोला छूटने पर ही पताका उसके हाथ से छूटती है और उसका अंग-प्रत्यंग अलग-अलग होता है। यह कहानी अभिनयात्मक पद्धति में लिखी गई है। इसका आरम्भ तथा अन्त वर्णनात्मक शैली का आश्रय लेता है। इसके संवाद राष्ट्रीय भावनाओं को उद्वेलित करते हैं, उन्हीं के माध्यम से मूल संवेदना साकार हुई है।

'पागल' का कथानक ज़ारशाही-बर्बर अत्याचारों का मर्मस्पर्शी घटना चक्र लिए हुए हैं। यह कथानक रूसी इतिहास के उन पृष्ठों का स्मरण कराता है, जो अधिनायकवादी शासन-पद्धति की क्रूरता से रंगे हुए हैं। इसमें स्मरनोफ ज़ार शाही धांधली का विरोध करता है और उसके परिणाम स्वरूप उसे प्राणदण्ड मिलता है। उसकी प्रेमिका मेरीना वियोग-व्यथा को असह्य समझकर आत्म-हत्या कर लेती है और उसका मित्र क्रोडेकाफ़ पागल हो जाता है। कथाकार इन पात्रों के मर्मस्पर्शी अन्त से अन्याय और अत्या-

चार के विरुद्ध घृणा का भाव जगाता है। उसने भावों को प्रभावशाली बनाने के लिए, बीच-बीच में कवितांशों का प्रयोग भी किया है। उसकी शैली में निर्भीकता और उग्रता यत्र-तत्र परिलक्षित होती है।

'कर्तव्य और प्रेम' कहानी भी रूसी देश-भक्त रोवस्की के देश-प्रेम को प्रस्तुत करती हैं। रोवस्की के अनुसार राष्ट्र-प्रेम से बढ़कर और कोई प्रेम नहीं है और देश-द्रोह का दण्ड मृत्यु ही है। वह अपनी इसी मान्यता के आधार पर अपनी विश्वासघातिनी पुत्री डोराइना को प्राणदण्ड दिलाता है। कथाकार अपने इस प्रधान-पात्र के माध्यम से, कर्तव्य को व्यक्तिगत प्रेम से ऊंचा स्थान दिलाता है। यह उसकी आदर्शवादी कहानी है। इसका सृजन अभिनयात्मक तथा वर्णनात्मक शैली में हुआ है। इसके संवाद और उनकी भाषा विषयानुरूप हैं, उनकी मार्मिकता से ही यह कहानी इतनी प्राणवान बनी है।

'वीर-कन्या,' में 'उग्र' 'क्लेरोडिया' नामक रूसी युवती के बलिदान का अत्यन्त ओजमयी भाषा-शैली में वर्णन करते हैं। यह रूसी युवती ज़ारशाही अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करती है, पातकी गवर्नर को मारने के लिए पुष्प-माला से नागपाश बनती है। इसके हत्या-स्थल पर बोलशेविको ने एक मन्दिर बनाया, जिसे देख कर रूसी बच्चे अपने आपको धन्य समझते हैं। इस प्रकार यह चरित्र-प्रधान कहानी है और इसका प्रधान उद्देश्य देश-भक्तों के प्रति आदर प्रकट करना तथा राष्ट्रीय भावों को उद्दीप्त करना है।

'पवित्र पताका' में एक कोरियाई परिवार की संवेदनापूर्ण कथा मिलती है, जो राष्ट्रीय पताता की सम्मान-रक्षा के लिए अपना जीवन बलिदान करता है। कथाकार जापानियों के अत्याचारों, अमानुषिक व्यवहार तथा अन्याय का बड़ी निर्भीकता से वर्णन करता है। जापानियों ने कोरियाई लोगों के नाक काटे, कान काटे और सिर फोड़े। उनकी स्त्रियों को नग्न करके, उन्हें कोड़े लगवाए। देश-भक्तों ने यह सभी कुछ हंसते-हंसते सहन किया। यह कहानी देश-भक्त कोरियाई परिवार पर होने वाले अत्याचारों का इतिहास वर्णनात्मक तथा अभिनयात्मक शैली में प्रस्तुत करती है। कथाकार अन्याय के प्रति घृणा और देश-भक्तों के प्रति सहानुभूति जगाने में बहुत कुछ सफल रहा है।

'नादिरशाही' कहानी में अंग्रेज़ों के अत्याचारों और बर्बरता का यथार्थ-वादी दृष्टिकोण से वर्णन हुआ है। सन् १८५७ के भारतीय राष्ट्रीय जागरण को कुचलने के लिए अंग्रेजों ने भारतीय सैनिकों, असहाय, निःशस्त्र तथा शरणागत जनता को कुत्तों की भांति मरवाया। जीवित प्राणी न मिलने पर उनके शवों में ही संगीनें घुसेड़ने में उत्साह प्रकट किया। अंग्रेज़ों के ये अत्याचार नादिरशाही ही हैं, भारतीय इतिहास में, दिल्ली की जनता पर अत्याचार करने वालों में नादिरशाह और उसके दादा अंग्रेज़ अधिक प्रसिद्ध हैं।

'निहिलिस्ट' का कथानक रेटकिन है और त्रेंगरिफ नामक दो निहिलिस्ट क्रान्तिकारियों के शौर्य, उत्साह और बलिदान को प्रश्रय देता है। इसमें ज़ारशाही दमन-चक्र, हृदयहीन व्यवहार और अन्याय को भी बड़ी निडरता से अभिव्यंजित किया गया है। कथाकार ने वर्णनात्मक तथा अभिनयात्मक पद्धतियों से कथा-निर्माण किया है। उसकी भाषा में विषयानुरूप ओज और करुणा का सौष्ठव प्रतिपाद्य-विषय को प्रभाव प्रदान करता है।

'भीषण सन्तोष' में ड्रेडस्की नामक रूसी वृद्ध के उस भीषण-सन्तोष का वर्णन हुआ है जो उसे अत्याचारी पुलिस इन्सपेक्टर शलिगन के मारने से प्राप्त होता है। अत्याचारी शलिगन ड्रेडस्की के निरपराध पुत्रों को हंटरों से मार-मारकर पानी के हौज में डुबो देता है। रूसी क्रान्ति के सफल होने पर ड्रेडस्की अपने निरपराध पुत्रों की हत्या का प्रतिशोध लेने के लिए शलिगन को मारता है। उसकी तीव्र प्रतिशोध-भावना को दिखाना ही इस कहानी का प्रधान उद्देश्य है, जिससे भारतीय लोग भी अपने शत्रु से प्रति-शोध लेने की प्रेरणा प्राप्त कर सकें।

'काल-कोठरी' में सन् १८५७ के विद्रोह-काल की रोमांचकारी, बर्बर तथा वीभत्स घटनाओं का उल्लेख हुआ है। अंग्रेजों ने प्रबुद्ध सैनिकों को पंक्तियों में खड़ा करके बन्दूकों से भूना, काल-कोठरी में बन्द करके मारा और उनके असंख्य शवों से कुएं भर दिए। उन्होंने अपने उखड़े कुशासन को फिर से प्रतिष्ठित करने के लिए भारत की निरीह, निरपराध तथा शान्ति-प्रिय जनता को त्रस्त किया। कथाकार उनके इस दमन-चक्र को अभि-नयात्मक तथा वर्णनात्मक पद्धतियों से, यथार्थ रूप में प्रस्तुत करता है। उसकी

लेखनी अमानुषिक अत्याचारों को बड़ी निर्भीकता से दिखाने और पाठकों को अन्याय के विरुद्ध भड़काने का पूर्ण सामर्थ्य रखती है।

संक्षेप में, 'काल-कोठरी' कहानी-संग्रह की कहानियां देश और विदेश की क्रान्तिकारी घटनाओं को वर्ण्य-विषय बनाती हैं। कथाकार रूसी, कोरियाई, जापानी और भारतीय देश-भक्त युवकों और युवतियों के अद्वितीय त्याग एवं बलिदान को ओजमयी भाषा-शैली में प्रस्तुत करता है। उसकी ये कहानियां तथाकथित अश्लीलता से रहित हैं और देश-प्रेम की भावनाओं का रचनात्मक प्रचार करने से स्थायी महत्त्व का अधिकार रखती हैं। इन्होंने देशवासियों को क्रान्ति का नवमन्त्र दिया और उनकी राष्ट्रीय भावनाओं को उत्तेजित किया। रचना-लक्ष्य के आधार पर इन्हें यथार्थवादी और वर्ण्य-विषय के अनुसार ऐतिहासिक कहानियों की कोटि में रख सकते हैं। ये कथाकार के राष्ट्रधर्मी, विद्रोही तथा 'उग्र' व्यक्तित्व की सफल अभिव्यक्ति से अनुप्राणित होने के कारण अत्यन्त प्रभावशाली बन पड़ी हैं।

पोली इमारत

इस कहानी-संग्रह में 'उग्र' की बीस सामाजिक तथा पारिवारिक कहानियां संकलित हुई हैं। इनके नाम हैं—'मों को चूनरी की साध', 'चौड़ा छुरा', 'उरूज', 'पीर', 'आजादी से आठ दिन पहले', 'मूर्खा', 'वीभत्स', 'जल्लाद', 'बदमाश', 'आंखों में आंसू', 'जुआरी', 'बाजरा', 'दूध के कार्ड', 'नौ हजार नौ सौ निन्नानवे' 'विधवा', 'अभागा किसान', 'समाज के चरण' 'ब्राह्मण-द्रोही', 'घोड़े की जीवनी' और 'पोली इमारत'। इन कहानियों में कथाकार समाज के पंडों-पुरोहितों द्वारा प्रसारित कुप्रथाओं तथा आडंबरों पर कुठाराघात करता है। उसकी ये कहानियां सामाजिक तका पारिवारिक असंगतियों एवं अनीतियों के प्रति विद्रोह-भाव जगाती हैं। ये समाज-सुधार तथा जन-जागरण के ध्येय से निर्मित हुई हैं।

'मों को चूनरी की साध' में विधि के विधान की निर्ममता और सामाजिक कुप्रथाओं का यथार्थ चित्रण हुआ है। इस कहानी की नायिका तुलसा, सुहागरात के दिन ही विधवा हो जाती है, उसका यह दुर्भाग्य विधि की कठोरता का ही सूचक है। इसी प्रकार केवल आठ वर्ष की आयु में उसका

विवाह कर देता और विधवा होने पर चूनरी ओढ़ने का अधिकार न देना, सामाजिक कुप्रथाओं का द्योतक है। कथाकार वर्णनात्मक शैली में कथा को प्रस्तुत करता है और विश्लेषणात्मक पद्धति से पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालता है। संवादों द्वारा तत्कालीन सामाजिक रूढ़िवादिता को उभारता है। करुणा और विद्रोह के भाव जगाना ही उसका लक्ष्य है, जिसमें उसे पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है।

'चौड़ा छुरा' में साम्प्रदायिकता को ही छुरा सिद्ध किया गया है, जिस से भयानक रक्तपात होता है। कथाकार हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता का घोर विरोधी है। उसकी यह लघु-कथा इसी विरोध-भाव को जगाती है। इसका निर्माण वर्णनात्मक शैली में और पात्रों का चरित्र-चित्रण सांकेतिक-पद्धति में हुआ है। यह 'उग्र' की साधारण लघु-कथाओं की परिचायक है।

'उरूज' में वणिक-समाज की स्वार्थपरता, नेताओं तथा अधिकारियों के भ्रष्टाचार पर तीखा व्यंग्य किया गया है। इस कहानी का घीसालाल, धनोपार्जन के लिए मक्कारी, बेईमानी और षड्यन्त्र को व्यापार-रहस्य मानता है। उसके सम्पर्क से केवलचन्द एम० एल० ए० घूसखोर बनता है, उसकी आदर्शवादी माता पुत्र की पाप-कमाई के आघात से मर जाती है। कथाकार स्वार्थी घीसालाल और भ्रष्टाचारी केवलचन्द के चारित्रिक पतन पर तीखे व्यंग्य-बाण छोड़ता है। उनके प्रति घृणा जगाना ही उसका लक्ष्य है।

'पीर' को पीड़ामय संस्मरण भी कह सकते हैं। यह आत्मज के चिर विछोह की मार्मिक स्मृतियों को कथा-रूप में चित्रित करने वाली रचना है। इसका आरम्भ वर्णनात्मक पद्धति से और विस्तार आत्मकथात्मक पद्धति से होता है। रमाकान्त जैसे पीड़ित प्राणियों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करना ही कथाकार का उद्देश्य है। वह मृत्यु के अटल नियम का भी उद्घाटन करता है। उसकी भाषा में करुण-भावों को जगाने की अपूर्व क्षमता है।

'आजादी से आठ दिन पहले' कहानी स्वतन्त्रता से आठ दिन पूर्व के समाज का चित्र अंकित करती है। यह तत्कालीन परतन्त्र मनोवृत्ति, निर्धनता तथा अनैतिकता को यथार्थ रूप में पाठकों के सामने रखती है। इसका सृजन संस्मरणात्मक शैली में हुआ है। कथाकार की शिल्प-क्षमता का अनु-

मान इस बात से लगाया जा सकता है कि वह अस्त-व्यस्त जीवन के कुछ क्षणों को कहानी में बांध देता है।

'मूर्खा' में उग्र स्वार्थी समाज की तुच्छ मनोवृत्ति को एक साधारण-सी घटना द्वारा अभिव्यंजित करते हैं। वे वृद्धा गाय के प्रश्न को लेकर गुलाबो के कांग्रेसी कम्युनिस्ट तथा हिन्दू सभाई पुत्रों के स्वार्थी तथा घटिया विचारों को प्रकाश में लाते हैं। उनकी सहानुभूति बूढ़ी गाय और उसकी संरक्षिका गुलाबो के प्रति है। वे सामाजिक स्वार्थपरता के प्रति उपेक्षा और दयामयी गुलाबो के प्रति सम्मान-भावना जगाते हैं।

'वीभत्स' 'उग्र' की सर्वोत्तम कहानियों में से एक है। यह कहानी उन्हें महान् समाजस्रष्टा बनाती है। इसमें वे मनुष्य की लोभ-वृत्ति के दुष्परिणाम दिखाते हैं। मनुष्य धन-संचय के निमित्त नीच-से-नीच कार्य करने को भी तत्पर हो जाता है, उसमें वह अपना जीवन अत्यन्त वीभत्स तथा लज्जा-जनक बना लेता है। इस कहानी के नायक सुमेरी की जीवन-गाथा इसी सत्य का उद्घाटन करती है। वह धन के लोभ में, शव ढोने का कार्य करता है और इसी व्यवसाय को निरन्तर अपनाए रहने से एक दिन स्वयं भी काल का ग्रास बन जाता है। धन उसे मनुष्य से दैत्य और दैत्य से घृणित शव का रूप देता है। कथाकार उसकी दुर्दशा के माध्यम से कहानी की मूलसंवेदना को वाणी देता है। उसने कथा-निर्माण के लिए वर्णनात्मक तथा अभिनयात्मक शैलियों का आश्रय लिया है।

'जल्लाद' हिन्दी-कहानी-साहित्य की अमर रचना है। इसमें 'उग्र' की कहानी-कला का चरमोत्कर्ष देखा जा सकता है। यह मानवीय करुणा को जगाने वाली बेजोड़ कहानी है। इसका नायक रामरूप जल्लाद है, उसी के पाषाण-हृदय से करुणा का झरना प्रस्फुटित होता है और वह एक अनाथ बालक को फांसी देने के स्थान पर स्वयं फांसी लगाकर आत्महत्या कर लेता है। उसका दानवी रूप बड़ा रोमांचकारी हो उठता है, जिसे देखकर बड़े-बड़े साहसी भी कांप उठते हैं। आत्मकथात्मक शैली में निर्मित यह कहानी यथार्थवादी होते हुए भी एक अद्भुत आदर्श की स्थापना करती हैं। रामरूप का आदर्श, उसे अमरता प्रदान करता है।

'बदमाश' में 'उग्र' सामाजिक बुराइयों का विश्लेषण इस मनोवैज्ञानिक

सत्य के आधार पर करते हैं कि पिता की आचरणहीनता पुत्र के चरित्र को पतित बनाती है। अनैतिक व्यवसायों द्वारा धनोपार्जन करने वाले पिता अपनी सन्तान का भला-बुरा सोचे बिना, उसे अपना शस्त्र बनाते हैं। इस कहानी का त्रिभुवननाथ इसी प्रकार का पिता है, जो अपने पुत्र सुखदेव को अपनी अनैतिकता का कुफल भोगने के लिए न्याय को सौंप देता है। यह कहानी वर्णनात्मक शैली में रची गई है, और इसके पात्रों का चरित्र-चित्रण प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक पद्धति द्वारा हुआ है।

'आंखों में आंसू' कहानी सामाजिक जीवन के वैवाहिक पक्ष की विद्रूपता पर सशक्त व्यंग्य करती है। इसमें अधिकवयस सुरूपा का अल्पवयस जगदीश से अनमेल विवाह होता है। षोडसी सुरूपा अपने यौवन के बसन्त में अबोध, अल्पवयस पति जगदीश को पाकर असन्तुष्ट है। यौवन केआवेग में उसे अपनी समस्या का समाधान कोचवान अब्दुल हमीद के साथ संयोग-लीला के रूप में प्रतीत हुआ और वह स्वर्ग पाने की अभिलाषा से, नरक में कूद पड़ती है। कथाकार उसके नैतिक पतन का कारण सामाजिक विरूपता को मानता है। इसीसे स्थान-स्थान पर उसे कोसता है। उसकी यह कहानी वर्णनात्मक तथा आत्मकथात्मक शैली में विरचित है और अनमेल-विवाह के प्रति उपेक्षा-भाव जगाना उसका प्रधान लक्ष्य है।

'जुआरी' उग्र की व्यक्तिपरक कहानी है, जो स्वभाव की विवशता पर प्रकाश डालती है। कहानीकार स्वभाव से जुआरी हैं, उसने जीवन को ही जुआ समझा और आयु भर यह खेल खेलता रहा। यह टेव, छोड़े छूटती नहीं है, जुआरी जुए के चक्कर में पड़कर पुनः उससे निकल नहीं सकता है। इस कहानी का यह व्यक्तिपरक व्यंग्य आत्मकथात्मक शैली में अभिव्यंजित होने के कारण अत्यधिक प्रभावशाली बन पड़ा है।

'बाजरा' का नायक ददू पुरानी सामाजिक परम्परा का महान व्यक्ति है, जो अशिक्षित होने पर भी सिद्धान्तवादी तथा समझदार है। वह बाजरे को श्रमजीवी जीवन का प्रतीक मानता है, उसका अपना जीवन भी इसी प्रकार का एक प्रतीक है। वह श्रम और नैतिकता की साक्षात् प्रतिमा है। कथाकार वर्णनात्मक पद्धति में, उसके आदर्शवादी जीवन को उभारता है। ऐतिहासिक दृष्टान्तों से उसकी मान्यताओं का समर्थन भी करता है।

'दूध के कार्ड' स्वार्थी और संकीर्ण मनोवृत्ति पर लिखी गई सामाजिक कहानी है। कथाकार दूध के राशनिंग कार्डों के माध्यम से भारतीय समाज के संकीर्णता सम्बन्धी दोष का उद्‌घाटन करता है। आज लोगों की यही मनोवृत्ति बन गई है कि न स्वयं खाएंगे आराम से, न दूसरों को खाने देंगे। पड़ोसी को लाभ नहीं पहुंचना चाहिए, भले ही अपनी हानि हो जाए। इस कहानी का कथानिर्माण आत्मकथात्मक तथा वार्तालापात्मक पद्धतियों से किया गया है। रचना-लक्ष्य की दृष्टि से यह यथार्थवादी कहानी है।

'नौ हजार नौ सौ निन्नानवे' में उग्र करोड़ीमल नामक बनिए के माध्यम से शोषक-वर्ग को अनावृत्त करते हैं। उन्हें कानून की शरण में धकेलने से पहले, जनता द्वारा प्रताड़ित कराते हैं। कानून को हाथ में लेना यद्यपि बुरा है तथापि उग्र उसकी आवश्यकता अनुभव करते हैं। समाज-सुधार के लिए निर्भीक युवकों को ललकारते हैं और करोड़ीमल जैसे खटमलों की मरम्मत कराते हैं। रचना-शैली की दृष्टि से यह वर्णनात्मक और प्रतिपाद्य-विषय के आधार पर सामाजिक कहानी है। इसमें 'उग्र' जी का न्यायप्रिय उद्दण्ड व्यक्तित्व मुखरित हो उठा है।

'विधवा' कहानी हिन्दू-समाज के उस ढांचे का उपहास उड़ाती है, जिसमें अल्पवयस लड़कियों का विवाहकर दिया जाता है और उनके विधवा हो जाने पर उन्हें अस्वाभाविक ब्रह्मचर्य-पालन का कठोर उपदेश दिया जाता है। सामाजिक अन्याय से पीड़ित हिन्दू विधवाएं सारी कटुताएं सहकर भी, यौवन के उन्माद को रोकने में असमर्थ रहती हैं। उनके पथ-भ्रष्ट होने का उत्तरदायित्व समाज पर ही है। कथाकार इस मूल संवेदना को रमा की करुण-कहानी के माध्यम से प्रकाश में लाता है। उसकी संवाद योजना समस्या के यथार्थ रूप और उसके समाधान की ओर संकेत करती है। उस का व्यंग्य-विधान समाज के ठेकेदारों के प्रति घृणा उत्पन्न करता है और उसका कवि-हृदय कहानी में करुणा का संचार करता है।

'अभागा किसान' ग्राम्य जीवन की श्रेष्ठ कहानी है। इसका अभागा कृषक भिक्खन जमींदार के अत्याचारों से दर-दर की ठोकरें खाता है, उस की पत्नी अपने बच्चों को तालाब में फेंककर स्वयं आत्महत्या कर लेती है। भिक्खन की यह करुण कहानी जमींदारों के प्रति विद्रोह और पीड़ित कृषकों

के प्रति मानवीय सहानुभूति जगाती है। उसका जीवन-संघर्ष 'गोदान' के होरी से कुछ मिलता-सा है। रचना-लक्ष्य के विचार से यह यथार्थपरक है और रचना शैली की दृष्टि से वर्णनात्मक कहानी है। इसे प्रभावोत्पादक तथा मार्मिक बनाने में संवाद-योजना का उपयोग विशेष महत्त्व रखता है।

'समाज के चरण' ज्ञानू अछूत के उत्कर्ष की कहानी है। वह धार्मिक है, ईश्वर भक्त है, जोगानन्द उसकी आस्था, प्रभु भक्ति और लगन से प्रभावित होते हैं। उनके सहयोग तथा प्रोत्साहन से वह मन्दिर-प्रवेश का अधिकारी बनता है। जोगानन्द में कथाकार की अपनी आत्मा बोलती है, वह अछूतोद्धार के लिए विकल है। उसे धार्मिक पाखण्ड एवं सामाजिक भेद-भाव से घृणा है, वह मानवीय समानता और उदार धार्मिकता का प्रबल समर्थक है। उसकी यह कहानी मुख्यतः वार्तालापात्मक पद्धति में निर्मित हुई है। पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने के लिए उसने अप्रत्यक्ष शैली को प्रश्रय दिया है।

'ब्राह्मण-द्रोही' जातिवाद का घोर विरोध करने वाली उदेश्यपूर्ण कहानी है। कथाकार नामधारी पाखण्डी ब्राह्मण की कड़ी आलोचना करता है। उसके व्यंग्य-बाण कथा को प्राणवान् बनाते हैं और सरल तथा स्वस्थ सामाजिक जीवन की ओर प्रेरित करते है। उसने आत्मकथात्मक, वार्तालापात्मक तथा वर्णनात्मक पद्धति से कथा-निर्माण किया है। पात्रों के चारित्रिकगुण-दोषों को उनके संवादों और कार्य-कलापों से प्रकाशित कराया है।

'घोड़े की जीवनी' एक व्यथित घोड़े की आत्मकथा है। इसमें कथाकार का भावुक हृदय पशुओं की करुण-कथा कहता है। उसने निष्ठुर मानव समाज के प्रति उपेक्षा और पीड़ित पशुओं के प्रति सहानुभूति जगाने का सफल प्रयास किया है। उसके व्यंग्य सोद्देश्य हैं, उसकी भाषा अमूर्त्त को मूर्त्त रूप देने में बेजोड़ है और वर्णन-कौशल मर्मस्पर्शी हैं।

'पोली इमारत' कहानी समाज के दो विरोधी पक्षों को वर्ण्य-विषय बनाकर, यह सिद्ध करती है कि सुख-शान्ति का मूलाधार पारस्परिक स्नेह-सद्भाव है। इसके अभाव में वैभवशाली भवन, स्वार्थी परिवार और अपार सम्पत्ति खटकती है, वह मनुष्य को अर्द्ध-विक्षिप्त-सा बना देती है। जिस

परिवार या समाज में पारस्परिक स्नेह-सहयोग का भाव होता है, वह निर्धन होने पर भी स्वस्थ तथा उल्लासपूर्ण जीवन जीता है। इस सत्य को करोड़पति प्रेमीराम की आत्मकथा के रूप में चित्रित किया गया है। कथाकार विरोधी परिस्थियों के उद्घाटन और कहानी के मूल भाव को अभिव्यंजित करने में पर्याप्त सफल रहा है।

सारांश यह है कि 'पोली इमारत' कहानी-संग्रह की कहानियां सामाजिक और पारिवारिक रूढ़ियों का घोर विरोध करती हैं। इनमें कथाकार का विद्रोही, 'उग्र' तथा समाज-सुधारक दृष्टिकोण बड़े निर्भीक रूप में प्रकट हुआ है। उसकी ऐसी ही कहानियों को पढ़कर या सुनकर काशी के गुण्डानुमा पंडे अत्यधिक रुष्ट हुए और उसके हाथ-पांव तोड़ने तक की धमकियां देने लगे थे। किन्तु ब्रिटिश सरकार से टकराने वाला कलाकार, उन पंडे-पुरोहितों की उपेक्षा करता हुआ, क्रान्तिकारी कहानियों का निरन्तर सृजन करता रहा। उसने सुधार के उद्देश्य से उन पर तीखे व्यंग्य-बाणों के प्रहार किए। उनकी सशक्त भाषा और 'उग्र-शैली' ने पुरातन समाज-व्यवस्था के ध्वंस और नव-निर्माण की भावनाओं को प्रभावोत्पादक बनाया। उसकी ये कहानियां अपना ऐतिहासिक महत्त्व भी रखती हैं। इनके माध्यम से हम तत्कालीन सामाजिक दुर्दशा और जागरण का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

कला का पुरस्कार

इस कहानी-संग्रह में कुल १५ कहानियां हैं। उनके नाम हैं—'कला का पुरस्कार', 'आठवां स्वर', 'पोली इमारत', 'ब्लैक एण्ड ह्वाइट'। 'रमा बी० ए०', 'उरूज', 'उसकी मां', 'और तब, 'महाराज कुमार को नींद आई', 'पीर', 'बांके वीर', 'मेघराग' 'डाम', 'चांदनी', 'चित्र-विचित्र' और 'मूर्खा'। इनमें से अधिकांश कहानियों का विवेचन इसी अध्याय में हो चुका है, शेष कहानियों का आलोचनात्मक परिचय इस प्रकार है—

'आठवां स्वर' में मानव-सेवा और मानव-रक्षा को ही संगीत का आठवां स्वर सिद्ध किया गया है। इस कहानी के पात्रों में डॉ० जगजीवन-देव का चरित्र सर्वाधिक प्रभावशाली है, उसी के माध्यम से मूल-भावों को अभिव्यक्ति मिली है। वे सड़े-गले तन वाले दीनू की निःशुल्क चिकित्सा

करते हैं और तड़पती मुर्गी तथा उसके बच्चे को बचाते हैं। उनके विचार से, जले को जलाना अनुचित है, कटे पर नमक डालना बुरा है। यह संसार पापों से भरा हुआ है, इसलिए कोई भी पथभ्रष्ट हो सकता है, उसे राह पर लाने में ही मानव-जीवन की सार्थकता है। इस कहानी का सृजन वर्णनात्मक शैली में और पात्रों का चरित्र-चित्रण अभिनयात्मक शैली में हुआ है। रचना-लक्ष्य की दृष्टि से यह कहानी यथार्थवादी होते हुए भी, आदर्शवाद के निकट पहुंच जाती है।

'रमा, बी० ए०' आत्मकथात्मक शैली में विरचित सामाजिक कहानी है। इसमें नारी की तत्कालीन दयनीय अवस्था और पुरुष की विलासी प्रवृति का घोर विरोध हुआ है। इसकी रमा, नारी को साग-भाजी या बकरी की अम्मा समझे जाने की निन्दा करती है। उसके विचार से नारी पुरुषों के सामने केवल भोग की वस्तु है, मक्खन के पैकेट के समान उसकी कोई जाति या देश नहीं, वह विद्रोह किए बिना अपनी दयनीय स्थिति को सुधारने में असअर्थ है।[1]

'बांके पीर' व्यंग्यात्मक सामाजिक कहानी है। इसमें बांके पीर की कब्र की पोल खोली गई है। उसमें कंजूस जुम्मन खां ने एक करोड़ का मालोज़र छिपा रखा था। कथाकार सामाजिक अज्ञानता, साम्प्रदायिकता और रूढ़िवादिता के प्रति उपेक्षा प्रकट करता है। उसकी यह कहानी वर्णनात्मक शैली में निर्मित हुई है। रचना-लक्ष्य की दृष्टि से इसे यथार्थवादी रचना कह सकते हैं।

'मेघराग' का कथानक नव्वाबी जीवन की विलासिता और निरीह जनता की विवशता को वर्ण्य-विषय बनाता है। इसमें भारतीय संगीत की अलौकिकता का समावेश हुआ है। उससे घटना-चक्र में अस्वाभाविक चमत्कार का सृजन होता है। कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से यह आलौकिकता असमीचीन-सी लगती है। इसका फकीर, मानवीय भावों के कारण ही आदर की वस्तु है; उसका आलौकिक संगीत अविश्वसनीयता का परिचायक है।

---

१. 'कला का पुरस्कार, 'रमा, बी० ए०', पृ० ६४

'डाम' आत्मकथात्मक शैली की कहानी है। इसमें यथार्थवादी और आदर्शवादी तत्त्वों को एक साथ महत्त्व प्राप्त हुआ है। कहानी के पूर्वार्द्ध में एक विलासी, अभिमानी और लम्पट जमींदार के कार्य-कलापों को अंकित किया गया है, और उत्तरार्द्ध में अतिथि-सत्कार के आदर्श की स्थापना की गई है। बुराई का उत्तर अच्छाई से दिया गया है। यह उग्र की साधारण कहानियों में से एक है। इसमें भाव और भाषा का समन्वय अधिक उत्कृष्ट रूप में नहीं हो सका है, शैली में भी प्रौढ़ता का अभाव मिलता है।

संक्षेप में, इस संग्रह की कुछ कहानियां उत्कृष्ट और कुछ साधारण हैं। उनमें 'कला का पुरस्कार', 'उसकी मां', 'चित्र-विचित्र' आदि कहानियां अपने सबल कथ्य, प्रौढ़ भाषा और समर्थ शैली के कारण विशेष प्रभावशाली बन सकी हैं। उनमें कुतूहल, विचित्रता और उत्सुकता का प्राधान्य मिलता है। 'डाम', 'मूर्खा' आदि के कथानकों, भाषा और प्रतिपादन शैली में, कथाकार की सशक्त लेखनी का चमत्कार प्रायः नहीं मिलता है।

चाकलेट

इस कहानी-संग्रह में, स्वजातीय रति सम्बन्धी दुराचार को, यथार्थ रूप में चित्रित करने वाली, आठ कहानियां संकलित हुई हैं। इनके नाम हैं —'हे सुकुमार', 'व्यभिचारी प्यार', 'जेल में', 'चाकलेट', 'पालट', 'हम फिदाये लखनऊ', 'कमरिया नागन-सी बल खाय' और 'चाकलेट-चर्चा'। कहानीकार के अनुसार, 'चाकलेट' देश के भोले-भाले, कमसिन और सुन्दर लड़कों को कहते है जिन्हें समाज के राक्षस अपनी 'वासना' की तृप्ति के लिए सर्वनाश के मुख में धकेलते हैं। ये बच्चे समाज के अच्छे-अच्छों तक से नष्ट किये जाते हैं, और दुश्चरित्र बनाये जाते हैं। प्रान्त-प्रान्त में इनके भिन्न-भिन्न पर्याय हैं, युक्त प्रदेश के लोग इन्हें 'चाकलेट', 'पाकेट-बुक' आदि नामोपनामों से याद करते हैं। इनके अनेक उपनाम ऐसे भी है जिन्हें सभ्य-भाषा लिख नहीं सकती है।[1] इस प्रकार कथाकार ने अमानुषिक व्यवहार और व्यभिचार को अपनी इन कहानियों में अभिव्यंजित

---

१. उग्र : 'चाकलेट', पृ० १०१

किया है।

'चाकलेट' कहानी संग्रह की सर्वप्रथम कहानी 'चाकलेट' कलकत्ता के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी पत्र 'मतवाला' में, ३१ मई सन् १९२४ को प्रकाशित हुई। उससे समाचार-पत्र के पाठकों में तूफान-सा उठा, मतवाला-सम्पादक और 'चाकलेट' के लेखक के पास निन्दा और प्रशंसा दोनों की, एक या दो नहीं, गाही-की गाही चिट्ठियां आने लगीं।[1] उसके उपरान्त लेखक ने 'पालट', 'हम फिदाए लखनऊ', 'कमरिया नागन-सी बल खाय' और 'चाकलेट-चर्चा' नामक कहानियों की रचना की। इसी बीच उग्र को 'स्वदेश' (विजयांक) के क्रान्तिकारी सम्पादन के परिणाम स्वरूप नौ मास का कारावास दण्ड मिला। जेल छूट जाने पर मित्रों ने बताया कि 'चाकलेट' की कहानिनों के कारण 'उन' उग्र की बहुत बदनामी हुई। किन्तु उग्र ने सामाजिक दबाव की अवहेलना करते हुए और सत्य की निर्भीक अभिव्यक्ति को प्रश्रय देते हुए ३ कहानियां और लिखकर चाकलेट-संग्रह को पूरा किया। इस कहानी-संग्रह को लेकर श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने उग्र के विरुद्ध घासलेटी-आन्दोलन चलाया और अपने दुराग्रह की पुष्टि के लिए, २४ वर्षों तक महात्मा गांधी की राय को छिपाए रखा। गांधी जी ने इस पुस्तक की कहानियों का गम्भीर अध्ययन करने के उपरान्त कहा था—'मैंने पुस्तक आज खतम की, मेरे मन पर, जो असर आप (बनारसीदास चतुर्वेदी) पर हुआ, नहीं हुआ। मैं पुस्तक का हेतु शुद्ध मानता हूं। इसका असर अच्छा पड़ता है या बुरा मुझे मालूम नहीं है। लेखक ने अमानुषी व्यवहार पर घृणा ही पैदा की है।'[2]

आलोच्य कहानी-संग्रह के आरम्भ में अनेक महत्त्वपूर्ण छोटी-बड़ी भूमिकाएं दी गई हैं। 'भूमिका नहीं···' और 'कैयफ़ित' नाम से दो संक्षिप्त स्पष्टीकरण स्वयं उग्र ने लिखे हैं। 'अप्राकृतिक व्यभिचार का वैज्ञानिक विवेचन' नाम से एक विस्तृत भूमिका श्री रामनाथलाल 'सुमन' ने लिखी है। उनके बाद आठ कहानियों को प्रस्तुत किया गया है।

---

१. 'चाकलेट', 'कैफ़ियत' (स्वयं उग्र द्वारा लिखित)
२. 'चाकलेट', 'एक साहित्यिक अनर्थ', पृ० १

'हे सुकुमार' कहानी का आरम्भ प्रकृति-चित्रण से हुआ है। इसके मध्य में एक चाकलेट-पन्थी के व्यभिचार और लोगों द्वारा उसकी पिटाई की गाथा अंकित हुई है। उसे मार्मिकता तथा स्वाभाविकता प्रदान करने वाला एक सनकी पात्र है, जिसका सुकुमार पुत्र इसी दुराचार का शिकार होता है। उसी सनकी के उपदेशों से कहानी समाप्त होती है। इस कहानी का कथा-निर्माण वर्णनात्मक और आत्मकथात्मक शैलियों में हुआ है। रचना-लक्ष्य के विचार से यह यथार्थवादी और वर्ण्य-विषय के अनुसार सामाजिक कहानी है। अप्राकृतिक-कर्म या चाकलेट-पन्थी महापाप के प्रति घृणा जगाना ही कथाकार का प्रधान उद्देश्य है।

'व्यभिचारी प्यार' की मूल संवेदना भी स्वजातीय रति के दुष्परिणामों से सम्बन्धित है। इसका प्रारम्भ वार्तालाप-पद्धति से हुआ है। मध्य भी इसी शैली से विकास प्राप्त करता है और अन्त व्यभिचारी कल्याण चन्द्र नामक पात्र के पत्र से होता है। इस कहानी के संवाद बड़े सशक्त हैं, उन्हीं से पात्रों के आचार-विचार और दुराचार प्रकट होते हैं, वे ही कथा-संचालन का कार्य करते हैं और कहानी के कथ्य को मुखरित करते हैं।

'जेल में' कहानी का सृजन आत्मकथात्मक शैली में हुआ है। इसमें वार्तालापों का अनुपम सहयोग भी यत्र-तत्र लक्षित होता है। कहानीकार अप्राकृतिक दुराचार के उद्घाटन और शासन-व्यवस्था पर व्यंग्य-प्रहार करने में अच्छी सफलता प्राप्त करता है। कहानी तीखे व्यंग्य के साथ समाप्त होती है—'जिस अपराध के लिए कानून लोगों को सात-चौदह के फेर में डालता है, वही अपराध जेलों में धड़ल्ले से होते हैं। बलिहारी।'[1]

'चाकलेट' कहानी के माध्यम से उग्र शिक्षित व्यक्तियों की दुर्वासनाओं, घृणित व्यापारों और लज्जाजनक अन्त को पाठकों के सामने रखते हैं। इस कहानी का दिनकरप्रसाद बी० ए०, इसी प्रकार का नराधम है, जो अपने मित्र बनवारीलाल के पुत्र रमेश को अपने जाल में फंसता है और भेद खुल जाने पर लापता हो जाता है। यह कहानी आत्मकथात्मक तथा अभिनयात्मक पद्धति में निर्मित हुई है। इसमें उर्दू के शेरों, कविताांशों आदि का

---

१. 'चाकलेट', जेल में', पृ० ६५

प्रयोग स्थान-स्थान पर हुआ है। उससे पात्र-विशेष की मानसिक और बौद्धिक स्थिति के उद्‌घाटन से साथ, इस तथ्य का आभास भी दिया गया है कि स्वजातीय रति को उर्दू-फारसी के कवियों ने ही प्रोत्साहन दिया था।

'पालट' में 'महाशय जी' के पतित क्रिया-कलापों और पापाचार से, हरि नामक एक अबोध, सुन्दर तथा सुकुमार बालक का जीवन नष्ट होता है। अप्राकृतिक व्यभिचार से हरि को दमा हो जाता है। 'महाशय जी' के दुष्कर्मों को सम्मुख रखकर, उसके एक मित्र उसे इतना बुरा-भला कहते हैं कि वह आत्महत्या कर लेता है। इस कहानी की मूल संवेदना और शिल्पविधि 'चाकलेट' से पर्याप्त साम्य रखती है।

'हम फिदाये लखनऊ' में अध्यापकों के अप्राकृतिक व्यभिचार को आत्मकथात्मक तथा संवाद-बहुलता की नाटकीय पद्धति से चित्रित किया गया है। इसका 'प्रसाद' बाबू ऐसा ही दुराचारी अध्यापक है, जो विद्यार्थियों के जीवन को नष्ट करने में गौरव समझता है। वह अपने दुर्बल चरित्र के कारण नौकरी से अलग कर दिया जाता है। लोग उसे 'पाटल-पन्थी' मनुष्य के वेश में राक्षस, पशु आदि कहकर अपमानित करते हैं। वह कलकत्ता भाग जाता है और वहां भी वैसा-ही पाप-कर्म करने पर, ७ वर्ष का कठोर कारावास दण्ड पाता है। इस कहानी का लक्ष्य दुराचारी अध्यापकों के प्रति घृणा उत्पन्न करना ही है।

'कमरिया नागन-सी बल खाय' का हरनारायण बाबू मनुष्यता, नैतिकता आदि का उपहास उड़ाता हुआ, रामू नामक एक सरल, सुन्दर तथा निरीह बालक के साथ बलात्कार करता है। रामू का पिता चांदी के कुछ टुकड़ों के लिए यह अनर्थ होने देता है। कहानीकार इन दुष्टों की पुलिस द्वारा पिटाई कराना समीचीन समझता है। इस कहानी की शिल्पविधि, 'हम फिदाए लखनऊ' की-सी ही है।

'चाकलेट-चर्चा' इस संग्रह की अन्तिम कहानी है। इसका सृजन अप्राकृतिक-कर्म विरोधी विचारों और भावों की पुष्टि के लिए किया गया है। इसका लघु-कथानक यात्रा-विवरण, संवादों और आत्मकथात्मक उद्धरणों से निर्मित हुआ है। कहानीकार स्वयं तटस्थ रहा है, उसने पात्रों के माध्यम

से, स्वजातीय रति को घोर पाप प्रमाणित किया है, और उस पाप को पाठकों के सामने रखने वाले लेखकों और पत्रों की सराहना की है।

इस प्रकार 'चाकलेट' कहानी-संग्रह यद्यपि अत्यन्त विवादास्पद रचना है, तथापि इसका महत्त्व कई कारणों से बना रहेगा। इस संग्रह की कहानियां चाकलेट-पन्थी पापाचार का घोर विरोध करती हैं। पाप, चाहे वह किसी भी प्रकार का हो, मानवता के उज्जवल आंचल पर कलंक ही होता है। उसका समर्थन या प्रचार करना बुरा और विरोध करना स्तुत्य है। उग्र इन कहानियों द्वारा, स्वजातीय व्यभिचारी के प्रति घृणा उत्पन्न करते हैं, इस कुकर्म को घोर अमानुषिक तथा कुत्सित घोषित करते हैं। इसलिए उन का यह प्रयास निन्दनीय नहीं, वरन् श्लाघ्य है। 'उग्र' की अन्य रचनाओं के समान, इस संग्रह की कहानियों के शिल्पविधि भी, कथ्य को अभिव्यंजित करने में पूर्ण समर्थ है। उसके सर्वाधिक सबल उपकरण हैं—पात्र, भाषा और संवाद। इन्हीं के माध्यम से कथा-निर्माण होता है, और वर्ण्य-विषय को प्रभावोत्पादक अभिव्यक्ति मिलती है।

रेशमी

इस संग्रह में प्रतीकात्मक, भावात्मक, सामाजिक तथा हास्य-व्यंग्य-प्रधान सत्रह कहानियों का संकलन हुआ है। सन् १९४२ से सन् १९६३ तक इसके छः संस्करण प्रकाशित हुए। उसके उपरान्त सन् १९६४ में इसकी ७ कहानियों—'रेशमी', 'प्रार्थना', 'रिसर्च', 'भ्रम', 'मुक्ता', 'अवतार' तथा 'टीला और गड्ढ़ा' का प्रकाशन 'मुक्ता' कहानी-संग्रह में हुआ 'मों को चूनरी की साध' तथा 'चौड़ा छुरा' का प्रकाशन 'पोली इमारत' में और 'संगीत-समाधि' एवं 'सुधारक' का संकलन 'यह कंचन-सी काया' कहानी-संग्रह में हुआ। 'पिशाची' का समावेश 'चित्र-विचित्र' कहानी-संग्रह में मिलता है। इस प्रकार केवल पांच कहानियां ही अवशिष्ट हैं, उनके नाम हैं—'विकास', 'बेईमान और ईमानसिंह', 'वाह होली ! आह होली !!', 'असली कुत्ता' और 'रामदाने के लड्डू'। इनका आलोचनात्मक विवरण निम्नलिखित है—

'विकास' में 'उग्र' मनुष्य की स्वार्थमयी धार्मिक वृत्ति के विकास का

एक चित्र अंकित करते हैं। मनुष्य ने मनोवांछित फल पाने के लिए पहले मन्दिरों का निर्माण किया, उसके बाद किंचित् परिवर्तन के साथ गिरजाघर और मस्जिदों को बनाया। जब इनसे स्वार्थ सिद्ध न हुआ तो, उसने ईश्वर से नाता तोड़कर, अनैतिक व्यापार और उससे अर्जित धन को ही ईश्वर मानना आरम्भ कर दिया। यह कहानी इसी भाव-विशेष को भावात्मक पद्धति से उभारती है। इसमें स्थूल कथा का अभाव-सा मिलता है। पात्रों और संवादों का आयोजन भी मूल-भाव के उद्बोधन के निमित्त सांकेतिक रूप में हुआ है। कहानी में भाव-प्राबल्य इतना अधिक है कि उसमें अस्पष्टता भी आ गई है।

'बेईमानचन्द और ईमानसिंह' में कृतघ्न सेठों और स्वामिभक्त सेवकों के जीवन का चित्रण हुआ है। बेईमानचन्द नीच तथा कृतघ्न सेठों का प्रतीक है, जो छल-कपट, धोखा, षड्यन्त्र, अनाचार एवं विश्वासघात से धनोपार्जन करना, अपने जीवन का लक्ष्य बना लेते हैं। ईमानसिंह स्वामिभक्त सेवकों का प्रतीक है, जो स्वामी-सेवा, कृतज्ञता, परिश्रम और शौर्य में जीवन की सार्थकता समझते हैं। कथाकार प्रथम वर्ग पर व्यंग्य-प्रहार करता है और दूसरे वर्ग के प्रति सहानुभूति दिखाता है। इस कहानी का निर्माण सम्बोधनशैली तथा अभिनयात्मक शैली में हुआ है। कथा-सूत्रों को जोड़ने के लिए वर्णनात्मक शैली प्रयुक्त हुई है। इस कहानी में भी भाव-विशेष को जगाना कथाकार का उद्देश्य है, और उसी के अनुरूप, कहानी का शिल्प भावात्मकता को प्रश्रय देता है।

'वाह होली ! आह होली ! !' भाव-प्रधान कहानी है। इसमें धनियों और निर्धनों के विषमता भरे जीवन-व्यापारों को 'होली' के माध्यम से अभिव्यंजित किया गया है। धनिक लोग होली के आगमन पर रंगरलियां मनाते हैं, सहस्रों रुपया पानी की भांति बहाते हैं। निर्धन लोग इस अवसर पर दाने-दाने के लिए तरसते हैं, मर जाने पर उनके शवों को कोई श्मशान नहीं ले जाता। इस घोर विषमता को दिखाने के लिए कथाकार ने तुलनात्मक तथा भावात्मक पद्धतियों का आश्रय लिया है। इस कहानी में स्थूल कथानक का अभाव है। निर्धनों के प्रति सहानुभूति का भाव जगाना ही कथाकार का मुख्य उद्देश्य है, जिसकी सिद्धि के लिए उसने कवितांशों,

सम्बन्धनों और संवादों का यत्र-तत्र प्रयोग किया है।

'असली कुत्ता' में राबर्ट नामक कृतज्ञ कुत्ते की जीवन-गाथा चित्रित हुई है। कथाकार के अनुसार राबर्ट अनेक अज्ञानी मनुष्यों से श्रेष्ठ तथा मनस्वी है। उसके जीवन में स्वाभिमान और कर्त्तव्य-पालन का आदर्श विद्यमान है। वह कर्त्तव्य की पुकार सुनकर अपने प्राण तक बलि कर देता है। यह कहानी आत्मकथात्मक पद्धति में लिखी गई है। इसका उद्देश्य कुत्ते के जीवन की कृतज्ञता, स्वाभिमान और कर्त्तव्य-निर्वाह को दिखाना है, जिस से मनुष्य समाज भी बहुत-कुछ सद् प्रेरणा ग्रहण कर सकता है।

'रामदाने के लड्डू' कहानी सांकेतिक और आत्मकथात्मक पद्धतियों में निर्मित हुई है। इसमें 'रामदाने के लड्डू' स्वदेशी वस्तुओं और रंगीन मिठाइयां विदेशी वस्तुओं की प्रतीक हैं। विदेशी वस्तुओं के आगमन से, स्वदेशी वस्तुओं का मान कम हो गया है, वे उपेक्षा की दृष्टि से देखी जाती हैं। कथाकार का झुकाव रामदाने के लड्डूओं की ओर है, और वह बाह्य रूप-रंग को सर्वस्व समझाने वाले लोगों की नादान-प्रवृत्ति को देखकर चिंतित है। 'उग्र' की यह कहानी अत्यन्त साधारण है, इसमें न कथानक है, न पात्रों और संवादों का कला-कौशल।

सारांश यह है कि 'रेशमी' कहानी-संग्रह की कहानियां विविध भावों विचारों और सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित हैं। इनमें अधिकांश कहानियां कवि-हृदय की भावुकता; मानव-स्वभाव की विचित्रता और सामाजिक विद्रूपता का बड़ी सफलता से उद्घाटन कर सकी हैं। कुछ कहानियां केवल भाव-विशेष को ही जगाती हैं, और कुछ भाव एवं शिल्प दोनों दृष्टियों से अति साधारण हैं।

सनकी अमीर

'गंगा पुस्तकमाला' से प्रकाशित इस कहानी-संग्रह में मुख्यत: सामाजिक कहानियां संकलित हुई हैं। ये संख्या में तेरह हैं, इनके नाम हैं— 'बीभत्स', 'जल्लाद', 'जानकी की जीवनी', 'बदमाश', 'मेरी मां', 'मूर्खा', 'पोली इमारत', 'यह कंचन-सी काया तेरी', 'दितवारिया', 'गोपाल', 'उरूज', 'बेईमानचन्द और ईमानसिंह' और 'सनकी अमीर'। इनमें 'जानकी

की जीवनी' और 'गोपाल' को छोड़ कर शेष का विवेचन इसी अध्याय में हो चुका है । इसलिए यहां इन्हीं दो का आलोचनात्मक परिचय ही आपेक्षित है ।

'जानकी की जीवनी' विशालकाय सामाजिक कहानी है। इसका निर्माण आत्मकथात्मक शैली में हुआ है। इसका कथानक कई उपशीर्षकों —'रामशरण का बयान', 'जानकी का बयान', 'अब्दुल का बयान', 'बांबे क्रानिकल से' आदि में विभक्त है। कथाकार ने अंग्रेज अधिकारियों के अन्याय, दमन-चक्र और व्यभिचार को यथार्थ रूप में अंकित किया है। उसने भारतीय दाम्पत्य जीवन और कामुक प्रकृति के नराधामों के घटिया कार्य-कलापों को व्यास-शैली में अभिव्यक्ति दी है, उसी से कथा-विस्तार तीस पृष्ठों में फैल गया है। नैतिक पतन को यथावत चित्रित करने से अश्लीलता का समावेश हुआ है।

'गोपाल' चरित्र-प्रधान कहानी है। इसमें सेठ गोपालदास के चरित्र के माध्यम से सट्टे की सनक पर प्रकाश डाला गया है। गोपालदास सट्टे के धन्धे में पहले अपनी सारी सम्पति लुटा देता है और उसके बाद लाखों रुपये कमाता है। सट्टे में सफलता पाने के लिए ही वह एक गाय खरीदता है और उसमें हारने पर उसे कसाई के हाथ बेच देता है। अन्त में वह पश्चाताप करता है, उसे सन्तप्त अवस्था में देखकर अघोरपंथी साधु प्रकट होते हैं, उनके अनुसार भारी सम्पति बिना हत्या के प्राप्त नहीं होती है। यह कहानी वर्णनात्मक शैली में निर्मित हुई है। इसका प्रधान उद्देश्य सट्टे से उपार्जित धन को पाप-सम्पत्ति घोषित करना है।

पंजाब की महारानी

'गंगा पुस्तकमाला' से प्रकाशित, इस कहानी-संग्रह में केवल सात कहानियां संकलित हुई हैं—'पंजाब की महारानी', 'देश-द्रोह', 'रेन आफ टेरर', 'एक भीषण स्मृति', 'सिक्ख-सरदार', 'काल-कोठरी' और 'नींद हराम हुई' । इनमें अन्तिम कहानी को छोड़कर शेष का विवेचन हो चुका है।

'नींद हराम हुई' कहानी राष्ट्रीय भावों के प्रचार और भीरु प्रकृति

के विरोध को वर्ण्य-विषय बनाती है। इसका सृजन आत्मकथात्मक शैली में हुआ है। इसमें कायर मोहनलाल रस्तोगी अपनी कायरता की कथा स्वयं सुनाता है। वह एक देशभक्त निडर बुढ़िया की मुक्त कंठ से प्रशंसा करता है, उसे भारत मां का प्रतीक मानता है, जो अंग्रेजों के दमन-चक्र में भी अपना अस्तित्व बनाए रहती है। पश्चाताप की तीव्र अग्नि नायक को सोने नहीं देती है, वह अपने आपको धिक्कारता है। इस कहानी की पृष्ठभूमि में राष्ट्रीय जागरण है, वही उसके कथ्य और शिल्प को बल प्रदान करता है।

(ख) उपन्यास-साहित्य

उग्र ने हिन्दी-जगत को 'घण्टा', 'चन्द हसीनों के खुतूत', 'दिल्ली का दलाल', 'बुधुआ की बेटी' (मनुष्यानन्द), 'शराबी', 'सरकार तुम्हारी आंखों में', 'जीजीजी', 'कढ़ी में कोयला', 'जुहू' और 'फागुन के दिन चार' नामक उपन्यासें प्रदान किए हैं। ये उपन्यास मुख्यतः यथार्थवादी हैं, इनमें आदर्शवादी कतिपय तत्त्वों का समावेश भी हुआ है (इस विषय का विस्तृत विवेचन चतुर्थ अध्याय में किया गया है)। इनमें देश और समाज की विभिन्न समस्याओं का उद्घाटन हुआ है, कतिपय समस्यों का समाधान भी उपन्यासकार ने उपस्थित किया है। इनमें से अधिकांश उपन्यास सामाजिक हैं किन्तु 'घण्टा' वर्ण्य-विषय और शिल्पविधि सभी उपन्यासों से पृथक् है। उपन्यासकार ने इसे 'विचित्र' की संज्ञा दी है।

घण्टा

यह उग्र का सर्वप्रथम उपन्यास है। इसका कथानक एक विचित्र घण्टे से सम्बन्धित है। वही इसका नायक है कथाकार के अनुसार उसे विश्व-विख्यात सम्राट अशोक ने बनवाया था और वह चामत्कारिक गुणों का भण्डार है।[1] उसकी आंखें मनुष्य की वासना, पाप तथा कुकर्म को पहचानने की अपूर्व क्षमता रखती हैं। वह अपने आस-पास अनैतिक कार्य नहीं होने

---

१. 'घण्टा', तृतीय संस्करण, पृ० १६

देता । मंदिर का पाखण्डी संन्यासी जब बेचारी ग्वालिन के सतीत्व का अपहरण करने का प्रत्यन करता है, तो यह घण्टा घनघोर शोर से बजने लगता है और उसकी पीठ पर गिर पड़ता है, जिससे वह पापी सन्यासी यमलोक पहुंचता है। जर्मन-सम्राट कैसर, विश्व-विजयी बनने के प्रलोभन से, उसे चुरा लाने का कार्य 'कीलर' को सौंपता है। वह कुछ दु:साहसी व्यक्तियों के सहयोग से उसे चुराने में सफल होता है, किन्तु स्वदेश पहुंचते ही, उसे तोप से उड़ा दिया जाता है । यह घण्टा कैसर और जर्मन जाति की पराजय का कारण बनता है। इस भयानक घण्टे को जर्मन वाले अपने पास रखने में कुशलता नहीं समझते। कैसर एमडेन नामक विचित्र युद्ध-पोत पर इसे बम्बई भेज देता है। भिक्षु सुअंगसांग इसे पाते ही इससे चिपक जाता है और रोने लगता है। वह उसे नष्ट कर देता है और स्वयं मर जाता है।

'घण्टा' उपन्यास का कथानक विचित्र घण्टे से सम्बद्ध होने के कारण बड़ा विचित्र चमत्कारपूर्ण तथा रोचक है। उसका कथा-शिल्प अपने पूर्ववर्ती हिन्दी उपन्यासों के कथा-शिल्प से बहुत-कुछ प्रभावित है। इस उपन्यास से पूर्व हिन्दी में अनेक जासूसी तथा तिलस्मी उपन्यास निर्मित हो चुके थे, उपन्यासकार उन्हीं से प्रेरणा पाकर इस विचित्र उपन्यास की सृष्टि करता है। किन्तु इस उपन्यास का महत्त्व घटनाओं के बाहुल्य से नहीं है, उनसे तो अस्वाभाविक चमत्कार की ही उत्पति हुई है। अस्वाभाविक चमत्कार यथार्थवादी रचना के लिए घातक होता है। उग्र ने इस प्रकार के विचित्र कथानक, अपने आगामी उपन्यासों के लिए ग्रहण न करके, अच्छा ही किया।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी यह शून्य है इसमें अशोक, कैसर, कीलर, गोयनी, सुअंगसांग आदि अनेक पात्रों के व्यक्तित्व की एक झलक ही अंकित हो सकी है। कथाकार ने वर्णनात्मक तथा अभिनयात्मक शैली में में पात्रों का सांकेतिक चरित्र-चित्रण किया है। वस्तुतः संवाद ही कथा और चरित्र-चित्रण को बल प्रदान करते हैं। उनमें स्वाभाविकता, गत्यात्मकता और भावात्मकता के गुण प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। संवादों की भाषा में ओज, उत्साह, करुणा आदि का समावेश विषयानुकूल हुआ है।

इस उपन्यास का उद्देश्य एक ओर मनोरंजन की सामग्री जुटाना है और दूसरी ओर प्रथम महायुद्ध की प्रेरक परिस्थितियों, उनकी विभीषिका आदि को अभिव्यंजित करना है। प्रथम लक्ष्य की सिद्धि, विचित्र घण्टे के कथानक से की गई है, जिसमें प्रौढ़ता का अभाव और अस्वाभाविकता की प्रधानता मिलती है। द्वितीय उद्देश्य की अभिव्यक्ति वर्णनात्मक प्रसंगों और वार्तालापों के माध्यम से हुई है। उसी से यह उपन्यास महत्त्वपूर्ण बना है। उपन्यासकार हिंसा का विरोधी और मानवीय भावों का समर्थक तथा प्रचारक है। उसने सम्राट अशोक के जीवन-वृतांत के द्वारा इन्हीं भावों और विचारों को वाणी दी है। वह कैसर की युद्ध-प्रियता और हिंसात्मक विजय-आकांक्षाओं का उपहास उड़ाता है।

इस प्रकार 'घण्टा' 'उग्र' का साधारण लघु-उपन्यास है। इसका कथानक अनेक उपशीर्षक में विभक्त है। उसमें विचित्र घण्टा कुतूहल और अस्वाभाविकता दोनों का एक साथ संचार करता है। इस उपन्यास के पात्रों का चरित्र-चित्रण अविकसित तथा सांकेतिक है। उपन्यासकार का लक्ष्य संवादों और वर्णनात्मक अंशों में मुखरित हुआ है। वह यथार्थ गति-विधियों का उद्घाटन भी करता है और विचित्र घटनाओं से चमत्कार की सृष्टि भी करता है। उसकी सफलता संवादों और सशक्त भाषा पर निर्भर है।

दिल्ली का दलाल

आलोच्य उपन्यास सन् १९२७ में निर्मित हुआ। इसमें उन नर-पिशाचों का यथातथ्य चित्रण मिलता है, जो स्त्रियों का कुत्सित व्यापार करते हैं। इस उपन्यास के सम्बन्ध में विद्वानों में गम्भीर मतभेद मिलता है। डॉ० त्रिभुवनसिंह के अनुसार यह शुद्ध प्रकृतवादी शैली का प्रतीक है। इसे हम घोर प्रकृतवादी उपन्यास कह सकते हैं। इस उपन्यास के अन्दर जिस नग्न वास्तविकता का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है, वह किसी भी श्रेष्ठ साहित्य के लिए वांछनीय नहीं है। उग्र ने अपने इस उपन्यास द्वारा अनेक कुरुचिपूर्ण पाठकों के हृदय में सम्मानित स्थान अवश्य प्राप्त किया, परन्तु उसके लिए उन्हें आलोचकों की कम बौछारें नहीं सहनी पड़ीं। और इन्हीं बौछारों का परिणाम यह है कि 'चन्द हसीनों के खुतूत' आदि में उन्हें

साहित्यि संयम का पालन करना पड़ा है।[1] डॉ० त्रिभुवनसिंह की इस धारणा के ठीक विपरीत मत भी मिलते हैं। उनके अनुसार यह उपन्यास सामज-सुधार की प्रेरणा देता है, इनमें बुराई का समर्थन नहीं, वरन् घोर विरोध किया गया है। इसकी अश्लीलता साधन है, साध्य नहीं। भवानीदयाल सन्यासी के विचार से 'दिल्ली का दलाल' जैसी कृतियां हिन्दू-समाज की वर्तमान अधम अवस्था पर साहित्यिक बम्बार्डमेन्ट हैं। उग्र ने भले ही इसकी कहानी की कल्पना की हो, किन्तु उन्हें (भवानीदयाल सन्यासी को) तो उसकी एक-एक बात सच्ची प्रतीत होती है। वे सैकड़ों बहनों की आत्म-कहानी सुन चुके हैं, जो बिलकुल इस प्रकार की घटनाओं से मिलती-जुलती हैं। अस्सी वर्ष तक जो कुली प्रथा प्रचलित रही, उसमें इससे भी अधिक रोमांचकारी घटनाएं घट चुकी हैं। स्वयं भारत सरकार इस प्रकार के व्यवसाय से उपनिवेशों के अपने गौरांग बन्धुओं को सहायता पहुंचाती रही है। इसी तरह बहका-बहकाकर लाखों बहनें उपनिवेशों में भेजी गईं। आज भी यह कलंक भारत के माथे से मिट नहीं गया है। आज भी प्रतिवर्ष सहस्रों बहनें बहकाकर विधर्मी और वेश्या बनाई जाती हैं और हिन्दू-समाज टस-से मस नहीं होता है। इस प्रकार की साहित्यिक रचनाएं ही वर्तमान समाज में क्रान्ति पैदा कर सकती हैं।[2]

उपर्युक्त विरोधी मतों से 'दिल्ली का दलाल' को सम्मान और अपमान एक साथ मिला। नैतिकतावादियों ने उसे अश्लील, कुरुचिपूर्ण और उपेक्षित कृति घोषित किया। ययार्थवादियों ने उसके प्रतिपाद्य-विषय तथा शिल्प की मुक्त कंठ से प्रशंसा की। वस्तुत: यह उपन्यास स्वस्थ यथार्थवाद की सीमाओं का कहीं-कहीं उल्लंघन करने के कारण ही उपेक्षित समझा गया है। इसका मूल उद्देश्य व्यभिचारी वृत्तियों के प्रति विद्रोह एवं घृणा उत्पन्न करना ही है। किन्तु, उपन्यास में कुत्सित अंगों का सीधा-सादा विस्तृत विवेचन सामाजिक मर्यादाओं और नैतिक बन्धनों को तोड़ देता है। उससे पाठक कुप्रभाव भी ग्रहण करते हैं। उपन्यासकार अपने सुधार-

---

१. हिन्दी उपन्यास और ययार्थवाद', पृ० ३०१
२. उग्र: 'फाइल और प्राफाइल'. पृ० २३८-२३९

वादी दृष्टिकोण से विचलित-सा हो गया है।

'दिल्ली का दलाल' की अश्लीलता अस्वीकार नहीं की जा सकती। कथाकार अनुभूति और अभिव्यक्ति को अधिक संयत रूप में नहीं रख सका है। किन्तु उसका यह कथन भी पर्याप्त सत्यता लिये हुए है कि कोई माई का लाल जो हमारे समाज को नीचे से ऊपर तक देखकर, कलेजे पर हाथ रखकर, सत्य के तेज से मस्तक तान कर इस पुस्तक के अकिंचन लेखक से यह कहने का दावा करे कि तुमने जो कुछ लिखा है, समाज में ऐसी घृणित, रोमांचकारिणी, काजल-काली तस्वीरें नहीं हैं। अगर कोई हो तो सोत्साह सामने आवे, मेरे कान उमेठे, और छोटे मुंह पर थप्पड़ मारे, मेरे होश को ठिकाने करे। मैं उसके प्रहारों के चरणों के नीचे हृदय-पांवड़े डालूं। मैं उसके अभिशापों को सिर माथे पर धारण करूंगा, संभाल लूंगा। अपने पथ में कतर-ब्योंत करूंगा। सच कहता हूं, विश्वास मानिए, सौगन्ध और गवाह की हाजत नहीं मुझे।'[1] इस उपन्यास में वर्णित यथार्थ को मिथ्या कहने का प्रयास दुस्साहस ही है। हमारे समाज में अनैतिकता और व्यभिचार का प्राबल्य है। उसके निवारण के लिए, उसके यथार्थ रूप के उद्घाटन का अधिकार किसी भी साहित्यकार को है। 'उग्र' अपने उसी अधिकार के आधार पर, रूप में यौवन के जान-मार नर-पिशाचों को अनावृत करते हैं। वे नारियों क अवैध व्यापार का उन्मूलन चाहते हैं। उनकी यह हार्दिक इच्छा है कि कुत्सित प्रवृत्तियों के लोग इस नारकीय व्यापार को न कर सकें। भोली-भाली नारियों को भ्रष्ट होने से बचाया जाए, वे अब्दुल्ला और सन्तू जैसे नराधमों के जाल में आकर, मूल्य-मर्यादा रहित जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य न की जाएं।

इसमें सन्देह नहीं कि 'उग्र' ने 'दिल्ली का दलाल' के माध्यम से अपने समय की अनैतिकता का जीता-जागता चित्र अंकित किया है। उन्होंने अपनी पैनी दृष्टि से मनुष्य के मनोगत भावों को, समाज के दूषित अंगों को परखा है और अपनी सशक्त भाषा से अभिव्यंजित किया है। आज भी हमारे समाज में भले घर की भोली-भाली युवतियों तथा बालिकाओं को

---

१. 'दिल्ली का दलाल', पृ० १

बहकाया जाता है। दुराचारी प्रवृत्ति के लोग सार्वजनिक मेलों और तमाशों के अवसर पर उनके भोलेपन से लाभ उठाते हैं। 'उग्र' ने उनको अनावृत्त करके समाज की आंखें ही खोली हैं। उन्होंने 'विषस्य विषऔषधम्' अर्थात् विष की औषधि है ही विष, का अनुसरण किया है। उनका यह प्रयास कुछ संयत पद्धति से, अपना कार्य करता तो अधिक समीचीन होता। यथार्थ की सीमा को लांघने से ही उनका यह उपन्यास कटु आलोचनाओं का विषय बना है।

आलोच्य उपन्यास वर्णनात्मक-पद्धति में निर्मित हुआ है। इसमें आत्म-कथात्मक, अभिनयात्मक आदि शैलियों का प्रयोग भी, विषय और अवसर के अनुकूल पाते हैं। वर्ण्य-विषय के आधार पर इसे सामाजिक और रचना-लक्ष्य की दृष्टि से यथार्थवादी उपन्यास कह सकते हैं। इसके पात्र संख्या में कुछ अधिक अवश्य हैं, किन्तु तत्कालीन नैतिक पतन को अंकित करने के लिए इनका समावेश आकश्यक ही था, ये मूल संवेदना को प्रकाशित करने वाले हैं। इनका चरित्र-चित्रण अप्रत्यक्ष-पद्धति से हुआ हैं। इनके वार्तालाप और क्रिया-कलाप इनके चारित्रिक गुण-दोषों का उद्घाटन करते हैं। उपन्यासकार ने पात्रों की मानसिक और बौद्धिक स्थिति के अनुरूप संवादों का आयोजन किया है। उनकी भाषा में स्वाभाविकता, अशिष्टता और गत्यात्मकता मिलती है। अशिष्ट शब्दों और गालियों का प्रयोग स्वाभाविकता के संचार के साथ-साथ साहित्यिक सौन्दर्य को आघात भी पहुंचाता है।

चन्द हसीनों के खुतूत

यह 'उग्र' का बहु-चर्चित उपन्यास है। इसे हिन्दी की कुछ इनी-गिनी उपलब्धियों में स्थान प्राप्त है। इसका सृजन भी सन् १९२७ में हुआ। इस उपन्यास के सम्बन्ध में स्वयं लेखक का विचार है—'चन्द हसीनों के खुतूत' विश्व के उपन्यास-साहित्य में हर्गिज़ नाम लेने क़ाबिल नहीं, मगर, हिन्दी में इससे मुझे बहुत यश दिया। आदमी बिल्कुल घोंघावसन्त न हो तो, निश्चय ही यश या पब्लिसिटी पैसे बनकर रहती है। 'चन्द हसीनों के खुतूत' से जो मुझे शोहरत मिली उससे मैं मालालाल हो गया और अब, भले ही

मेरी जेब में एक टका न हो, पर धन मेरे चारों ओर गुजराती गरबा नाचता रहता हैं। फिर भी, हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्ध-सुधार पर आज मुझे लिखना हो, तो कुछ भी न क्यों लिखूं पर 'चन्द हसीनों के खुतूत' तो हर्गिज नहीं लिखूंगा। मेरी बुद्धि बदल गयी, सो बात नहीं—काल बदल गया, वक्त बदल गया।"[१]

आलोच्य उपन्यास ने आज से ४० वर्ष पूर्व प्रकाशित होकर, हिन्दी-जगत् में कोलाहल उत्पन्न कर दिया था। इसमें जवान, खूबसूरत दिलों की दर्दनाक दास्तान मिलती है। उपन्यासकार युवावस्था के उन्मुक्त प्रेम, हिन्दू-मुस्लिम एकता, पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित नवोन्मेष, रूढ़िमुक्त प्रगतिशीलता और मानवीय संवेदनशीलता को यथा स्थान अंकित करने में अपूर्व सफलता प्राप्त कर सका है। इस उपन्यास का नायक मुरारीकृष्ण और नायिका नर्गिस है। दोनों एक दूसरे को, अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करते हैं। किन्तु, सामाजिक तथा धार्मिक बन्धन उन्हें परस्पर मिलने नहीं देते हैं, उनका सबसे बड़ा अपराध यही है कि वे भिन्न-भिन्न जातियों से सम्बन्ध हैं। सामाजिक रूढ़िवादिता उन्हें विद्रोहात्मक संघर्ष करने के लिए बाध्य करती है। नर्गिस की उदार मानवीय आत्मा धर्म और समाज के बन्धनों के विरुद्ध चीत्कार करती है—'औरत का दिल ऐसी चीज नहीं जिसे आज 'हिन्दू' और कल 'मुसलमान' को दिया जाय। सच्ची औरत अपना आक़ा, अपना मालिक, अपना खुदा एक बार चुनती है—हजार बार नहीं। ···मैंने उन्हें 'अपना' मान लिया है। अब दूनिया की कोई ताकत भी हमें अलग नहीं कर सकती। मैं उनकी हूं, वह मेरे हैं।'[२] वह इसी संघर्ष से प्रेरित होकर इस्लाम धर्म त्याग देती है, और अपने प्राणनाथ से मिलने को निकलती है। मुरारीकृष्ण भी समाज और धर्म को बाधक समझकर विद्रोह करता है। परन्तु इसी बीच हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता बल पकड़ती है और प्रतिनायक याकूब अवसर पाकर मुरारी कृष्ण का वध करा देता है। इससे घायल हृदया नर्गिस अर्द्ध-विक्षिप्त-सी हो जाती है और इस्लाम-धर्म को

१. 'खुदाराम और चन्द हसीनों के खुतूत', पृ० ७
२. खुदाराम और चन्द हसीनों के खुतूत', पृ० ७१-७२

मिटाने तथा मानवीय धर्म के प्रचार का व्रत लेती है।

'चन्द हसीनों के खुतूत' में हिन्दी-उपन्यस के शिल्प का महत्त्वपूर्ण विकास हुआ है। यह पत्रात्मक शैली का प्रथम और अन्यतम उपन्यास है। इसके पात्र हिन्दी-उपन्यास-साहित्य की अनुपम धरोहर हैं। इसका कथानक यथार्थवादी होते हुए भी आदर्श के छोर छूता है। उसकी नायिका अपना सर्वस्व खोकर भी पलायनवादी प्रवृति का विरोध करती है और हमें दानवी धर्म को मिटाने और मानवीय धर्म के प्रचार का प्रोत्साहन देती है। उसके संवेदनशील हृदय से प्रस्फुटित उद्‌गार, उपन्यास के मूलभाव को अभिव्यंजित करते हैं—'आज की दुनिया की आंखों से देखने से अंधी रहना ही अच्छा है। वे आंखें किस काम की, जो आदमी को नफरत, बुग्ज़ और कीने की शक्ल में देखे। मैं तो सीधी-सीधी बात जानती हूं। दुनिया खुदा की है, शेख खुदा के हैं, बिरहमन खुदा के हैं, काफ़िर खुदा का है और मुसलमान भी खुदा का है।'[1]

विवेच्य उपन्यास की कथा पत्रों के रूप में विकसित होती है, उसका आदि, मध्य और अन्त पत्रात्मक शैली को प्रश्रय देता है। इसका प्रधान कारण नर्गिस और मुरारी कृष्ण प्रेम को गुप्त रखना है। ये दोनों भिन्न-भिन्न जातियों के प्राणी हैं और तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियां इनके प्रेम को किसी भी रूप में स्वीकार करने को तत्पर न थीं। पत्र-शैली से, प्रतिपाद्य-विषय की अभिव्यक्ति में स्वाभाविकता तथा मार्मिकता आई है। किन्तु कथा-संगठन का कार्य लेखक ने पाठकों पर छोड़ा है, वे पत्रानुक्रम से कथा-सूत्रों को स्वयं जोड़ें, यही रचयिता को अभीष्ट है। इससे कुछ जटिलता का संचार भी हुआ है। किन्तु, भाषा का अटूट प्रवाह, 'उग्र-शैली' का अद्वितीय तेज और भावात्मकता का तूफान इतना तीव्र और प्रभावोत्पादक है कि पाठकों के रसास्वादन और बोधगम्यता में कोई बाधा नहीं आती है। श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़ के शब्दों में—'पुस्तक के प्रत्येक शब्द बोलते हैं, घटनाएं इतनी स्वाभाविक हैं कि मालूम पड़ता है, कलकत्ता की किसी सच्ची बात का उल्लेख है। प्रत्येक हिन्दू 'मुरारी कृष्ण' होने की डाह कर

---

१. खुदाराम और चन्द हसीनों के खुतूत', पृ० १०१

सकता है। हमारे अभागे देश में ऐसी पुस्तकें यदि और निकलें तो वर्तमान वैमनस्य बहुत कुछ दूर हो सकता है। यदि इसका उर्दू में भी संस्करण निकले तो हमारे मुसलमान भाई भी पढ़कर प्रेम की महता स्वीकार करेंगे और कट्टरता छोड़ेंगे। बातें लोग वही कहा करते हैं पर ढंग अनेक हैं। 'उग्र' ने जो शैली इसमें बरती है, बड़ी हृदयग्राहिणी है।'[1]

कथाकार ने अपने प्रतिपाद्य-विषय को प्रभावोत्पादक तथा मार्मिक बनाने के लिए उर्दू के शेरों, ग़ज़लों आदि का प्रयोग भी यथास्थान किया है। उससे मानवीय प्रेम उद्दीप्त होता है, जातीय कट्टरता में शिथिलता आती है और धार्मिक उदारता प्रोत्साहन पाती है। हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य के निवारण के निमित्त प्रयुक्त कुछ कवितांश द्रष्टव्य हैं—

१. 'बुत में भी तेरा या रब,
जल्वा नज़र आता है।
बुत-खाने के पर्दे में,
काबा नज़र आता है।''[2]

२. 'साक़ी की मुहब्बत में
दिल साफ़ हुआ इतना,
जब सरको झुकाता हूं,
शीशा नज़र आता है।
बुतख़ाने के पर्दे में काबा नज़र आता है।''[3]

सारांश यह है कि 'चन्द हसीनों के खुतूत' उग्र के उपन्यास-साहित्य का ही नहीं, वरन् हिन्दी-उपन्यास-साहित्य का अनुपम उपन्यास है। यह उपन्यास एक नए भाव, नई संस्कृति एवं नए शिल्प का उद्घाटन करता है। इसकी मूलसंवेदना के विकास की भारतीय समाज को अत्यन्त आवश्यकता है। यह मानवीय संस्कृति का पोषक है और वही हमारी वास्तविक संस्कृति है। ईश्वर फिर से हमें मनुष्य बनाए। हम धार्मिक कट्टरता को त्यागकर

---

१. 'फाइल और प्रोफाइल', पृ० ७९
२. 'खुदाराम और चन्द हसीनों के खुतूत', पृ० १०३
३. वही, पृ० १०५

मानवीय आदर्श ग्रहण करें। इस उपन्यास को रचना-लक्ष्य के विचार से यथार्थवादी और रचना-शैली की दृष्टि से पत्रात्मक उपन्यास कह सकते हैं। इसका वर्ण्य-विषय सीमित क्षेत्र से विस्तार ग्रहण करता हुआ उच्च मानवीय धरातल तक पहुंचता है। कथाकार नर्गिस और मुरारी कृष्ण के आदर्श-प्रेम को दुःखद स्थिति में समाप्त कर, तत्कालीन संकीर्ण गतिविधियों को उभारता है और उनके प्रति विरोध और विद्रोह का भाव जगाता है।

बुधुआ की बेटी (मनुष्यानन्द)

सन् १९२८ में निर्मित यह उपन्यास, सन् १९५५ से, 'मनुष्यानन्द' के नाम से प्रकाशित होने लगा है। इसमें अछूतोद्धार और नारी-स्वातन्त्र्य की समस्या का विस्तारपूर्वक विश्लेषण हुआ है। उपन्यासकार ने स्वस्थ सामाजिक-भूमि पर आकर, अछूतोद्धार आंदोलन को अंकित किया है। वह बुधुआ भंगी और अघोड़ी मनुष्यानन्द के माध्यम से अछूतों में जीवन जागरण का मन्त्र फूंकता है। उसने अबोध, पीड़ित और पददलित रधिया को क्रुद्ध-सिंहनी के रूप में चित्रित करके, पुरुष जाति को सावधान किया है और नारी-स्वातंत्र्य का समर्थन किया है।

उग्र के विचार से यदि समाज के थोड़े-से भी जिम्मेदार ऊंचे व्यक्ति चाहें तो करोड़ों अछूतों को उचित स्थान पर ला सकते हैं। अछूत समस्या जो भारतीय समाज में नासूर बनकर प्रस्फुटित हुई हैं, उसे सुलझाने के लिए एक ओर अछूतों को आत्म-ज्ञान तथा आत्म-बल प्रदान करना होगा और दूसरी ओर उनके आर्थिक पक्ष को सुदृढ़ बनाना होगा। उपन्यासकार की हार्दिक इच्छा है कि अछूत स्वयं संभलें, अपने-आपको मनुष्य घोषित करें और संगठित होकर, संसार के अच्छे से अच्छे लोगों में आदर पाने योग्य बनें। उन्हें ताड़ी, दारू, गांजा, अफीम आदि का सेवन त्यागना चाहिए और परस्पर गाली-गलौच, लत्तम-जुत्तम के स्थान पर सहयोग और सभ्य व्यवहार को अपनाना चाहिए। वे अपने बच्चों को कोई कला-कौशल सिखाएं और शिक्षा दिलाने का उद्योग करें।[1] अछूतों को जगाने के लिए, कथाकार उन्हें

१. 'मनुष्यानन्द', पृ० १२८

स्थान-स्थान पर ललकारता है, उनके आलस्य और प्रमाद पर तीखे व्यंग करता है—"तुम अछूत बने हो अपने लापरवाही से। नहाते तुम नहीं, हमेशा गन्दगी से लिपटे रहते हो, ऐसी हालत में रहने वाले समाज को अछूत ही समझा जायेगा। फिर भले ही वह संसार के किसी भी भाग में क्यों न पैदा हुआ हो।"[1]

अछूतोद्धार का दूसरा पक्ष आर्थिक दृढ़ता है। जिसे उपन्यासकार पंचायतों के संगठन और आन्दोलनों के माध्यम से सुलझाना चाहता है। उसके विचार से अछूतों को चाहिए कि वे अपनी पंचायतें बनाएं, पंच चुनें, उनकी आज्ञाओं का पालन करें और संगठित होकर आन्दोलन चलाएं। उनकी एकता ही समाज के अधिकारियों को झुका सकती है और वे यह समझने को बाध्य हो सकते हैं कि अछूतों का भी कोई अस्तित्व है। किन्तु जब तक अछूतों में बेकार तकरार, कलह, शराबखोरी आदि की प्रधानता रहेगी, उनका उद्धार असम्भव है। उन्हें ऊंची जातियों के लोग परतन्त्र और नरक के कीड़े बनाए रखेंगे।

उपन्यासकार नारी-जागरण सम्बन्धी आन्दोलनों से भी प्रभावित हुआ है। वह स्वार्थी, विलासी, लम्पट तथा कपटी पुरुषों के विरुद्ध, नारियों को युद्ध-घोषणा करने की प्रेरणा देता है। पुरुष समाज सबल होने के कारण, आरम्भ से ही नारियों पर मनमाने अत्याचार करता चला आ रहा है। उनके विरुद्ध विद्रोह करना, नारियों के लिए आवश्यक है। 'मनुष्यानन्द' का घनश्याम विलासी एवं नीच पुरुष वर्ग का प्रतिनिधि है, जो छल-कपट प्रलोभन आदि से रधिया की अछूती जवानी का सर्वनाश करता है। उसके कुकर्म और अमानुषिक व्यवहार ही रधिया को विद्रोही बनाते हैं। वह क्रुद्ध-सिंहनी बनकर स्वार्थी पुरुष-जाति के विनाश का व्रत लेती है। उसके शब्दों में—"सभी स्त्रियों को चाहिए कि पुरुषों का हृदय अपने पैरों-तले दबाकर कुचल दिया करें, जैसे उन्मत्त हथिनी अपने प्रचंड पैरों के नीचे बताशे को कुचले।"[2] रधिया का यह उग्र व्यक्तित्व लंदन में जाकर अभिव्यंजित होता है। उसका

---

१. 'मनुष्यानन्द', पृ० १२८

२. वही, पृ० २२२

सांकेतिक अर्थ नारी-जागरण ही है, पुरुष जाति का मूलोच्छेद नहीं।

'मनुष्यानन्द' में रधिया और घनश्याम का वासनात्मक प्रेम दिखाते समय उपन्यासकार यथार्थवाद की सामान्य सीमा का उल्लंघन करता है। इसी से उसमें तथाकथित अश्लीलता का दोष आ गया है। मौलवियों, पीरों और फकीरों के कुत्सित कार्यकलापों का चित्रण भी अति यथार्थवादी एवं आलोचनात्मक यथार्थवादी शैली में हुआ है। उससे नग्नता-सी भासित होती है। उपन्यासकार ने संयत भाषा और नैतिकता की अवहेलना की है।

इस उपन्यास का कथा-निर्माण वर्णनात्मक, अभिनयात्मक, आत्मकथात्मक, मनोविश्लेषणात्मक आदि शैलियों में हुआ है। उपन्यासकार ने विषय तथा परिस्थिति के अनुसार शैली-विशेष के प्रयोग को प्रश्रय देकर औपन्यासिक शिल्प को शक्ति प्रदान की है। रचना लक्ष्य की दृष्टि से, उसका यह उपन्यास मुख्यतः यथार्थवादी है। उसमें प्रकृतवाद और अति-यथार्थवाद या आलोचनात्मक यथार्थवाद के कुछ तत्व भी अवश्य समाविष्ट हुए हैं। इसके पात्र वर्गगत हैं और यथार्थ जीवन से सम्बद्ध हैं। उनका चरित्र-चित्रण उनके वार्तालापों, कार्य-कलापों और विश्लेषणात्मक पद्धति से हुआ है। इस उपन्यास का मुख्य उद्देश्य अछूतोद्धार और नारी जागरण है। उसे अभिव्यक्त करने में उपन्यासकार बहुत कुछ सफल रहा है।

शराबी

'शराबी' उपन्यास का रचना-काल सन् १९३० है। इसमें शराब के दुष्परिणामों एवं सामाजिक विकृतियों का यथार्थ चित्रण हुआ है। इसकी नायिका जवाहर का पिता पारसनाथ शराब की लत से अपना सर्वनाश कर लेता है। उसका परिवार छिन्न-भिन्न हो जाता है। जवाहर घर छोड़कर भाग जाती है, पारसनाथ अर्द्ध-विक्षिप्त-सा हो जाता है, वह नगर-नगर, गली-गली, उसका नाम लेकर पुकारता है। पश्चात्ताप की अग्नि में जलते-जलते, उसकी शराब की लत छूट जाती है, वह शराब की बुराइयों का उद्‌घाटन करता है। लोगों को मदिरापान से रोकता है—"ऐ शराब को गले लगाने वालों! बचो इससे। यह वह नशा है जो अच्छे-से-अच्छे इन्सान

को शैतान की भट्टी में बरबस ले जाकर झोंक देता है।"[1] पारसनाथ शराब के विरुद्ध भाषण ही नहीं देता है, वरन् वह बारह भट्टियों को बन्द भी कराता है, सैकड़ों पियक्कड़ों से तोबा कराता है और असंख्य मनुष्यों को शराब के दोषों का सन्निकट ज्ञान प्रदान करता है।

'उग्र' अपने इस उपन्यास में सामाजिक विकृतियों का चित्रण भी बड़े प्रभावशाली ढंग से करते हैं। सामाजिक निर्दयता के कारण ही, हीरा का प्रेम असफल होता है। यौवन प्रस्फुटित होने से पूर्व ही, उसका विवाह एक विधुर से कर दिया जाता है, जो कामुक, लम्पट और व्यभिचारी है। वह दुष्ट पहले तो हीरा के यौवन को निष्ठुरता से मसलता है और उसके बाद वेश्याओं के अड्डे पर जाने लगता है। वेश्या जवाहर के कोठे पर उसकी जीवन-लीला समाप्त होती है। हीरा की पड़ोसिनें उसके माथे का सिन्दूर पोंछती हैं तथा उसकी कलाइयों की अनुरागमयी चूड़ियां तोड़ देती हैं। पति की मृत्यु के उपरान्त हीरा दुःखों और मार्मिक कष्टों से अर्द्ध-विक्षिप्त-सी हो जाती है। एक दिन वह नारायणी नहाने जाती है और पुनः नहीं लौटती। इसी प्रकार जवाहर की जीवन-गाथा भी विचित्र सामाजिक असंगतियों की द्योतक है। उसका जीवन अत्यन्त संघर्षमय है, वह अपने शराबी पिता के क्रूर आचरण से घबराकर, घर से भाग जाती है और चारों ओर से निराश होकर कुन्दन नामक वेश्या की शरण लेती है। नगर की स्त्रियां उसे कलमुंही डायन तथा चमकीली चुड़ैल कहती हैं। उसके दर्द को केवल मानिक समझता है। वह उसके विकृत जीवन की कहानी सुनकर और उसके गुणों से प्रभावित होकर, उससे विवाह कर लेता है। उसे जवाहर के दर्द और पतन को समझने में देर नहीं लगती है, वह स्वयं उसी रोग से ग्रस्त था। सामाजिक असंगति के कारण ही वह हीरा से विवाह नहीं कर पाता है और प्रेम की असफलता उसे एकान्तवासी, नीरस तथा शराबी बनाती है; वह दूसरों से उधार लेता है एवं वेश्या बाज़ार में जाने लगता है। जवाहर को पाकर ही, वह फिर से सद्मार्ग ग्रहण करता है।

'शराबी' उपन्यास का कथानक सामाजिक है। उसे रचना-लक्ष्य के

---

१. 'शराबी', पृ० १५५

विचार से यथार्थवादी कह सकते हैं। उपन्यासकार ने सामाजिक कुरीतियों, असंगतियों तथा विद्रूपताओं को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। उसने पारसनाथ, जवाहर, मानिक, पन्नालाल आदि पात्रों को यथार्थ जीवन से ही लिया है। उनके नैतिक पतन को, उसने मनोवैज्ञानिक पद्धति से दिखाने का प्रयास भी किया है। ये पात्र सामाजिक बुराइयों को प्रकाश में लाते हैं, उनका प्रसार नहीं करते हैं। इनका चरित्र-चित्रण मनोविश्लेषणात्मक तथा अभिनयात्मक पद्धतियों से हुआ है। इनके कार्य-व्यापार और वार्तालाप, कथा-संचालन में सहयोग देते हैं, इनके चारित्रिक गुण-दोषों का उद्‌घाटन करते हैं। कथाकार ने सामान्यतः वर्णनात्मक शैली में उपन्यास की रचना की है। उसने घटना, पात्र और स्थिति के अनुरूप भाषा-शैली का प्रयोग करके, उपन्यास को शिल्पगत सबलता प्रदान की है। इसमें तथाकथित अश्लीलता का प्रायः अभाव मिलता है। उपन्यासकार आदर्श की स्थापना के लिए ही यथार्थ गतिविधियों को विस्तारपूर्वक अंकित करता है। उसने कहीं-कहीं तो युगीन उपदेशात्मक प्रवृत्ति को भी अपनाया है।

सरकार तुम्हारी आंखों में

इस उपन्यास का रचना-काल सन् १९३७ है। यही उपन्यास सन् १९५५ में, 'कला का पुरस्कार' नाम से भी प्रकाशित हुआ। इसमें कलाकारों की उपेक्षित स्थिति, सामंती वर्ग की विलासिता एवं उनकी घृणित प्रवृत्तियों को यथार्थ रूप में चित्रित किया गया है। धरमपुर के महाराज मदनसिंह जू देव की जीवन-गाथा के माध्यम से उपन्यासकार ने वर्ण्य-विषय को अभिव्यक्त किया है। महाराज मदनसिंह के महल में, सहस्रों नारियों, कुत्तों और कलाकारों का जमघट-सा लगा रहता है। वे संगीत-कला में विशेष रुचि रखते हैं, इसी से राज्य के कलाकारों को एकत्रित करके, उनकी गोष्ठियां जमाते हैं और प्रसन्न होकर उन्हें पुरस्कार भी देते हैं। वे उस्ताद गुलाब खां के प्रति परम श्रद्धालु हैं, किन्तु, उनकी विलासिता और पाशविकता उन्हें नीच-से-नीच कार्य के लिए उकसाती है। वे कामवासना के वशीभूत होकर, उस्ताद गुलाब खां की पत्नी की हत्या कराकर, उनकी पुत्री फ़ीरोज़ी को अपनी वासना-पूर्ति का शिकार बनाना चाहते हैं। इतना ही

नहीं, वे उस्ताद गुलाब खां को पांच वर्ष के लिए पागलखाने में बन्द करा देते हैं। उनके इस सनकी और घृणित व्यवहार को देखकर, उनकी पाशविकता का अनुमान लगाया जा सकता है।

उपन्यासकार, कलाकारों के अनादर और दुर्दशाग्रस्त जीवन को देखकर व्यथित है, इसी से उन्हें विध्वंश की ओर अग्रसर करता है। उस्ताद गुलाव खाँ, फ़ीरोज़ी आदि के द्वारा उसने क्रान्तिकारी भावों को वाणी दी है। वह भारतीय संगीत की अलौकिक शक्ति में भी विश्वास रखता है। उसका यह विश्वास दो स्थलों पर प्रकट होता है। प्रथम स्थल फ़ीरोज़ी की सतीत्व रक्षा से सम्बद्ध है और दूसरा स्थल दीपक-राग से अग्नि प्रज्वलित कराने से सम्बन्ध रखता है। कामुक महाराज मदनसिंह, फ़ीरोज़ी का सतीत्व भंग करने में असफल रहते हैं। फ़ीरोज़ी के व्यक्तित्व और कला के आगे, उनका पापी मन सदैव शान्त हो जाता है। इसी प्रकार उस्ताद गुलाब खाँ दीप-राग गाते हैं, उससे गर्मी फैलती है, धुआं उठता है, आग लगती है और उसमें वे स्वयं जल जाते हैं।

उग्र सामन्ती विलासिता और भ्रष्टाचार के प्रति उपेक्षा, घृणा तथा विद्रोह जगाना चाहते हैं। इसी से वे महाराज मदनसिंह को पतन के अंतिम स्तर तक पहुंचाते हैं। महाराज अपनी आत्मजा से ही बलात्कार करने का प्रयास करते हैं और आंखें खुलने पर आत्म-हत्या कर लेते हैं। आत्म-हत्या करने से पूर्व वे पश्चाताप की अग्नि में जलते हैं, अपने आपको धिक्कारते हैं, कुल-कलंकी घोषित करते हैं। उनकी आत्मग्लानि ही उन्हें आत्महत्या की ओर प्रेरित करती है।

इस उपन्यास को वर्ण्य-विषय के आधार पर राजनैतिक उपन्यास कह सकते हैं। उपन्यासकार सामन्ती पतन, अनैतिकता, पारस्परिक फूट और पाशविकता का उद्घाटन करता है। सामन्ती राज्य-काल में, कलाकारों का जीवन कितना उपेक्षित तथा अपमानित था, यह दिखाना भी उसे अभीष्ट है। रचना-लक्ष्य की दृष्टि से, उसे यथार्थवादी उपन्यासों के अंतर्गत रखा जा सकता है। कथाकार तत्कालीन विलास-प्रवृत्तियों को अंकित करते समय, यथार्थवाद की सीमा का उल्लंघन भी करता है। उसी से इस उपन्यास में, अश्लीलता का दोष आ गया है। किन्तु, उसका उद्देश्य विलासिता को

बढ़ावा देना नहीं है। उपन्यासकार ने कहीं भी पाशविकता का समर्थन नहीं किया है। वह उसके प्रति घृणा ही जगाता है। उसके पात्र यथार्थ जीवन से सम्बद्ध हैं। उस्ताद गुलाब खां के चरित्र में अलौकिकता का समावेश, उसे अलौकिक पात्र-सा बना देता है। इसी से उपन्यास का अन्त अस्वाभाविक है। यह उपन्यास वर्णनात्मक शैली में निर्मित हुआ है। इसका कथानक विभिन्न उपशीर्षकों में विभक्त है। इसमें शिथिलता भी मिलती है, उसी से नीरसता और प्रभावहीनता प्रोत्साहन पाती है। वस्तुतः यह उग्र का साधारण लघु-उपन्यास है। इसमें उनका औपन्यासिक शिल्प प्रौढ़ता ग्रहण नहीं कर सका है।

जीजीजी

इस उपन्यास का रचना-काल सन् १९४३ है। इस उपन्यास की कहानी पूर्णरूपेण यथार्थवादी है, किन्तु उग्र ने उसे आदर्शवाद के छोर तक पहुंचा दिया है। इसकी कथा का केन्द्र बिन्दु प्रभा है, उसी के माध्यम से अनमेल विवाह के दुष्परिणाम, भारतीय नारी का आदर्श और व्यभिचारी पुरुषों का नारी के प्रति दुर्व्यवहार अभिव्यक्ति पाता है। प्रभा कामुक, लम्पट और दुराचारी पति के अत्याचारों को चुपचाप सहती है, आत्मपीड़न और आत्म-हनन में ही उसका अमूल्य जीवन नष्ट हो जाता है। उसका करुणाजनक अन्त पाठकों को सामाजिक अन्याय, पुरुषों की पाशविकता और क्रूरता के विरुद्ध क्रांति करने की प्रेरणा देता है।

प्रभा की जीवन-गाथा भारतीय समाज की कुरूपता का उद्घाटन करती है। विवाह से पूर्व, परिवार में उसकी कोई प्रतिष्ठा नहीं थी, क्योंकि वह लड़की थी, उसकी विमाता उस पर कई प्रकार केप्रतिबन्ध लगाती है, उसी के प्रभाव में आकर, प्रभा के पिता भी अनुदार बन जाते हैं और निरीह बालिका को नर-पशु दीनानाथ को सौंप देते हैं। उस समय वे न तो आयु का विचार करते हैं और न आचार-विचार का। १९ वर्षीय प्रभा, ३४ वर्षीय दीनानाथ को, बलि के बकरे के रूप में दे दी जाती है। दीनानाथ का यह दूसरा विवाह था, उसकी पहली पत्नी उसके दुर्व्यवहार से मर चुकी थी। वह किसी सेठ के यहां नौकर था और उसी की पत्नी के साथ अनैतिक

सम्बन्ध भी रखता था।

प्रभा की मान्यताएं रूढ़िवादी हैं। वह त्याग, बलिदान और शान्ति में विश्वास रखती है। उसके विचार से बुरे पुरुष से भागने की अपेक्षा, अपने आपको अच्छी स्त्री प्रमाणित करना अधिक उत्तम है। बुरे पुरुष को मार्ग पर लाने के प्रयत्न में मर-खप जाने में गौरव है। लड़ना-मरना, नाश करना पुरुष का स्वभाव है, शान्ति और संगति के योग से सृष्टि करना नारी की प्रकृति है। पुरुषों से होड़ लेकर, नारी का भी पुरुष बन जाना असमीचीन है। स्त्री यदि सच्ची या सती है तो पुरुष की पशुता उसके अधीन वैसे ही होती है जैसे पार्वतीदुर्गा के अधीन पशु-पति महासिंह।[1]

'जीजीजी' चरित्र-प्रधान सामाजिक उपन्यास है। इसका कथानक आत्मकथात्मक शैली में निर्मित हुआ है। इसके सभी पात्र अपने-अपने जीवन की आत्मकथा सुनाते चले जाते हैं। उससे प्रभावोत्पादकता और जटिलता का एक साथ संचार होता है। उनकी आत्म-कथाएं स्वाभाविकता और मार्मिकता लाती हैं, किन्तु उनसे कथा-संगठन का कार्य पाठकों को स्वयं करना पड़ता है। कथा-सूत्र बिखर जाता है, उसमें शिथिलता आ जाती है। इस उपन्यास के पात्र यथार्थवादी हैं। उनमें प्रभा का चरित्र, आदर्शवादी है, उसमें भारतीय नारी का अद्वितीय त्याग और बलिदान अभिव्यंजित हुआ है। अन्य पात्रों में मानवीय और दानवीय अनुभूतियों को सफलता पूर्वक दिखाया गया है। मुरली ठाकुर, नरकू आदि पात्रों में मानवीय तत्व प्रश्रय पाते हैं और दीनानाथ, धोबी-पत्नी आदि में पाशविक वृत्तियां विस्तार ग्रहण करती हैं। उपन्यासकार मानवीय मूल्यों में ही आस्था प्रकट करता है। उसने कामुक नर-नारियों के प्रति घृणा और सहानुभूतिशील, त्यागी, एवं आदर्शवादी पात्रों के प्रति आदर-भाव जगाया है।

कढ़ी में कोयला

यह उपन्यास सन् १९५५ में निर्मित हुआ। इसमें कलकत्ता के मारवाड़ी समाज की अनैतिकता, पत्र-संचालकों की अर्थ-पैशाचिकता और

---

१. 'जीजीजी,' पृ० ४१-४४

वनारस-मिर्ज़ापुर के साहसी गुण्डों का चित्रण हुआ है। उपन्यासकार के अनुसार, इस उपन्यास का उद्देश्य है---"समाज या समाज-विशेष की बुराइयों का विशेष-वर्णन कर उचित उपचार के लिए एक्सरे फोटो सामने रखना।"[१]

'कढ़ी में कोयला' में मुख्यत: मालेमस्त मारवाड़ी समाज के बिगड़े स्वास्थ्य पर प्रकाश डाला गया है। यह समाज चिरकाल से, एक उलझन-दार समस्या बना हुआ है, येनकेन प्रकारेण दूसरों की सम्पत्ति, अपने हाथ में कर लेना ही इसका चरम लक्ष्य है। दूसरों का वैभव हस्तगत करते ही यह वर्ग अपने आपको ईश्वर समझने लगता है। लोभ-लोलुप होकर, इसने सन्तुलन खो दिया है। यह न्यायालय को शेयर बाजार और धर्म को व्यापार समझता है। इसकी दान-लीलाएं मलीन स्वार्थमयी होती हैं और शोषण की प्रवृत्ति इसके रक्त में समा चुकी है। मारवाड़ी समाज बाजार भाव को दबाता है, अधेले को अधेली और अधेली को अधेला बनाता है। उसकी तुलना अस्पष्ट, गम्भीर और परिणाम में घातक अंधेरें कुएं से की जा सकती है। काम पड़ने पर यह कुत्ते को कुत्ता जी कहेगा और स्वार्थ का दूध निकलते ही, माता-माता कहता हुआ गऊ को बेघास की पेंशन देकर पिंजरापोल पठा देगा।[२] उपन्यासकार ने सेठ घीसालाल बीकानेरी, सुधारक राजमल जय-पुरिया आदि पात्रों के माध्यम से मारवाड़ी समाज को अनावृत किया है। सेठ घीसालाल के जीवन का लक्ष्य है—पैसा-पैसा। वह मल से भी पैसा निकालने में संकोच नहीं करता है। पैसा लेना हो, तो मुर्दों के मुंह से भी वह पैसा निकाल लेता है और देना हो, तो उसके प्राण निकलते हैं। वह पर स्त्रीगामी है, इस काम में भी वह कम-से-कम धन खर्च करके, अधिकाधिक नारियों का जीवन नष्ट करता है। वह अपनी पत्नी से कहता है कि उसका आदर्श पत्नीव्रत नहीं, शेयर बाज़ार है। सो, जिस काम से भी बुद्धि बाज़ार-भाव समझने के योग्य हो, वही उसका कर्तव्य है। कुछ लोग गांजा पीकर काम करते हैं, कुछ अफीम खाकर, पर उसे औरतें ही अच्छी लगती हैं।[३]

---

१. "कढ़ी में कोयला", पृ० १

२. वही, पृ० ३२

३. वही, पृ० १६४

मारवाड़ी समाज के नेता तथा प्रसिद्ध समाज-सुधारक राजमल जयपुरिया तो यहां तक कहते हैं कि मारवाड़ियों को कलकत्ता पर अधिकार पाने के लिए किसी व्यष्टि या समष्टि के मतदान की अपेक्षा नहीं, वह तो उनके अधिकार में है ही। मारवाड़ी-समाज की मिथ्या, मलीन और स्वार्थमयी दानवृत्ति को लेकर वे धरती और आकाश एक कर देते हैं। उनकी दृष्टि में, सारा देश मारवाड़ी-समाज का ऋणी है। उपन्यासकार उनके मिथ्याभिमान का उपहास उड़ाता है और मारवाड़ियों की धनलोलुपता, विलासिता और स्वार्थवृत्ति को कलंक प्रमाणित करता है।

पत्र-संचालकों की अर्थ-पैशाचिकता को 'जगरक्षक' के संचालक घमण्डीलाल के जीवन-वृत द्वारा अंकित किया गया है। घमंडीलाल जनता को, समाचार-पत्र के लिए घोषित करता है। उसके अनुसार पत्र का जनता से वही सम्बन्ध है, जो नेता का भीड़ से, जिन्हें वे विचारों के चारे चराते हैं, बहका-बहका कर दुहने और ऊन उतारने के लिए। पत्रकारिता का उद्देश्य जन सेवा नहीं, आचार-विचार का प्रसार नहीं, उसका ध्येय तो, लटामांसी वस्तुओं के विज्ञापन छाप, धन बटोरना और भव्य भवन खड़े करना हैं।[1]

बनारस, मिर्ज़ापुर के साहसी गुण्डों का यथार्थ चित्रण गौरी दादा, मदनू महाराज आदि के द्वारा हुआ है। ये गुण्डे ज़मींदारों, धनवानों और सरकार के शत्रु हैं। ये नोट बनाते हैं, डाके डालते हैं, हत्याएं करते हैं, किन्तु, पर स्त्रीगमन, निर्धनों के शोषण आदि से दूर रहते हैं। गौरीसिंह अपने दोषों को स्वयं स्वीकार करता है और अपने गुणों का प्रचार भी बड़े उत्साह से करता है। उसके अनुसार ब्रह्मचर्य से ही सारे कार्य होते हैं और उसकी कमी से सारे कार्य बिगड़ते हैं। मदनू बल-व्यवसायी गुण्डा है और अपने सबल व्यक्तित्व के कारण, अपने प्रदेश में चोरी और व्यभिचार नहीं होने देता है।

'कढ़ी में कोयला' उपन्यास कथात्मक शैली में निर्मित हुआ है। उपन्यासकार ने यथास्थान अभिनयात्मक पद्धति का भी उपयोग किया है। इस पद्धति के प्रयोग से नाटकीय चमत्कार का संचार हुआ है। किन्तु जहां वार्तालाप भाषणों का रूप ले लेते हैं, वहां नीरसता, उपदेशात्मकता तथा

१· 'कढ़ी में कोयला,' पृ० १९१-१९३

कथा-शिल्प में शिथिलता आ जाती है। इस उपन्यास का कथानक कई उप-शीर्षकों में विभक्त है, उसमें मुख्य कथा के साथ, कतिपय प्रासंगिक कथाएं भी चलती हैं, जो वर्ण्य-विषय के प्रतिपादन में सहयोगी हैं। उपन्यासकार ने पात्रों के क्रिया-कलापों, वार्तालापों और आचार-विचारों के माध्यम से मूलभावों को अभिव्यंजित किया है। घटना और परिस्थिति के अनुसार, तीखे व्यंग्य-विधान का आयोजन भी किया गया है। मारवाड़ी समाज के भ्रष्टाचार को अनावृत करते समय, उपन्यासकार यथार्थवाद की सामान्य सीमा का उल्लंघन करता है। उसी से अभद्रता, अशिष्टता आदि की त्रुटि भी इस उपन्यास में मिलती है। फिर भी लेखक की निर्भीक लेखनी मारवाड़ी समाज के भ्रष्टाचार, पत्र-संचालकों की धनलोलुपता और साहसी गुण्डों के वास्तविक स्वरूप के उद्‌घाटन में आशातीत सफलता प्राप्त कर सकी है।

जुहू

इस लघु उपन्यासों में बम्बई के आडम्बरपूर्ण जीवन का चित्रण हुआ है। उपन्यासकार के अनुसार बम्बई धन-कुबेरों की नगरी है, विलासिता इसकी हवा में है। यहां के निवासी इसकी हवा में इन्द्रधनुषी मस्ती का अनुभव करते हैं। बम्बई को भारत का पेरिस कहा जाता है। यह विचित्र नगरी है, यहाँ एक मुहल्ले का चोर, दूसरे मुहल्ले में 'सेठ' पुकारा जाता है। इस विचित्र नगरी के लोगों की दृष्टि धन पर रहती है, वह मलीन उपायों से आए या उज्ज्वल साधनों से, उसे पाना ही बम्बई निवासियों का लक्ष्य है, कानून जुआरी को पकड़ता है, फिर भी उसकी नाक के नीचे दिन-दहाड़े जुआ खेला जाता है। हत्या कानून के विरुद्ध होती है, हत्यारा फांसी पाता है, फिर भी कानून के चश्मे के नीचे हत्याएं हुआ करती हैं। इस वातावरण को उभारना ही उपन्यासकार का उद्देश्य है।

'जुहू' उपन्यास की मूलसंवेदना पात्रों के क्रिया-कलापों और वार्तालापों के माध्यम से प्रकाश में आती है। इसका कथानक भी वर्णनात्मक-पद्धति की अपेक्षा संवाद-पद्धति को प्रश्रय देता है। कथा-सूत्रों को जोड़ने के लिए ही कथात्मक शैली का आश्रय लिया गया है। उपन्यासकार ने सेठ भोलानाथ,

सेठ रामजी, मनोरमा, हरिसिंह आदि पात्रों का चरित्र-चित्रण अभिनयात्मक शैली में किया है। उसने पात्रों के नैतिक पतन और आडम्बर-प्रियता को अनावरण करने के लिए व्यंग्य-वाणों का प्रयोग भी किया है। उसका लक्ष्य दुराचारी व्यक्तियों के प्रति घृणा उत्पन्न करना है। वह आज के खोखले कानून और पुलिस-विभाग की दुर्बलता को भी आड़े हाथों लेता है। सरकारी कर्मचारी और अधिकारी गुण्डों से मिले रहते हैं। पुलिस-विभाग का नेता भी उनसे जुड़ा हुआ है। इस उपन्यास में हरिसिंह द्वारा रहस्योद्‌घाटन किये जाने पर, पुलिस अधिकारी मारुती कहता है—"तुम कोई नासमझ छोकरे नहीं, मज़े में जानते हो कि पुलिस, गुण्डा और वकील का रिश्ता हमेशा ही चोली-दामन का रिश्ता रहता हैं। फिर इसमें कोई किसी के खिलाफ क्यों जाए ?"[१]

'जुहू' 'उग्र' का रोचक लघु-उपन्यास है। रचना-लक्ष्य की दृष्टि से यह यथार्थवादी और वर्ण्य-विषय के आधार पर सामाजिक उपन्यास है। इसके शिल्प का सर्वाधिक शक्तिशाली उपकरण संवाद है, उसी से कथा गति पाती है और पात्रों के चरित्र को प्रकाश मिलता है। उपन्यास का उद्देश्य भी संवादों के माध्यम से अभिव्यक्ति प्राप्त करता है। सामाजिक अनैतिकता को संयत भाषा-शैली में चित्रित न करना ही इस उपन्यास का प्रधान दोष है।

फागुन के दिन चार

'उग्र' के उपन्यास-साहित्य में 'फागुन के दिन चार' उपन्यास विशिष्ट स्थान का अधिकारी है। इसका रचना काल १९५९ है। इसमें काशी जनपद और बम्बई महानगर में घटने वाली विविध घटनाओं, अनैतिक व्यापरों और अनाचारों का सजीव चित्रण हुआ है। उपन्यासकार ने मुख्यत: मानवीय दुर्बलताओं एवं कुप्रवृत्तियों के रहस्योद्‌घाटन में ही शक्ति व्यय की है।

विवेच्य उपन्यास के पूर्वार्द्ध में, ४० वर्ष पहले काशी जनपद के आचार-विचार, दुराचार और जन-जागरण का इतिहास प्रस्तुत किया गया है।

---

१. 'जुहू', पृ० १४४।

उपन्यासकार के विचार से ४० वर्ष पहले काशी में रांड़ें थीं, सांड थे, सीढ़ियां थीं और संन्यासी इतने थे कि उनसे बचकर काशी सेवन सर्वथा असम्भव था।[1] परन्तु सन् १९२१ के राष्ट्रीय महाजागरण से वातावरण में परिवर्तन आया, काशी के व्यभिचारी व्यक्ति भी राष्ट्रीय आंदोलनों में भाग लेने लगे। इस उपन्यास का नायक जगरूप, जिसे चरित्रहीनता उत्तराधिकार के रूप में मिली थी, वह भी राष्ट्रीय आन्दोलनों से प्रभावित होकर, सरकारी आदेशों की अवहेलना करता है और उसी के परिणामस्वरूप जेल की शोभा बढ़ाता है। इस प्रकार उपन्यासकार जेल-जीवन का भी अत्यन्त जीवन्त एवं यथार्थ चित्रण करता है। उसके निजी अनुभव, आंखों से देखे दृश्य और ऐतिहासिक घटनाएं कल्पना का आश्रय पाकर मूर्तिमंत हो उठती हैं।

'फागुन के दिन चार' के उत्तरार्द्ध में, आज से तीस-पैंतीस वर्ष पहले के फिल्मी-संसार की खेद-जनक कहानी अंकित हुई है। उपन्यासकार के अनुसार इस कहानी का सार बम्बई के प्रसिद्ध इंगलिश साप्ताहिक 'ब्लिट्ज़' (१९-१२-५९) के अंक में पढ़ा जा सकता है। पिछले तीस-पैंतीस वर्षों में कला-रहित-पापाचार की दृष्टि से फिल्मी संसार में सुधार नहीं हुआ है। इसी से इस संस्मरणात्मक उपन्यास की आवश्यकता ऊपर उभर आती है।[2] नाम और नामा की भूखी नई-नई फिल्मी अभिनेत्रियां, नवयुवा लड़कियां, सिनेमा-जगत के कुचक्र में वैसे ही फंस जाती हैं, जैसे दुष्ट, बदनीयत मकड़े के जाल में मक्खियां फंसती हैं। ये नवेलियां नाम कमाती हैं, नामा भी। किन्तु, यह सम्भव होता है भारी मूल्य चुकाने पर। इन्हें अपना सर्वस्व लुटाना पड़ता है। वह काम, जिसकी कामना कामनियों से की जाती है, फिल्म-स्टूडियो की ड्यूटी के उपरान्त आरम्भ होता है। ये स्वयं फिल्म-स्टार विधाता समझे-बूझे चारे या बहकावे देते हैं। नवयुवतियां पापपंक में अपना जीवन नष्ट करने के बाद ही अनुभव करती हैं कि उनका सुनहरी सपना नारकीय दुःस्वप्न ही था।[3]

---

१. 'फागुन के दिन चार', पृ० २०
२. 'फागुन के दिन चार', 'मुखड़ा', पृ० ७
३. वही, पृ० ७-८

इस उपन्यास में काशी और बम्बई के अनैतिक जीवन का उद्घाटन जगरूप, महामाया, मिस रोज़, लीलाधर सादि पात्रों की जीवन-गाथाओं द्वारा हुआ है। दो भिन्न-भिन्न नगरों की कथाओं को संगठित करने वाले भी यही पात्र हैं। ये पहले काशी में और फिर बम्बई में निवास करते हैं। जगरूप उच्च कुलीन ब्राह्मण वंश में जन्म लेकर भी आयुभर व्यभिचारी ही बना रहता है। वह शिक्षित होने पर, वासना के पथ पर भटकता रहता है। नर्तकी महामाया के साथ भागकर, वह काशी से बम्बई जाता है। वहां उसकी दृष्टि, फिल्म स्टूडियो की महकती-चहकती स्त्रियों पर पड़ती है। वह रानी को विलास की उबासी समझ कर मिस मरियम रोज़ की ओर आकृष्ट होता है और उसी के यौवन-जाल में उलझ कर अपना अमूल्य जीवन नष्ट करता है। मिस रोज आत्म-विनाशी, कला-विनाशी और राष्ट्र-विनाशी वातावरण में अन्त तक भटकती रहती है। वह लोभ, दुराचार और यौवन के नशे में घृणित अन्त को प्राप्त होती है। महामाया और लीलाधर के जीवन-वृत्त भी नैतिक पतन और कुत्सित जीवन को ही प्रकाशित करते हैं। कत्थक लीलाधर के पुत्र राजू के माध्यम से तो, स्वजातीय रति सम्बन्धी दुराचार तक का उद्घाटन हुआ है।

'फागुन के दिन चार' मुख्यतः संस्मरणात्मक शैली का उपन्यास है। इसमें वर्णनात्मक और वार्तालापात्मक पद्धतियों का प्रयोग भी यथास्थान हुआ है। उपन्यासकार काशी और बम्बई, इन दोनों नगरों में वर्षों रहा है, उसने इन नगरों के ठौर-कुठौरों को सूक्ष्मता से देखा है। वह कल्पना-शक्ति के आश्रय से, उन सभी अनुभवों और संस्मरणों को कथानक का रूप देता है, जो उसने अपने यायावरी जीवन में प्राप्त किए। उनका लक्ष्य नैतिक पतन को पाठकों के सामने रखना है। वह काशी के नामधारी कलाकारों, बम्बई के दुराचारी अभिनेताओं-अभिनेत्रियों, फिल्म-निर्माताओं और निदेशकों की पतित गाथा को बड़ी निर्भीकता से अभिव्यंजित करता है। उसका यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनी सीमा को लांघ कर प्रकृतवाद और आलोचनात्मक यथार्थवाद के कुछ तत्वों को ग्रहण करता है। उसी से अश्लीलता का दोष उभरता है और इस उपन्यास की साहित्यिक गरिमा को आघात पहुंचाता है।

संक्षेप में, उग्र का कथासाहित्य देश और समाज की विभिन्न समस्याओं को वर्ण्य-विषय बनाता है। उसमें सामाजिक, राष्ट्रीय, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन के स्वस्थ-अस्वस्थ रूपों का विवेचन और विश्लेषण मिलता है। 'उग्र' की रचनाएं पाठकों को सभी प्रकार की असंगतियों, कुप्रथाओं और अनीतियों के विरुद्ध जगाती और भड़काती हैं। उनकी कहानियां उनके उपन्यासों की अपेक्षा विषयगत और कलागत प्रौढ़ता से अधिक सम्पन्न हैं। उनमें तथाकथित अश्लीलता भी कम मिलती है। वे बहुमुखी प्रतिभा की परिचायक हैं। उनके उपन्यास सामाजिक कुरूपता को ही मुख्य रूप से प्रकाशित करते हैं। उनमें संयत भाषा और नैतिकता का प्रायः अनादर हुआ है। किन्तु 'उग्र-शैली' का प्रयोग उनकी सभी रचनाओं में मिलता है। उनकी कहानियों में 'उसकी मां', 'मां कैसे मरी', 'ऐसी होली खेलो, लाल', 'देशभक्त', 'गंगदत्त और गांगी', 'सोसायटी आफ डेविल्स', 'जल्लाद', 'सनकी अमीर', 'अभागा किसान', 'कला का पुरस्कार' आदि और उपन्यासों में 'चन्द हसीनों के खुतूत', 'बुधुआ की बेटी', (मनुष्यानन्द), 'जीजीजी', 'फागुन के दिन चार', आदि स्थायी महत्त्व के अधिकारी हैं। ये कृतियां हिन्दी-कथासाहित्य के विकास को एक नया मोड़ देती हैं, अपने समकालीन और परवर्ती कथासाहित्य को प्रभावित करती हैं। इनका प्रमुख दोष कहीं-कहीं विषयगत तथा शैलीगत नैतिकता का उल्लंघन है, जिसके कारण ये उचित सम्मान से वंचित रही हैं और इनके निर्माता को उपेक्षित तथा यायावरी जीवन व्यतीत करना पड़ा।

समष्टि चेतना

समष्टि चेतना के विविध रूप

उग्र हिन्दी के यथार्थवादी सामाजिक कथाकार हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में अतीत के गौरव, भविष्य के उज्ज्वल स्वप्न एवं वर्तमान के उच्च स्तर के समाज को विषय बनाने की अपेक्षा वर्तमान युग की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक बुराइयों, दुष्प्रवृत्तियों तथा दोषों का ही मुख्यरूप से यथार्थ रूप में चित्रण करना उचित समझा है। उन्होंने समाज एवं देश के बिगड़े स्वास्थ्य को सुधारने के लिए उसके घृण्य, कदाचार से पूर्ण तथा पाखंडी रूप को पाठकों, समाज-सुधारकों तथा राष्ट्र-निर्माताओं के सम्मुख रखने में अपनी कला की सार्थकता समझी है। ये अपने कथा-साहित्य में समष्टि चेतना के विविध रूपों में सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक विषयों की वस्तुस्थिति का उद्घाटन तथा आवश्यकतानुसार उसकी आलोचना भी करते हैं। सभी रूपों की समस्याओं का यदि पृथक्-पृथक् विवेचन करें तो वह इस प्रकार से होगा—

(क) सामाजिक समस्याएं और उग्र का कथा-साहित्य

आलोच्य कथा-साहित्य में समाज की अनेक समस्याओं को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया है। उग्र अपनी औपन्यासिक कृतियों के प्रतिपाद्य विषय तथा लक्ष्य पर स्वयं प्रकाश डालते हुए लिखते हैं—'कढ़ी में कोयला' में जैसे एक या एकाधिक भारतीय समाज के बिगड़े स्वास्थ्य पर नीरोग प्रकाश डालने की कोशिश मैंने की है, वैसी ही कोशिश मैं एक जमाने से करता आ रहा हूं। मेरे सभी उपन्यास, उपन्यास कहीं कम और सामाजिक रोगों के

एक्स-रे फोटो कहीं ज्यादा हैं। 'चन्द हसीनों के खुतूत' में हिन्दू-मुस्लिम समस्या है, 'मनुष्यानन्द' (बुधुआ की बेटी) में अछूत समस्या है, 'दिल्ली का दलाल' में भगाई हुई युवतियों की समस्या है, 'शराबी' उपन्यास का विषय उसके नाम से ही विदित है।"[१] कथाकार के इन शब्दों से स्पष्ट है कि वह समाज की विभिन्न समस्याओं को प्रत्यक्ष रूप से चित्रित करता है और उसका प्रधान उद्देश्य समस्याओं का उद्घाटन ही है, समाधान नहीं। पाठकों, समाज तथा देश के कर्णधारों को सोचने-विचारने की सामग्री देने में उसे सन्तोष-सा अनुभव हुआ है। उसके कथा-साहित्य में मुख्यतः निम्नलिखित सामाजिक समस्याओं का वर्णन या विश्लेषण हुआ है—

१. अछूत समस्या

उन्नीसवीं शताब्दी में अनेक सामाजिक आंदोलनों का सूत्रपात हुआ, उनमें अछूतोद्धार आन्दोलन का अपना महत्व है। इस क्षेत्र में हिन्दी के कुछ कथाकारों का कार्य तत्कालीन समाजसुधारकों एवं राजनैतिक नेताओं से भी अधिक महत्वपूर्ण है। यह उनकी जागरूकता का द्योतक है। इस समस्या पर विचार करने वाले लेखकों में मुंशी प्रेमचन्द, बेचन शर्मा 'उग्र' आदि का नाम उल्लेखनीय है। 'उग्र' कृत 'बुधुआ की बेटी' (मनुष्यानन्द) उपन्यास तथा 'समाज के चरण' आदि कहानियों में इसी समस्या पर मुख्यरूप से विचार हुआ है।

'मनुष्यानन्द' में औघड़ बाबा तथा बुधुआ भंगी के नेतृत्व में अछूतोद्धार आन्दोलन चलाया जाता है। कथाकार अपने पात्रों के माध्यम से उच्च वर्ण के उन लोगों की बड़ी निन्दा करता है, जो अछूतों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं—"नाश हो ऐसे देहाती या शहराती पापी ऊंचों का ! जो हम से नीच-से-नीच काम कराकर भी हमें आदमी की तरह खाने-पहनने नहीं देते। ऐसों ही के होश ठिकाने लाने के लिए तो बाबा अघोड़ी, शहर के कुछ भले आदमी और हम उद्योग कर रहे हैं।"[२] उच्च वर्ण के लोगों ने अछूतों के सम्मान,

---

१. 'कढ़ी में कोयला', भूमिका

२. 'मनुष्यानन्द', पृ० १४२

आचार-विचार तथा भोलेपन से खिलवाड़ करने में जिस बौद्धिक चातुर्य का परिचय दिया, उसकी भर्त्सना करना भी कथाकार आवश्यक समझता है। उसने घनश्याम जैसे लम्पट, दुराचारी के माध्यम से यह कटु यथार्थ पाठकों के सामने रखा है। घनश्याम बुधुआ की भोली-भाली नवयुवती बेटी रधिया की जवानी को धोखे, छलकपट तथा प्रलोभनों से लूटता है। उसे प्रेम-जाल में फंसाकर, वेश्या बनाता है और उसके सावधान होने पर, उसके साथ दुर्व्यवहार करता है। समाज को चाहिए कि वह ऐसे व्यभिचारियों का बहिष्कार करे और रधिया जैसी अबोध बालिकाओं को नष्ट-भ्रष्ट होने से बचाए।

'उग्र' अछूतों को मन्दिरों में प्रवेश करने से रोकने वाले पंडे-पुरोहितों की भी कड़ी आलोचना करते हैं। वे अघोड़ी बाबा के नेतृत्व में अछूतों के जुलूस को विश्वनाथ के दर्शन कराने भेजते हैं। वे हिंसात्मक संघर्ष करने को तत्पर पंडे-पुरोहितों की पराजय तथा अछूतों की विजय दिखाते हैं। इस सम्बन्ध में अघोड़ी बाबा जैसे अलौकिक चरित्र का सहारा लेना यद्यपि कुछ अस्वाभाविक-सा है, परन्तु उससे इस तथ्य को कोई आघात नहीं पहुंचता है कि वे अछूतों को मन्दिरों में बेरोक-टोक जाने का अधिकार दिलाना चाहते हैं। अपनी इसी मान्यता को वे 'समाज चरण' कहानी में भी व्यक्त करते हैं। उसमें भी अलौकिक शक्ति द्वारा मन्दिर का फाटक खुलता है और मन्दिर का पुजारी बड़े व्यग्र भाव से अछूत ज्ञानू को प्रणाम करता है। उसे स्वप्न में भगवान् शंकर आदेश देते हैं—"जा! फाटक पर हमारा भक्त खड़ा है। उसे तुम लोग अछूत कहते हो। पर वह अनेक ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों से पवित्र और शुद्ध है। उसे मन्दिर में आने दो, नहीं तो तुम्हारा सर्वनाश हो जाएगा। संसार में कोई भी अछूत नहीं है। धर्म पर किसी का भी राज्य नहीं है।"[१]

अछूत-समस्या के आर्थिक आधार को भी आलोच्य कथाकार ने सम्मुख रखा है। उसके अघोड़ी बाबा अछूतों का वेतन बढ़ाने के लिए, ट्रेड यूनियन पेशेवर संस्थाओं का संगठन करते हैं। उनके विचार से आज के संसार में

१. 'पोली इमारत', 'समाज के चरण', पृ० १४२

सबसे बड़ी समस्या धन की है और उसे सुलझाने के लिए अछूत वर्ग की एकता अनिवार्य है, जिससे उच्च वर्ण वाले यह जान सकें कि उनका भी अस्तित्व है और आवश्यक अस्तित्व है।

२. भगाई हुई युवतियों की समस्या

संसार के सम्मुख ब्रह्मचर्य, सतीत्व, नैतिकता आदि के उच्च-आदर्श प्रस्तुत करने वाले भारत में भी कुत्सित प्रवृत्ति के लोगों की कमी नहीं, जो भोली-भाली नारियों को कई प्रकार से फंसाते हैं, उनका अवैध व्यापर करते हैं। उनके अड्डे समस्त देश में विद्यमान हैं। वे काशी, मथुरा, पुरी आदि तीर्थों से हिन्दू नारियों को बहका-फुसलाकर लाते हैं और उनका सतीत्व भंग करते और कराते हैं। 'उग्र' इस अनैतिक व्यापार को 'दिल्ली का दलाल' 'जुहू' आदि उपन्यासों में और 'करुण कहानी' आदि कहानियों में दिखाते हैं। 'दिल्ली का दलाल' में अब्दुल्ला और सन्तू जैसे दुष्ट यही नारकीय व्यापार करते हैं। वे नर-पिशाच देश के विभिन्न प्रान्तों से कई जातियों की नवयुवतियों को अपने छल-कपट तथा कुटनियों के सहयोग से फंसाते हैं और उनका सतीत्व नष्ट करते और कराते हैं। नगरों के घृणित कीड़े अर्थात् व्यभिचारी व्यक्ति उन्हें चांदी के कुछ टुकड़े देकर अपनी पाशविक वृत्तियों को सन्तुष्ट करते हैं। रूप और यौवन के ये जानमार व्यापारी 'पाप' नाम की वस्तु को स्वीकार ही नहीं करते हैं। इन दुष्टों की सताई हुई अभागिनी युवतियां क्रोध या दु:ख के आवेश में आकर अभिशाप देती हैं, जो निष्फल निकलते हैं। ये नराधम उनकी विवशता तथा दयनीय स्थिति पर ठठाकर हंसते हैं, इनके कठोर हृदय में न क्षमा है और न दया। इनकी आत्मा जैसे मर चुकी है और ये प्रेम, शील-संकोच आदि से रहित हैं। इनमें मनुष्यता नाम की कोई वस्तु नहीं है, ये धन के गुलाम हैं और उसी के वशीभूत होकर ये भले घरों की बहू-बेटियों को घर से बेघर करते हैं। उन्हें वेश्या बनाना इनका धन्धा है, दिल्लगी है। उनके लोक और परलोक को बिगाड़ने में इन्हें न तो संकोच है और न आत्मग्लानि।

नारियों के अवैध व्यापार को जीवन का लक्ष्य बनाने वाला अब्दुल्ला प्राय: एक नगर से दूसरे नगर में घूमता है। वह दिल्ली की युवती को

कानपुर, लखनऊ की विधवा को लाहौर और बनारस की कोमल कली को कलकत्ते में खपाता है। कलकत्ता, काशी, प्रयाग, मथुरा, गया, अयोध्या, नैनीताल और अल्मोड़ा आदि में उसके व्यापार के बड़े-बड़े केन्द्र हैं। इन नगरों में, पहले ही से उसके पाखण्डी पीर और फकीर-मित्र किसी-न-किसी मारवाड़िन, बंगालिन या उड़िया युवती को फंसाये रहते हैं और उससे भेंट होते ही साग-पात के भाव उसके हाथों बेच देते हैं। उसका एक-एक पीर फ़कीर मित्र कम-से-कम बीस-बीस नारियों की जवानी या सतीत्व का जानकार जानवर है।[1] अब्दुल्ला उनसे नारियों का क्रय करके दुगने-तिगुने भाव पर सन्तू जैसे नर-पिशाच को बेचता है। सन्तू उन नारियों से एक गुप्त वेश्यालय चलाता है, जहां सहस्रों व्यभिचारी धनिक, पुलिस कर्मचारी, छात्र और भटके हुए नवयुवक छिप-लुककर जाते हैं और अपनी पाशविक भूख मिटाते हैं। इन सभी के ये कुकर्म समाज, मनुष्यता और जाति को कलंकित करने, उनके मुंह पर कालिख पोतने के अतिरिक्त और क्या है ?

'जुहू' उपन्यास में मुफतलाल यही धन्धा करता है। वह युवतियों को अपने जाल में फंसाकर, सेठ रामजी भोलानाथ को बेचता है। 'करुण कहानी' के कुछ 'बदमाश व्यक्ति' भी यही कार्य करते हैं, वे कुलीन लीला को भगाने का असफल प्रयास करते हैं। शिवशंकर के मेले में, लीला अपने परिवार वालों को खो बैठती है। उसे अकेली देखकर तथाकथित दानव उसे भगाने के उद्देश्य से उसका मुंह बन्द करते हैं, उसे पैरों तथा कमर से पकड़कर एक बगीचे में ले जाने का उद्योग करते हैं। इसी बीच केशवदेव नामक युवक उन दुष्टों से अबला लीला का उद्धार करता है।

आलोच्य समस्या के समाधान स्वरूप ही बूढ़े रामराज, नवयुवक नन्दन आदि को इस कार्य में प्रयत्नशील दिखाया गया है। वे पुलिस अधिकारियों एवं कर्मचारियों को अब्दुल्ला, सन्तू प्रभृति राक्षसों के गुप्त अड्डों, उनके नारकीय कुचक्रों आदि का सम्यक् ज्ञान कराते हैं। पुलिस अधिकारी उनके निर्देशानुसार उन नर-पिशाचों को पकड़ने में सफल भी होते हैं और सेशन कोर्ट द्वारा उन्हें आजन्म काले पानी का दण्ड मिलता है। उनके सहयोगी-

---

१. 'दिल्ली का दलाल', पृ० ७१

पापियों को कठोर कारावास दण्ड दिया जाता है। कथाकार इसी से सन्तुष्ट नहीं, वह समस्या के दूसरे पहलू को भी उठाता है और भगाई हुई अभागिनियों को आर्यसमाज जैसी संस्थाओं को सौंपता है। वह सच्चे समाज सुधारकों पर उनके बसाने का उत्तरदायित्व डालता है। यथा-पण्डित भूदेव शर्मा अपने पोषित पुत्र नन्दन का विवाह नैना से करने का प्रस्ताव रखते हैं और नन्दन उसे अपनी जीवन संगिनी बनाने को तत्पर भी हो जाता है। इसी प्रकार अनेक त्यागी तथा उत्साही समझदार युवक उन अभागिनियों को पत्नी-रूप में ग्रहण करने का उत्साह दिखाते हैं। मुन्नी जैसी युवतियां, जो विवाह नहीं करना चाहती हैं, उन्हें रामराज जैसे वृद्ध अपनी बेटियों के रूप में रखने का उच्च मानवीय आदर्श उपस्थित करते हैं।

३. विवाह-समस्या

भारतीय समाज में विवाह-प्रथा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। समय के साथ-साथ उसमें कई प्रकार के विकार भी आते रहे हैं। उससे अनमेल-विवाह, दहेज-प्रथा आदि के रूप में वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन को सुखी बनाने के स्थान पर नारकीय भी बनाया है, जिससे पीड़ित नर-नारियों को इस प्रथा से ही घृणा हो जाती है और वे इसे छिन्न-भिन्न कर देना चाहते हैं। ऐसे नर-नारी प्राय: विवाह-प्रथा में अनास्था और स्वच्छन्द भोग में विश्वास प्रकट करते हैं। वे कभी लुक-छिपकर और कभी स्पष्ट रूप से विवाह के अवगुणों और स्वच्छन्द जीवन के गुणों का बखान करते हैं, अपने मत की पुष्टि में वे नाना तर्क भी देते हैं।

उग्र के कथा-साहित्य में विवाह-प्रथा के प्रति अनास्था तो व्यक्त नहीं हुई है, परन्तु उसके विकृत रूप विशेषकर अनमेल-विवाह के दुष्परिणामों पर विस्तारपूर्वक विचार अवश्य हुआ है। कथाकार ने अभिभावकों द्वारा किए विवाहों को प्राय: असफल घोषित किया है और विवाह में युवकों तथा युवतियों की इच्छा तथा प्रेम-भावना को प्रश्रय दिया है। 'चन्द हसीनों के खुतूत', 'शराबी', 'जीजीजी' आदि उपन्यासों और 'करुण कहानी', 'आंखों में आंसू', 'हत्यारा समाज' आदि कहानियों में कथाकार विवाह-समस्या के विविध रूपों को प्रकाश में लाता है। 'चन्द हसीनों के खुतूत' में युवतियों

की इच्छानुसार अन्तर्जातीय-विवाह-समस्या को उठाया गया है। मुरारी-कृष्ण हिन्दू है और नर्गिस मुसलमान है। दोनों एक-दूसरे को प्राणों से भी अधिक प्यार करते है। किन्तु समाज उनके मार्ग में बाधक है, उनके माता-पिता इस विवाह का विरोध करते हैं। नर्गिस के भैया अपनी बहन को विष तक देने की धमकी देते हैं और मुरारीकृष्ण के पिता, इस अपराध के लिए अपने पुत्र को घर से बाहर निकालने में भी गर्व अनुभव करते हैं। इतना ही नहीं, मुरारीकृष्ण और नर्गिस के अन्तर्जातीय-विवाह-समस्या से साम्प्रदायिक तत्वों को भी बल मिलता है और कट्टर मुसलमान मुरारीकृष्ण की हत्या कर देते हैं। कथाकार उनकी भर्त्सना करता है और नायिका नर्गिस को अपने संकल्प पर अडिग रखता है, वह मुरारीकृष्ण की हत्या के उपरान्त भी, उसी को अपना पति मानती है और हिन्दू धर्म ग्रहण कर लेती है। कुछ विद्वानों ने कथाकार के इस दृष्टिकोण का विरोध भी किया है। डॉ० चण्डीप्रसाद जोशी के अनुसार—'उग्र जी अन्तर्जातीय-विवाह के लिए उतने उत्सुक नहीं बल्कि एक मुसलमान लड़की को हिन्दू धर्म में दीक्षित करना ही उनका मुख्य उद्देश्य है।'[१] माखनलाल चतुर्वेदी की धारणा भी इसी प्रकार की है और वे नर्गिस के हिन्दू बनाने को लालित्यविहीन मानते हैं—"एक बात खटकी। तुम्हारी··· का शुद्ध हो जाना कुछ थोड़ा लालित्य-विहीन हो गया है। कला तो, कला मात्र है, वह प्रचारिका नहीं और न परिचारिका ही।"[२] वस्तुतः कथाकार अपने युग की संकीर्ण तथा साम्प्रदा-यिक परिस्थितियों से बहुत कुछ प्रभावित है। वह एक ओर उदार मानवीय दृष्टिकोण के अनुसार अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन करता है और दूसरी ओर अपने हिन्दू संस्कारों, इस्लाम धर्म की कट्टरता, युवकों तथा युवतियों की विवशता को दिखाये बिना नहीं रह सका है। उस युग में अन्तर्जातीय विवाह का यही रूप दिखाना ही अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है।

'शराबी', 'जीजीजी', 'मनुष्यानन्द' आदि उपन्यासों तथा 'करुण कहानी', 'हत्यारा समाज', 'मलंग' आदि कहानियों में कथाकार अनमेल-

---

१. 'हिन्दी उपन्यास : समाज शास्त्रीय विवेचन', पृ० १६५

२. 'फ़ाइल और प्रोफ़ाइल', पृ० २३०

विवाह के दोषों तथा दुष्परिणामों पर प्रकाश डालता है। 'शराबी' की हीरा मानिक से प्रेम करती है, परन्तु उसका विवाह, उसके अभिभावकों द्वारा एक पशुवृत्ति के पुरुष के साथ किया जाता है, जो इतना ही जानता है कि विवाह के उपरान्त अपने घर में आई हुई पराई लड़की, जाल में फंसा हुआ शिकार है, मुट्ठी में आया हुआ शत्रु है। अपनी शर्तों पर उसे अपनाओ, अपनी झकों पर उसे नचाओ।[1] ऐसे जंगली नर-पिशाच से बंधकर ही हीरा का प्रेमी-हृदय जल कर राख हो जाता है। दूसरी ओर मानिक जो हीरा के लिए सर्वथा उपयुक्त था, प्रेम में असफल होने के बाद शराबी एवं वेश्यागामी बनता है। अनमेल-विवाह के कारण ही दोनों के सुखी जीवन में आग लगती है।

'जीजीजी' की नायिका प्रभा शिक्षित है, उसने अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत आदि की पुस्तकों का गहन अध्ययन कर रखा है। किन्तु उसमें इतना साहस नहीं है कि अपने अभिभावकों को रोक सके कि उसका विवाह लम्पट, कामी तथा क्रूर दीनानाथ से न कर, किसी सहृदय, सच्चरित्र युवक से करे। उसकी धारणानुसार स्त्री तो पुरुष द्वारा समाप्त होने के लिए बनी है—चाहे दो दिन में गुण्डे उसे खा जाएं या दो वर्ष में पति समाप्त कर दे। मरने के अतिरिक्त, नारियों के लिए अन्य कोई उपाय नहीं। उनकी स्थिति कसाई-खाने की बकरियों की सी है।[2] अपनी इसी धारणा के अनुसार वह अपने अनमेल-विवाह के लिए विरोध नहीं करती और जीवन पर्यन्त कामुक पति के अत्याचार सहती रहती है। किन्तु प्रभा के माध्यम से अभिव्यक्त कथाकार का नारी विषयक यह दृष्टिकोण बहुत कुछ रूढ़िवादी है, जिसे आज की सजग नारी स्वीकार करने में असमर्थ है। यह दृष्टिकोण न तो न्यायसंगत है और न स्वस्थ, इसे खोखली भावुकता या काल्पनिक आदर्श ही माना जाएगा।

'करुण कहानी' में सुन्दरा लीला का विवाह एक वेश्यागामी वैश्य नवयुवक गणेश से होता है। वह अपनी पत्नी की उपेक्षा कर, हृदय के शैतान

---

१. 'शराबी', पृ० ६४
२. 'जीजीजी', पृ० ४४-४५

को सन्तुष्ट करने की लालसा से, वासना-यज्ञ में धर्म, मान, हृदय और मनुष्यता की आहुति देता है। लीला अन्दर ही अन्दर जलती है, अपने भाग्य को कोसती है। उसका प्यासा हृदय, सहृदय केशव की ओर आकृष्ट होता है। गणेश स्वयं व्यभिचारी होने पर भी, अपनी पत्नी से 'सती' या 'देवी' बनी रहने की आशा करता है और उसमें शिथिलता का आभास-मात्र पाकर उसकी हत्या कर देता है। इसी प्रकार 'आंखों में आंसू' में भी अनमेल-विवाह का कुपरिणाम अभिव्यंजित हुआ है। इसमें षोडशी सुरूपा का विवाह अल्पवयस्क जगदीश से होता है। सुरूपा यौवन के उन्माद में, अपने पति से असन्तुष्ट रहने के कारण युवक अब्दुल हमीद की ओर आकृष्ट होती है और भोगलिप्सा से प्रेरित होकर, उसी को अपना सर्वस्व सौंप देती है। वह जान-बूझकर, अपने ही हाथों से आंख और कान बन्दकर, अपने-आपको—स्वर्ग पाने की अभिलाषा से - नरक में धकेल देती है।[1]

'हत्यारा समाज' में अनमेल-विवाह की समस्या उभयपक्षी है। इसमें युवक एवं युवती दोनों अनमेल-विवाह के दुष्परिणाम के भागीदार हैं। रघुनन्दन, आनन्दस्वरूप की कन्या प्रभा को हृदय सौंपता है, किन्तु उसका विवाह उसके लोभी पिता, दहेज के प्रलोभन से, किसी दूसरी लड़की से करते हैं। वह लड़की सामाजिक विवाह से पूर्व ही अपने सुन्दर, हंसमुख तथा भावुक बहनोई के चरणों में अपना सर्वस्व अर्पण कर बैठती है और अपने माता-पिता के सम्मुख रोकर, बिलखकर, अपना दुखड़ा सुनाती है। अपने सच्चे पति-बहनोई से विवाह करने की इच्छा प्रकट करती है। उसके माता-पिता समाज के डर से, मिथ्या मर्यादा की रक्षा के लिए, उसे रघुनन्दन के गले मढ़ देते हैं। इस प्रकार उन दोनों की सौभाग्य रात्रि, काल-रात्रि बनती है और वे अपने-अपने असफल प्रेम की चोट से सन्तुलन खो बैठते हैं। उन्हें आत्म शान्ति के लिए विष-पान का मार्ग आकृष्ट करता है और वे अपने ही हाथों अमूल्य जीवन का अन्त कर देते हैं। वे अपनी हत्या का उत्तरदायित्व पाषाण-हृदय समाज पर डालते हैं, वही उन्हें अपने मनचाहे प्रेम-पात्रों से मिलने नहीं देता।

---

१. 'पोली इमारत', 'आंखों में आंसू', पृ० ५०

विवाह-समस्या के उपर्युक्त रूपों से कुछ भिन्न प्रकार का एक और रूप हमें 'मनुष्यानन्द' तथा 'मलंग' में मिलता है। 'मनुष्यानन्द' के कृपाराम प्रतिष्ठित विद्वान् और कुलीन होने पर भी, भयानक कुरूप हैं, उनकी सुन्दरी पत्नी हृदय से उनसे घृणा करती है। परन्तु, वे उसके रूप-यौवन पर अन्धे हैं। उनकी प्राणप्रिया, उन्हीं के एक रूपवान् नवयुवक विद्यार्थी से प्रेम करने लगती है और एक दिन कृपाराम यह सभी कुछ अपनी आंखों से देखते हैं। पहले वे क्रुद्ध होते हैं और उसके उपरान्त गुरु-तियगामी शिष्य को अपनी सुन्दरी सौंप देते हैं। इतना ही नहीं, वे उन्हें सहस्रों के आभूषण और ५००० रु० नकद भी देते हैं, जिससे वे जीवन की नौका भली प्रकार से चला सकें। 'मलंग' में भी लगभग इसी प्रकार का अनमेल विवाह और उसका आदर्शवादी समाधान मिलता है। इस कहानी के 'चाचाजी' का विवाह भी अनमेल होने से असफल रहता है, वे स्वभाव से परोपकारी हैं, रोगियों की सेवा-सुश्रूषा रात-रात भर जागकर करते हैं। उनकी रूपवती पत्नी अपने रोगी-पसन्द कुरूप पति से असन्तुष्ट है, वह भोगी-पसन्द है। इसी से वह नईम खां की ओर आकृष्ट होती है। साधु-स्वभावी 'चाचाजी' उसे दण्ड देने या दिलाने के स्थान पर, अपना बंगला, ५०००रु० नकद और सुखद भविष्य की मंगल कामना प्रदान करते हैं।

इस प्रकार आलोच्य कथाकार विवाह-प्रथा का तो समर्थक है, किन्तु उसके विकृत रूपों का विरोधी है। उसने उस समाज-व्यवस्था को अधिक कोसा तथा व्यंग्य-प्रहारों से घायल किया है, जिसमें विवाह का अधिकार केवल अभिभावकों को प्राप्त है। वह पुरातन युग से चली आई सामाजिक कुप्रथाओं की आवृत्ति को विवाह नहीं मानता है। उसके विचार से सच्चे विवाह का एकमात्र आधार नर-नारी का पावन प्रेम है, वह धर्म, कानून, समाज तथा अन्य बन्धनों से बलवान है। उसके वासनात्मक रूप को एक सीमा तक ही मान्यता दी जा सकती है। सच्चे प्रेम में स्वार्थ, वासना तथा लोभ की अपेक्षा त्याग एवं आत्म समर्पण के तत्व प्रधान होते हैं। उसी पर अवलम्बित विवाह व्यक्ति एवं समाज के लिए वरदान सिद्ध हो सकते हैं।

मद्यपान-समस्या

'उग्र' के कथासाहित्य के अनेक पात्र मदिरापान करते हैं और वे स्वयं भी इसके अपवाद न थे। परन्तु उन्होंने इसे सनक ही माना है, जिससे मनुष्य कर्तव्य-च्युत होता है, अपना और दूसरों का नाश करता है। 'शराबी' उपन्यास के माध्यम से वे मद्यपान-समस्या के यथार्थ रूप पर प्रकाश डालते हैं। इस उपन्यास का नायक मानिक और उसका पिता पन्नालाल, नायिका जवाहर का पिता पारसनाथ आदि पात्र शराबी हैं। पारसनाथ को यह सनक पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त होती है। उसके पिता के विचारानुसार क्षत्रिय के लिए मदिरा और मांस बुरी वस्तुएं नहीं हैं। त्यौहारों के अवसर पर वे स्वयं पारसनाथ को छूट देते हैं। पिता की इस धारणा से पुत्र को मदिरापान का अवसर कभी-कभी मिल ही जाता और आगे-पीछे वह स्वयं मार्ग निकालता है। पिता की खुली बोतलों से मदिरा निकालकर इच्छानुसार पीकर, उनमें उतना ही पानी मिला देता है। धीरे-धीरे उसकी यह सनक बढ़ती जाती है और पत्नी के देहान्त के उपरान्त वह पूर्णतः पियक्कड़ बन जाता है। शराब की इस सनक से पारसनाथ अपनी सम्पत्ति, खेती-बाड़ी-जमींदारी, मकान और इकलौती बेटी खो बैठता है। मदिरा-राक्षसी उसकी बुद्धि को नष्ट करती है, वह अपना भला बुरा सोचने में असमर्थ हो जाता है। उसमें संयम का अभाव और विनाशकारी भावुकता का प्राधान्य हो जाता है। उसका जीवन चोर-कुत्ते-सा बनता है, जो लात और डण्डे खाता है, किन्तु अवसर पाते ही पुनः उसी धन्धे में लग जाता है।

'शराबी' का पन्नालाल भी आयु-भर शराबी-सा रहता है। प्रातः उठते ही उसके मुंह से प्रथम शब्द 'शराब' ही निकलता है। वह प्रतिदिन नौकर से डेढ़-दो 'पेग' मदिरा, एक बोतल सोडा मंगाकर गट-गट, एक सांस में पेट में उंडेल लेता है। उसके हितचिन्तिक उसे इस कुटेव को छोड़ने की सम्मति देते हैं, जिसे वह नशे की झोंक में उपेक्षा की दृष्टि से देखता है। यह सनक उसके प्राण लेकर ही सन्तुष्ट होती है। वह पहले पक्षाघात का रोगी बनता है, डॉ० उसे मदिरापान से रोकते हैं, किन्तु वह उनकी सद्सम्मति को अनसुनी कर उसी के अधीन रहता है। फलतः वह उसके लिए विष के

घूंट बनती है, उसका दाहिना गाल, हाथ, पांव आदि सुन्न हो जाते हैं और उसकी देह गल जाती है, मुख निस्तेज और भयप्रद बनता है। मदिरा ही से उसके पुरुषार्थी जीवन की इति होती है। मानिक कुसंगति से शराबी बनता है, हीरा के प्रेम की असफलता भी उसे इस सनक की ओर बढ़ावा देती है। आरम्भ में उसके मित्र, फलों के शर्बत के रूप में, मदिरा पिलाते हैं और उसके उपरान्त वह स्वयं इस ओर बढ़ता चला जाता है। अन्त में वह जवाहर का प्रेम पाकर, उसी के चरणों को छूकर, सदैव के लिए शराब न पीने का प्रण करता है।

'उग्र' मद्यपान-समस्या की भयंकरता ही विस्तार पूर्वक दिखाते हैं, उसका कोई निश्चित समाधान प्रस्तुत नहीं करते हैं। फिर भी, वे शराबी पात्रों की दुर्दशा दिखाकर, उन्हीं के कटु अनुभव से उन्हें इस सनक से विरत कराते हैं। उनके पात्र मदिरापान के दुष्परिणामों का स्पष्ट उद्घाटन करते हैं। वे इस कटु सत्य को स्वीकार करते हैं कि शराब शरीर से लेकर आत्मा तक का नाश करने वाली डायन है। उसे छुड़ाने की शक्ति नारी-प्रेम में ही विद्यमान है।

वेश्या-समस्या

भारतीय समाज में एक ओर युगों से नारी के लिए सतीत्व और पातिव्रत धर्म सर्वोच्च रहे हैं और दूसरी ओर वेश्या-व्यापार भी युगों से अबाध गति से चला आ रहा है। इन दो विरोधी रूपों के मूल में आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक कारण कहे जा सकते हैं। हिन्दी कथा साहित्य में वश्या-समस्या पर पर्याप्त विचार हुआ है। कई कथाकारों ने वेश्याओं के प्रति सहानुभूतिमय दृष्टिकोण अपनाते हुए उनके उद्धार की योजनाएं भी प्रस्तुत की हैं। 'उग्र' के कथा-साहित्य में सामाजिक जीवन की विभिन्न असंगतियों के साथ वेश्या जीवन को भी यथार्थ रूप में अंकित किया गया है। 'शराबी' उपन्यास में तो वे उनके उद्धार के लिए भी प्रयत्नशील दिखायी देते हैं।

आलोच्य कथाकार के प्रायः सभी उपन्याओं और अनेक कहानियों में वेश्यापात्र मिलते हैं। उन्हें वेश्या-जीवन की ओर लाने वाले नर-पिशाच

मनुष्य भी हैं और सामाजिक परिस्थितियां भी। 'दिल्ली का दलाल' में अब्दुल्ला और सन्तू जैसे नराधम, कुलीन घरानों की बहू-बेटियों को बहकाकर, पहले स्वयं उनका सतीत्व नष्ट करते हैं और उसके बाद उन्हें वेश्या बनने के लिए बाध्य करते हैं। 'शराबी' की नायिका जवाहर को वेश्या-जीवन की ओर लाने वाली पारिवारिक और सामाजिक परिस्थितियां हैं। उसका शराबी पिता पारसनाथ, लोगों के उकसाने पर उसके चरित्र पर सन्देह करता है और उसे बहुत बुरी तरह से पीटता है। यही परिस्थितियां उसे घर से भागने के लिए प्रोत्साहित करती हैं और वह चारों ओर से निराश होकर, वेश्या कुन्दन की शरण में आने के लिए बाध्य हो जाती है। कुन्दन खानदानी वेश्या है, वह एक हज़ार से आरम्भ कर दस हज़ार तक अपने सौन्दर्य और यौवन का व्यापार करती है। वह धन के प्रलोभन से लोक और परलोक दोनों बिगाड़ती है।

'विधवा' कहानी की रमा को वेश्यावृत्ति की ओर प्रेरित करने वाली सामाजिक परिस्थितियां हैं। वह बाल-विधवा है, युवावस्था में उसे ब्रह्मचर्य पालन का उपदेश दिया जाता है, संन्यास का मार्ग दिखाया जाता है। त्यौहारों के अवसर पर जब उसकी सखियां चूड़ियां पहनती हैं, चोटी संवारती हैं, शृंगार करती हैं, उस समय उसे लम्बी, ठंडी सांस लेने तथा दो आंसू गिराने के लिए बाध्य किया जाता है। विवाहादि शुभ कर्मों में उसे देखकर समाज घृणा करता है, उसे अभागिनी समझता है। ऐसी परिस्थितियों में उसका मन विद्रोह करता है। वह रह-रहकर यही सोचती है कि जिस सभ्य समाज में उसके लिए प्रेम नहीं, सहानुभूति नहीं, मनुष्यता नहीं, आदर नहीं, कुछ नहीं, वहां रहने से और उस समाज का भय मानने से क्या लाभ ?[१] प्रकृति के पदार्थ उसकी काम-वासना को उत्तेजित करते हैं, सावन के बादल उसे उन्माद प्रदान करते हैं, उससे उसका शरीर रोमांचित हो उठता है, वह घर से भाग जाती है और वेश्या बन जाती है। कथाकार उसके वेश्या-जीवन का मूल कारण सामाजिक क्रूरता को मानता है, वही उसे नरक में धकेलती है और वह नरक में ही सुख, शान्ति तथा स्वर्ग का

---

१. 'पोली इमारत,' 'विधवा', पृ० ११४

अनुभव करने लगती है। उसके इस पतन से, उसके पिता आत्मग्लानि की अग्नि में जलते हैं और श्मशान में जाकर ही उन्हें शान्ति मिलती है। कहानीकार इन सभी दुर्घटनाओं का उत्तरदायित्व रूढ़िवादी, निष्ठुर तथा अन्यायी समाज पर डालता है। वह व्यंग्य-प्रहार करता हुआ कहता है—'समाज की जय हो। वह दीर्घजीवी हो।'[1]

वस्तुत: 'उग्र' वेश्यावृत्ति के विरोधी हैं, वे वेश्याओं को राष्ट्र के मुख पर कालिख कुरंग समझते हैं। उनके विचार से धन दे-लेकर शरीर खरीदना या बेचना नीचता है। उनके वेश्या-पात्र इस घृणित कार्य की निन्दा करते हैं। 'दिल्ली का दलाल' की सीरी, नैना को समझाती हुई कहती है—'मर जाना, ठोकरें खाना, पर वेश्या-वृत्ति कभी मंजूर न करना, किसी की रखैल भूल कर भी न बनना, नहीं तो खून के आंसू बहाओगी। यह मैं तुमसे अपना भयानक कटु-अनुभव बता रही हूं।'[2] इस प्रकार उग्र वेश्याओं के उद्धार के पक्षपाती हैं और नवयुवकों को इस बात की प्रेरणा देते हैं कि वे कुलीन तथा सद्विचारमयी वेश्याओं से विवाह कर, उन्हें पाप-पंक से निकालें। उनके 'शराबी' उपन्यास का नायक मानिक इसी आदर्श की स्थापना करता है, वह जवाहर नामक वेश्या को बाजार से अलग कर, उसे पत्नी रूप में अपनी जीवन-संगिनी बना लेता है।

बच्चों के संरक्षण की समस्या

उचित संरक्षण के अभाव में, बच्चों में अपराधी प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है। हिन्दी कथाकारों ने इस समस्या को तो उठाया है, किन्तु, इसका कोई समाधान प्राय: नहीं दिया है। 'उग्र' अपने 'शराबी' उपन्यास तथा 'दिल्ली की बात' कहानी में इस समस्या पर प्रकाश डालते हैं। शराबी के नायक मानिक और नायिका जवाहर के पथ-भ्रष्ट होने का मूल कारण उचित संरक्षण का अभाव ही था। मानिक पिता के कठोर नियन्त्रण और दुष्चरित्र के कारण, कुमार्ग पर बढ़ता है। उसके पिता गृहस्थ-जीवन में,

---

१. 'यह कंचन-सी काया', 'हत्यारा समाज,' पृ० १०४

२. 'दिल्ली का दलाल', पृ० ५०

उससे विशेष सम्पर्क नहीं रखते हैं, वे उसके आगे दुर्वासा-गोत्र के पिता का रूपक बनाये रहते हैं। वे प्राय: उससे नहीं बोलते हैं और यदि बोलते भी हैं तो अत्यन्त रूखा, स्नेहहीन तथा कठोर रूप में, उससे मानिक का मन विद्रोही-सा बनने लगता है। वह जब दस बर्ष की आयु तक पहुंचता है तो दो वस्तुओं के नाम से ही दहल उठता है—एक भूत और दूसरा अपने पिता से। वह पिता को पिता भक्ति से नहीं वरन् भय से मानता है और उनकी उपस्थिति को शेर की उपस्थिति समझता है। उसके सत्रह वर्ष का हो जाने पर भी उनकी पितृ प्रकृति उसे दूध-पीता बच्चा ही समझती है।[1] इन्हीं परिस्थियों से वह विद्रोही, शराबी तथा वेश्यागामी बनता है।

जवाहर को भी उचित संरक्षण नहीं मिलता है। उसका पिता पारस-नाथ मद्यप है, वह अपनी सारी सम्पति मदिरापान में गंवा देता है। इतना ही नहीं, लोगों द्वारा उकसाये जाने पर वह अपनी निर्दोष पुत्री जवाहर के चरित्र पर सन्देह करता है, उसे पीटता है, जिससे वह घर से भाग जाती है। उसे पथ-भ्रष्ट करने वाला उसके पिता का दुर्व्यवहार ही है, वह वेश्या कुन्दन की शरण लेती है।

'दिल्ली की बात' कहानी में मौला के हिंसक होने का कारण, उसकी मातृ शिक्षाएं हैं। उसकी माता निजी अपमान का बदला लेने के लिए, उसे सम्पूर्ण हिन्दू-जाति के विरुद्ध कर देती है। उसे यही शिक्षा देती है कि, वह जितने ही अधिक हिन्दुओं को मार सकेगा, स्वर्ग का द्वार उसके लिए उतना ही अधिक प्रशस्त होगा। मौला के शब्दों में—'मैं अपनी मां की बातों को कुरान शरीफ़ की आयतों से अधिक पवित्र मानता हूं। उसी मां की आज्ञा से मैं हिन्दू-जाति और हिन्दू-सभ्यता का विरोधी बना हूं। संसार की कोई शक्ति मुझे मेरी मां के प्रतिकूल नहीं ले जा सकती।'[2]

इस प्रकार 'उग्र' भी हिन्दी के अन्य लेखकों के समान बच्चों के उचित संरक्षण के अभाव से उत्पन्न बुराइयों एवं कुप्रवृत्तियों को ही दिखाते हैं, इस समस्या का कोई समाधान नहीं देते हैं। सम्भवत: वे पाठकों, समाज-सुधा-

---

१. 'शराबी', पृ० १००-१०३
२. 'ऐसी होली खेलो, लाल,' 'दिल्ली की बात' पृ० २७

रकों तथा देश के नेताओं को ही यह कार्य सौंपना चाहते हैं, वे ही बच्चों की संरक्षण-व्यवस्था के उपाय सोचें और उन्हें क्रियात्मक रूप दें।

७. जाति-पांति समस्या

भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि जाति-पांति की प्रथा क्षय-रोग अर्थात् अवनति तथा ह्रास का कारण है, जिन लोगों को आज अछूत कहा जाता है, वे तो हिन्दू समाज रूपी शरीर का वह अन्तिम अंग है जहां अछूतपन का कोढ़ नासूर के रूप में फूट कर बह रहा है। जात-पांत में केवल शूद्रों की ही नहीं, स्वयं उच्च वर्णों की भी अपार हानि हुई है। अपनी ही छोटी सी सीमित बिरादरी के भीतर विवाह होने और बाहर से कोई नया रक्त न मिलने से मनुष्य को पूर्ण बनाने वाले सद्गुण अलग-अलग जातियों में पूंजीभूत हो गए हैं।[1]

हिंदी कथासाहित्य में जाति-पांति की समस्या पर प्रेमचन्द, 'उग्र' आदि अनेक लेखकों ने विचार किया है और उन पाखण्डी ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों की कड़ी आलोचना की है जो अपने आचार-विचार से गिर जाने पर भी अपने आपको श्रेष्ठ समझते हैं तथा दूसरों को घटिया बताते हैं। 'उग्र' अपने कथा-साहित्य में जाति-पांति की घोर निन्दा करते हैं और मानवतावादी दृष्टिकोण को प्रश्रय देते हैं, जिसके अनुसार सभी मनुष्य समान हैं, कर्मों से ही ऊंच-नीच के स्तर बनाए जा सकते हैं। 'ब्राह्मण-द्रोही', 'समाज के चरण' आदि कहानियों की मूल संवेदना यही है, इनमें कथाकार मिथ्याभिमानी ब्राह्मणों को आड़े हाथों लेता है। 'ब्राह्मण-द्रोही' में मुंशी बनवारीलाल एवं जीवननाथ के माध्यम से पाखण्डी ब्राह्मणों की कड़ी आलोचना की गई है। मुंशी जी के शब्दों में—'आधुनिक ब्राह्मणों' नामधारी जीवों की असफलता का चित्र यदि आप ध्यान से देखें तो विचलित हो उठेंगे। इस समय ब्राह्मण से बढ़कर हमारे समाज में दूसरी कोई जाति असफल नहीं है, पतित नहीं है, मोहताज नहीं है।[2] जीवननाथ भी मुंशी जी के

---

१. श्री सन्तराम बी० ए०, 'जातिवाद'

२. 'पोली इमारत', 'ब्राह्मण-द्रोही', पृ० १४५

विचारों का समर्थन करता है और मिथ्या व्यवस्था देने वाले धर्म और मनुष्यता से बढ़कर सामाजिक कुप्रथाओं को महत्त्व देने वाले ब्राह्मणों के विरुद्ध आवाज़ उठाता है। वह अपने रूढ़िवादी पिता का घोर विरोध करता है, इसी अभियोग में उसे घर से बेघर भी होना पड़ता है परन्तु वह जाति-भेद की गली-सड़ी कुप्रथा का समर्थन नहीं करता है। 'समाज के चरण' कहानी के स्वामी जी जाति-पांति के दुष्परिणामों पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं—"ब्राह्मणों ने अछूतों, शूद्रों को वेद के महात्म्य से दूर रखा—उसका फल यह मिला कि भगवान् वेद असन्तुष्ट होकर सात समुद्र पार 'जर्मनी' चले गए। अब वहां वाले शराब पीकर और गोमांस खाकर भगवान् वेद की ऋचाओं का पाठ करते हैं। क्षत्रियों ने अछूतों को शस्त्र विद्या दान नहीं की। अब वे ही क्षत्रिय अछूतों से भी गए-गुज़रे म्लेच्छों की जूतियां चाटते हैं, उनके अर्दली 'चमारों' और 'मेहतरों' को सलाम करते हैं···रहे वैश्य सनातन से डरपोक। उनमें जिनके पास रुपये हैं वे सच्चे अछूत बने बैठे हैं। रंडियों के पाद-पंकज की रेणु का नयनांजन बनाते हैं। शराब को गंगाजल समझते हैं और साहबों के जूतों को विष्णु-पादुका। गरीब वैश्य दिन में मूंगफली या प्याज की पकौड़ी बेचते और रात में अपनी ढीली धोती सम्हालते-सम्हालते खुर्राटे लें। कोई इज़्जत है, मर्यादा है, जगत् सेठ का पद है ?"[१] इस प्रकार 'उग्र' जाति-पांति को अभिशाप सिद्ध करते हैं। इसी के कारण भारतीय समाज पतन की चरम सीमा को प्राप्त हुआ है। प्राचीन काल में, इसी देश का वासी जहां ईश्वर समझा जाता था, अब वहां एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को जाति, कुल और स्तर में नीच समझता है। भाई, भाई का हत्यारा बन गया है और मनुष्यता जैसे उसमें मर ही गई है। कथाकार फिर से उच्च मानवीय आदर्श को लाने की अभिलाषा से वर्तमान रुग्णता का आलोचनात्मक यथार्थ चित्र अंकित करता है।

८. विधवा-समस्या

हिन्दू-समाज में, विधवा-प्रथा के द्वारा नारी का जितना अमानुषिक

---

१. 'पोली इमारत', 'समाज के चरण', पृ० १३६

शोषण हुआ है, उतना सम्भवतः किसी अन्य सामाजिक विधान से नहीं हुआ है। इस कुप्रथा ने अनेक सामाजिक दोषों को जन्म दिया। हिन्दी कथा-साहित्य में इस समस्या के अनेक पहलुओं पर प्रेमचन्द, 'उग्र', जैनेन्द्र प्रभृति कथाकारों ने विचार किया है। उग्र अपनी रचनाओं में इस समस्या को कहीं प्रासंगिक समस्या के रूप में और कहीं मूल समस्या के रूप में अंकित करते हैं। 'चन्द हसीनों के खुतूत', 'शराबी', 'फागुन के दिन चार' आदि उपन्यासों में यह समस्या प्रासंगिक रूप में और 'मोकों चूनरी की साध', 'विधवा', सुधारक, 'दिल्ली की बात' जैसी कहानियों में प्रधान रूप में चित्रित हुई है।

'चन्द हसीनों के खुतूत' की मुसलमान युवती नर्गिस, अपनी इच्छानुसार हिन्दू युवक मुरारीकृष्ण से प्रेम-विवाह करती है और साम्प्रदायिक संघर्षों में अपने प्राण-प्रिय को खो बैठती है। वह सबल विधवा है, पति-हत्या का प्रतिशोध लेने के लिए, हिंसा के विरुद्ध संघर्ष करने को तत्पर है, वह इस कार्य के निमित्त कहीं भी जाने को तैयार है और उसमें अपार आत्मबल विद्यमान है। 'शराबी' की हीरा हिन्दू अबला है, जो शराबी, लम्पट तथा वेश्यागामी पति को खोकर, मार्मिक कष्टों से अर्ध-विक्षिप्त-सी हो जाती है। वह भीतरी ताप से सूखकर नारी का कंकाल मात्र रह जाती है। 'फागुन के दिन चार' की महादेवी विधवा होने पर भी सबला बनी रहती है, किन्तु पुत्र जगरूप के कुलांगार प्रमाणित होने पर वह अपने-आपको सर्वथा दुर्बल नारी अनुभव करती है—बिना पतवार की नाव, बिना पति की औरत-सिवा डूबने के, दूसरी गति नहीं।[१]

'मो कों चूनरी की साध' की मूल समस्या बाल-विवाह और विधवा-समस्या ही है। हिन्दू-समाज की निष्ठुरता बाल-विधवा तुलसा के प्राण ले लेती है। आठ वर्षीया तुलसा विवाह के दूसरे दिन ही विधवा हो जाती है और उससे बलपूर्वक सुहाग-चूनरी छीन ली जाती है। वह इस आघात को सह नहीं पाती है और भयानक ज्वर से पीड़ित होकर अन्तिम सांस लेने लगती है। मृत्यु से कुछ क्षण पूर्व, अपनी ममतामयी मां से चूनरी पाकर,

---

१. 'फागुन के दिन चार', पृ० २१६

वह इस हर्ष-भार को संभाल नहीं सकती है और धरती पर धम्म से गिर पड़ती है। वह निष्ठुर समाज को अपने प्राणों की बलि दे देती है। 'विधवा' की रमा भी बाल-विधवा है, उसके कायर पिता भुवनेश्वर समाज के भय से, उस पूर्ण यौवना, षोडशी पुत्री का पुनर्विवाह नहीं करते हैं। वे जटाशंकर शास्त्री जैसे रूढ़िवादी, अन्धविश्वासी तथा अज्ञानी पंडितों से प्रभावित हैं, जो विधवा-विवाह को पाप समझते हैं। रमा यौवन के तूफान का सामना करने में असमर्थ रहती है, अस्वाभाविक ब्रह्मचर्य-पालन उसे पथभ्रष्ट करता है और वह घर से भाग जाती है। वास्तव में, हत्यारा हिन्दूसमाज ही उसे वेश्या बनने के लिए बाध्य करता है। वह विवश होकर ही नरक को स्वर्ग समझती है और सामाजिक मान-मर्यादाओं को छिन्न-भिन्न करती है।

'सुधारक', 'दिल्ली की बात' आदि कहानियों में भी 'उग्र' हिन्दू-विधवाओं की दयनीय स्थिति पर प्रकाश डालते हैं। उनकी विवशता से धूर्त, लम्पट तथा अनाचारी लोग किस तरह लाभ उठाते हैं, इसका अनावरण चित्रण इन रचनाओं में मिलता है। 'सुधारक' में रामकिशोर की विधवा युवती को अनाश्रित समझकर एक डाक्टर महोदय तथा समाज-सुधारक रतिबाबू अपने पाप-जाल में फंसाना चाहते हैं। वह बेचारी अपना सतीत्व बचाने का कोई अन्य उपाय न पाकर, आत्महत्या कर लेती है। 'दिल्ली की बात' की पार्वती की स्थिति रामकिशोर की विधवा से कुछ भिन्न है, वह यौवन के आवेग में, पाप-पथ पर अग्रसर होती है परन्तु उसके उपरान्त प्रतिशोध की जलती शिखा का रूप धारण कर लेती है। यौवन-समुद्र जब पूर्ण वेग से उसमें लहरा रहा था, उसी समय उसका पति-रूपी दिग्दर्शक यन्त्र अनायास ही खो जाता है, वह बेचारी विधवा हो जाती है और उसका मन-पोत भ्रम में पड़ जाता है। उसका बड़ा देवर, उसकी इस विवशता तथा दुर्बलता का लाभ उठाता है, वह उसके रूप और यौवन का दास बनकर, उसे वासनापूर्ति का साधन बनाता है। उसके गर्भवती होने पर, उसी को दोषी ठहराता है और काशीवास के बहाने, गर्भपात कराने की सम्मति देता है। पार्वती अपने इस अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए इस्लाम धर्म ग्रहण करती है और उसी से होने वाले पुत्र को उसका तथा हिन्दू जाति का विनाश करने का पाठ पढ़ाती है।

यथार्थवादी कलाकार होने के कारण 'उग्र' इस समस्या का भी कोई समाधान नहीं देते हैं, वे इसके भयानक तथा घृणित रूप को ही प्रस्तुत करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। प्रेमचन्द की भांति विधवा-आश्रमों की स्थापना कराना या विधवाओं को घुट-घुट कर मरते दिखाना उन्हें अभीष्ट नहीं। वे एक ओर कुछ सबला विधवाओं की चित्तवृत्तियों का उदात्तीकरण दिखाते हैं और दूसरी ओर दुर्बल या सामान्य विधवाओं को काम-वासना के आवेग में पथभ्रष्ट होते हुए दिखाते हैं। इस प्रकार की विधवाएं काम के प्रबल आवेग को दबाने या उसका सामना करने का सामर्थ्य नहीं रखती हैं और उसके तीव्र प्रवाह में बहती चली जाती हैं। इससे सम्भवतः 'उग्र' यह सूचित करते हैं कि विधवा-विवाह ही उनके सुधार का प्रधान स्रोत है, अन्य उपाय प्रायः शक्तिहीन हैं। यौवन का तूफान सबल पुरुष से नहीं रुकता, अबला नारी उसका सामना करने में सर्वथा असमर्थ है। अस्वाभाविक संयम या ब्रह्मचर्य-पालन के उपदेश उसे सुधारने के स्थान पर उत्तेजना देते हैं और वह अवसर मिलते ही अनैतिक पथ पर अग्रसर हो जाती है। वेश्या-समस्या के मूल में विधवा-समस्या का भी हाथ है और इन दोनों का उपचार उचित विवाह-प्रथा में मिल सकता है।

९. अन्धविश्वास और पाखण्ड

भारत विचित्रताओं से भरा देश है। इसमें एक ओर तर्क, ज्ञान, दर्शन एवं गणित के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति हुई और दूसरी ओर अन्धविश्वास एवं पाखण्ड ने भी बहुत प्रसार पाया है। यह अन्धविश्वास एवं पाखण्ड जादू-टोना, पीपल-ब्रह्म, देवी-देव, जिन्न-शैतान-पूजा आदि के रूप में प्रकट हुआ है। 'उग्र' सरीखे कथाकारों ने भारतीय ज्ञान-विज्ञान, दर्शन आदि की प्रगति दिखाने की अपेक्षा अंधविश्वासों, आडम्बरों तथा अज्ञानताओं को ही व्यंग्यात्मक रूप में चित्रित किया है। आलोच्य कथाकार 'मूसल ब्रह्म' कहानी में गोसाईंन और उसके सहयोगी अब्दुल्ला के माध्यम से भारतीय ग्राम्य समाज के अन्धविश्वास और पाखण्ड का यथार्थ रूप पाठकों के सामने रखता है। ग्राम्य जीवन की अज्ञानता लोगों को कितना दयनीय बना देती है, इसका सजीव रूप इस कहानी में मिलता है। गोसाईंन और

अब्दुल्ला लोगों की अज्ञानता से लाभ उठाकर उन्हें दोनों हाथों से लूटते हैं, पीपल-ब्रह्म के बहाने से अपनी पूजा कराते हैं और अब्दुल्ला तो भोली-भाली नारियों के सतीत्व को भी दक्षिणा में लेता है। उनके इस व्यभिचार को देखर निर्भयदेव मूसल-ब्रह्म बनते हैं, उन्हीं के माध्यम से कथाकार अपनी मान्यता को वाणी देता है। वह पाखण्डलीला का घोर विरोधी है। इसी से उसके निर्भय देव उन दोनों की अच्छी खासी पिटाई करते हैं और एक लम्बे समय से जो भुतहा मेला चला आ रहा था, उसे उजाड़ फेंकते हैं। उससे असंख्य लोगों को सुख-शान्ति की सांस लेने का अवसर मिलता है। वे गोसाईंन को आजन्म कारावास दण्ड और अब्दुल्ला को गांव से बहिष्कृत कराए जाने का दण्ड दिलाते हैं।

'मनुष्यानन्द' में भी 'उग्र' भारतीय नारियों की रूढ़िवादी अज्ञानता तथा नर-पिशाचों की पाप-लीलाओं का नग्न रूप अंकित करते हैं। अशिक्षित ग्रामीण नारियां सन्तान -कामना के प्रलोभन में देवी-देव, जिन्न-शैतान आदि की पूजा करती हैं, उन्हें मनाती हैं और इसी अज्ञानता से अपने सतीत्व को भी खो बैठती हैं। वे मौलवी लियाकत हुसैन जैसे पाखण्डी, व्यभिचारी तथा गिरी हुई मनोवृत्ति के लोगों के जाल में फंस जाती हैं और अपना लोक तथा परलोक बिगाड़ती हैं। मौलवी लियाकत हुसैन जैसे नराधम उन्हें अपनी स्वार्थ-सिद्धि तथा वासना-पूर्ति का साधन बनाते हैं। ये पाजी भले घर की बहू-बेटियों को बहकाते हैं, उन्हें उलटा-सीधा नाच नचाते हैं और सन्तान देने का प्रलोभन देकर उनका सतीत्व भंग करते और कराते हैं। कथाकार इन नीचों की कड़ी निन्दा करता है, उसके विचार में इन व्यभिचारियों को कठोर से कठोर दण्ड मिलना चाहिए। अपनी इसी धारणा के अनुसार वह बुधुआ के माध्यम से व्यभिचारी व्यक्तियों पर प्रहार कराता है। बुधुआ अपनी पत्नी सुकली और उसके साथ नारकीय लीला करने वाले नर-पशुओं की हत्या कर देता है। लियाकत हुसैन की नाक काट देता है और उसका वध न कर सकने पर खेद प्रकट करता है। कथाकार की सहानुभूति न तो अज्ञानी नारियों के साथ है और न व्यभिचारी व्यक्तियों के साथ, वह तो इन सभी के साथ कठोर से कठोर व्यवहार करने के पक्ष में है। उसके विचार से सन्तान ईश्वरीय वरदान है, व्यभिचारों से

उसे पाना घोर पाप है। मनुष्य किसी को सन्तान नहीं दे सकता है, इसलिए सभी पाखण्ड व्यर्थ हैं—'बेटी-बेटा आदमी के दिए नहीं मिलता। उसके लिए कोशिश-पैरवी भी व्यर्थ है। उसे तो भगवान ही दे सकते हैं'।[१]

सामाजिक अनाचारों के घोर विरोधी 'उग्र' अन्धविश्वासों तथा मिथ्या विचारों की बड़ी निडरता से आलोचना करते हैं, वे सामाजिक स्वास्थ्य के लिए ही यथार्थ स्थिति का स्पष्ट भाषा-शैली में उद्घाटन करते हैं और भ्रष्टाचार फैलाने वाले पंडे-पुरोहित, गुसाईं-गुसाइंन तथा मौलवी वर्ग के प्रति घृणा तथा उपेक्षा के भाव जगाते हैं। उनके कुकर्मों पर गरजने और बरसने में उन्हें आत्म-सुख-सा मिलता है।

१०. स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों और अधिकारों की समस्या

स्त्री-पुरुष का आकर्षण शाश्वत है, इन दोनों के संसर्ग से ही मानव-जाति का विकास होता है और इनके समन्वित सहयोग से ही समुचित प्रगति की आशा की जा सकती है। ये दोनों एक दूसरे के लिए भोग की वस्तुएं ही नहीं हैं, आत्म-सम्मान के प्रतीक भी हैं। किसी भी वर्ग को मिथ्याभिमानी नहीं होना चाहिए, दोनों का अस्तित्व समान है। सच्ची शान्ति, प्रगति तथा प्रसन्नता के लिए इनके पारस्परिक सम्बन्धों का सुदृढ़ एवं स्वस्थ होना अति आवश्यक है। दोनों समान धरातल पर आकर ही एक दूसरे के प्रति न्याय कर सकते हैं और सामाजिक कार्यों में उचित सहयोग दे सकते हैं। परन्तु खेद की बात है कि भारतीय समाज में यह सन्तुलन प्रायः भंग होता रहा है और पुरुष-समाज अपने स्वार्थ तथा वासना-पूर्ति के लिए नारी को केवल भोग्या समझता रहा है। उसने नारी को प्रायः चरणदासी बनाया और उस पर मनमाने अत्याचार किए। उसके अन्याय के विरुद्ध अनेक समाज-सुधारकों एवं साहित्यकारों ने आवाज़ उठायी। हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेमचन्द, 'उग्र' नागर प्रभृति अनेक लेखकों ने विलासी एवं अधिनायक पुरुषों की प्रायः कड़ी आलोचना की है और नारी-अधिकारों का सबल शब्दों में समर्थन किया है।

---

१. 'मनुष्यानन्द' पृ० ४४

'उग्र' के कथासाहित्य में मुख्यतः दो प्रकार के स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध मिलते हैं। प्रथम सम्बन्ध के अन्तर्गत पुरुष कर्ता-धर्ता, अधिनायक है और नारी की स्थिति अत्यन्त शोचनीय है। वह निर्बल पुरुष की तुलना में भी शक्तिहीन है, अधिकारों से वंचित और पुरुष पर पूर्णतः निर्भर है। विद्रोह करना उसकी प्रकृति में नहीं है। सामाजिक परिस्थितियां भी उसके प्रतिकूल रहती हैं, वे उसे इतना दुर्बल बना देती हैं कि वह पुरुष की अमानुषिकता, स्वेच्छाचारिता और पतनशीलता को चुपचाप सहने के लिए बाध्य है। उसे मौनता में ही अपना हित प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ 'जीजीजी' की प्रभा शिक्षिता है, ज्ञानवान है, परन्तु उसमें इतना साहस नहीं कि वह अपना स्वतन्त्र निर्णय दे सके। अपने विवाह के अवसर पर वह तटस्थ बनी रहती है और परम्परागत भारतीय नारी की भांति अपने माता-पिता के निर्णय को ही वरदान समझकर अग्नि में कूद पड़ती है। उसकी यह धारणा रूढ़िवादी तथा आत्महीनता से युक्त है—'स्त्री तो पुरुष द्वारा समाप्त होने को बनी है—चाहे दो दिन में उसे गुण्डे खा जायं मिलकर, या दो साल में पति समाप्त कर दे अकेले। सिवा मरने के औरत के लिए, कसाईखाने की बकरी की तरह, कोई चारा नहीं।···उत्तमतम नारी के लिए मानव-समाज में व्यभिचारी या अत्याचारी पुरुष की अंक-शायिनी बनने के सिवा और कोई चारा नहीं।'[1] 'फागुन के दिन चार' की प्रेमा की भी यही स्थिति है। उसका पति जगरूप शराबी, वेश्यागामी तथा क्रूर है। वह पति के दोषों को नहीं देखती, उसे पितृ-सदन में जो पतिव्रत धर्म का सन्देश मिलता है, वह उसी के अनुसार पति को कर्ता-धर्ता मानती रहती है। पति को प्रसन्न करने के लिए ही वह नृत्य-गान का अभ्यास करती है, घर से बेघर होती है और इसी प्रयास में अपने प्राणों को होम कर देती है।

स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों का दूसरा रूप नारी जागरण को प्रश्रय देता है। 'उग्र' नर-नारी के समान सम्बन्धों की घोषणा करते हैं। वे 'चन्द हसीनों के खुतूत,' 'रमा बी० ए०,' 'मनुष्यानन्द' आदि रचनाओं में नारी का स्वतन्त्र अस्तित्व भी दिखाते हैं। नारी पुरुष की दासी या सेविका नहीं,

---

१. 'जीजीजी,' पृ० ४४-४७

उसकी जीवनसंगिनी है। 'चन्द हसीनों के खुतूत' की नर्गिस नर-नारी के आकर्षण को ईश्वरीय मानती है और अपने प्रियतम मुरारी को पाने के लिए सर्वस्व अर्पण करती है। उसके बदले में उसे भी सभी कुछ मिलता है, उसका प्रेमी अपनी प्राणेश्वरी के लिए हंसते-हंसते प्राणों की बलि दे देता है। 'रमा बी. ए.' कहानी की रमा 'उग्र' की सजग तथा सबल नारी है, वह अपने कायर तथा विलासी पति उल्फ़तराय को दुत्कारती है। उसके विचार से पुरुष नारी को केवल भोग्या समझता है, किन्तु उसे अपने अधिकारों के लिए विद्रोह करना होगा। वह पुरुषों पर व्यंग्य-बाण बरसाती हुई, नारी-अधिकारों के लिए नारी-समाज को उकसाती हुई कहती है—'मैं समझती हूं कि मक्खन के पैकेट की तरह औरत की भी कोई जाति, धर्म, संस्कृति या देश नहीं। आज के मर्दों के सामने वह केवल भोग की वस्तु है—निष्प्राण। उसके भी दिल होगा, कहां सोचता है पुरुष विश्व का शासक कापुरुष यह। मैं कहती हूं, नारी साग-भाजी या बकरी की अम्मां से बेहतर जीवन चाहती है, तो उसे विद्रोह करना होगा'।[1]

उग्र द्वारा चित्रित नर-नारी के उपर्युक्त सम्बन्धों में प्रथम सम्बन्ध आदर्शवादी है, उसे परम्परागत या रूढ़िवादी कह सकते हैं। उसके अनुसार नारी की विभूति त्याग और सेवा है, उसे अपने मातृत्व के गुण को विकसित करना है। उसे पुरुष से होड़ नहीं लगानी है, वरन् अपने कर्तव्य-पथ पर ही आगे बढ़ते जाना है। नर-नारी के द्वितीय सम्बन्ध को आधुनिक कहा जा सकता है, उस पर नारी-जागरण का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। इस सम्बन्ध में नारी समान अधिकारों के लिए पुरुषों की कड़ी आलोचना भी करती है। कथाकार उसके पक्ष का भी समर्थन करता है। वह नहीं चाहता कि विलासी पुरुष नारी को केवल भोग्या समझे और उसके जीवन से खिल-वाड़ करता रहे। 'मनुष्यानन्द' उपन्यास में वह मिस राधा के माध्यम से विलासी पुरुष-समाज के विरुद्ध विद्रोह का आह्वान कराता है—यह पुरुष जाति धोखेबाजों, अत्याचारियों और कायरों की जाति है—जो, सदा से, हम स्त्रियों को फुसला-फुसला कर नष्ट करती और हमारे प्राणों को घास-भूसे

१. 'कला का पुरस्कार', 'रमा बी० ए०', पृ० ६४

की तरह पशुता से कुचलती आ रही है। आखिर हमारे भी हृदय है, हममें भी आंखें बदल कर बदला लेने की शक्ति है।'[1] वस्तुतः उग्र के ये दोनों दृष्टि-कोण तत्कालीन सामाजिक गतिविधियों का ही उद्‌घाटन करते हैं। उस समय की आदर्शवादी या परम्परावादी नारियों का प्रतिनिधित्व प्रभा, प्रेमा आदि नारियां करती हैं और नारी-जागरण का सन्देश रमा, मिस राधा आदि के माध्यम से दिया गया है।

(ख) राजनैतिक-चेतना

'उग्र' के कथासाहित्य की राजनैतिक चेतना को सामान्यतः तीन रूपों में देखा जा सकता है—ईस्ट इण्डिया कम्पनी या ब्रिटिश सरकार तथा ज़ारशाही के दमन-चक्र के रूप में, अछूतोद्धार आन्दोलन के रूप में और हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष तथा इन जातियों की एकता के रूप में। 'उग्र' अपनी अनेक कहानियों में रूसी क्रान्ति को कलात्मक रूप में पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं, जिससे उन्हें अन्याय तथा दमन-चक्र से जूझने का बल प्राप्त हो और वे स्वतन्त्रता एवं न्याय के लिए प्रयत्नशील बन सकें। 'कर्तव्य और प्रेम,' 'वीर कन्या,' 'भीषण सन्तोष' आदि कहानियां इसी प्रकार की उत्कृष्ट रचनाएं हैं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की शोषण-नीति और दमन-चक्र ने जो अमानुषिक लीलाएं इस देश में कीं, उनका निर्भीकता से उद्‌घाटन करना भी उग्र नहीं भूले हैं। उनके उग्र व्यक्तित्व को विद्रोह और विरोध ही अधिक भाता रहा, इसीसे वे बड़ी निडरता से धांधली के विरुद्ध लेखनी चलाते रहे। राष्ट्रीय आन्दोलनों ने उन्हें उत्तेजित किया और वे ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध जनता में आग लगाने का कार्य बड़े उत्साह से करते रहे। राजद्रोह के अभियोग में उन्हें जेल जाना पड़ा, उनकी कई रचनाएं ज़ब्त कर ली गईं और आर्थिक कठिनाइयों से उन्हें यायावरी जीवन ही व्यतीत करना पड़ा। परन्तु इससे राष्ट्रधर्मी कथाकार की उग्रता में शिथिलता न आई और वह गरजता तथा बरसता रहा। उसने अपनी अनेक कहानियों में अंग्रेज़ अधिकारियों के अत्याचारों का वर्णन किया है। अंग्रेज़ अधिकारियों ने ही

---

१. 'मनुष्यानन्द', पृ० २२२

सन् १८५७ में भारतीय सैनिकों, राजाओं, नवाबों तथा सामान्य जनता को विद्रोह के लिए प्रेरित किया था। उन्होंने भारतीयों के पढ़ने-लिखने के साधनों को अज्ञान से भरा था, अपमानजनक नियम गढ़े थे और निर्धनों का मनमाना शोषण किया था। उनका लक्ष्य भारतीय धर्म, समाज तथा उसकी रीति-नीति को नष्ट करना था। फलतः भारतीय सैनिकों, नवाबों और जनता ने उनके विरुद्ध राष्ट्रीय जागरण की अग्नि प्रज्वलित की और उनके अमानुषिक कृत्यों की भर्त्सना करने में अपने प्राण गंवाए थे। 'उग्र' अपनी कई कहानियों में उनकी पाशविक तथा दानवी योजनाओं का उद्घाटन करते हैं और भारतीय सैनिकों के साथ किए गए व्यवहार को दिखाते हैं— 'अजनाले के पुलिस थाने से सौ गज की दूरी पर एक कुआं था, उसी में गोली मारे हुए २३७ सिपाही तथा काल कोठरी की कठोरता से मरे हुए ४५ सिपाही भर दिए गए। सम्भवतः वह कुआं अभी तक अजनाले में होगा, पर गोरों को कानपुर के कुएं की जितनी याद रहती है उसका शतांश भी अजनाले के कुएं की नहीं'।[१]

'उग्र' अपनी राष्ट्रीय कहानियों में अंग्रेजों की कूटनीति, अन्याय तथा पशुता का उल्लेख यत्र-तत्र करते हैं। उन्होंने देशभक्तों को दबाने के लिए उन पर बड़े-बड़े दोषारोपण किए, उन्हें कारावास दण्ड दिए और फांसी के तख्तों पर भी लटकाया। 'उसकी मां' आदि कहानियों में 'उग्र' इसी धांधली को पाठकों के सामने रखते हैं। लाल और उसके साथियों को बिना दोषी सिद्ध किए प्राण दण्ड दिया जाता है, इससे बढ़कर उनकी नीचता और क्या हो सकती है ? 'मां कैसे मरी' कहानी में भी बर्बर आततायी अंग्रेज अधिकारियों के अत्याचारों का भण्डा फोड़ा गया है। क्रूर डायर देशभक्तों को बन्दूकों, मशीनगनों आदि की गोलियों से धराशायी कराता है, उनके रक्त से धरती को लाल कराता है। 'उग्र' इन घटनाओं का वर्णन करते समय सच्चे कलाकार का कर्तव्य निभाते है, वे ब्रिटिश सरकार के कोप से डरते नहीं वरन् उत्तेजना प्राप्त करते हैं।

उग्र अपने युग के अछूतोद्धार आन्दोलन को भी 'मनुष्यानन्द', 'समाज

---

१. 'काल-कोठरी', पृ० ११०

के चरण' आदि रचनाओं में दिखाते हैं। अछूतोद्धार की समस्या मुख्यत: सामाजिक थी, परन्तु महात्मा गांधी, जगजीवनराम प्रभृति नेताओं ने इसे राजनैतिक आन्दोलनों से सम्बद्ध किया। उसी से प्रभावित होकर प्रेमचन्द, 'उग्र' आदि कथाकारों ने इस चेतना को अपनी कृतियों में अंकित किया। 'उग्र' इस आन्दोलन को राजनैतिक अधिकारों तथा सीटों के विभाजन तक ही सीमित नहीं रखते हैं, इसके आर्थिक तथा व्यावहारिक पक्षों पर भी ध्यान देते हैं। अछूतों के आन्दोलन को नगरपालिका, अंग्रेज सत्ता तथा भद्र समाज के विरुद्ध खड़ा करके उनके वेतन, मकानों और सामाजिक प्रतिष्ठा की समस्या को भी सुलझाना चाहते हैं।

हिन्दू-मुस्लिम-संघर्ष, तत्कालीन राजनैतिक जीवन में एक प्रबल समस्या बन गया था। साम्प्रदायिक तत्वों ने प्रोत्साहन पाकर भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन को गहरा आघात पहुंचाया। कूटनीतिज्ञ अंग्रेज जो चाहते थे, वही कुछ साम्प्रदायिकता की आग ने कर दिखाया। भाई-भाई का शत्रु बन गया। राजनैतिक क्षेत्र में महात्मा गांधी, प्रभृति नेताओं ने और साहित्यिक क्षेत्र में प्रेमचन्द, 'उग्र' जैसे कथाकारों साम्प्रदायिक तत्वों की घोर निन्दा की और हिन्दू-मुस्लिम एकता को राष्ट्रीय अखण्डता तथा मानवता की रक्षा के लिए परम आवश्यक माना। उग्र अपनी अनेक रचनाओं में इस राजनैतिक चेतना को प्रस्तुत करते हैं। वे 'चन्द हसीनों के खुतूत', 'सरकार तुम्हारी आंखों में' आदि उपन्यासों तथा 'मलंग' 'खुदाराम', 'चौड़ा छुरा' आदि कहानियों में साम्प्रदायिकता की भर्त्सना और हिन्दू-मुस्लिम एकता का समर्थन करते हैं। 'चन्द हसीनों के खुतूत' में वे विषाक्त साम्प्रदायिकता के मूल में अंग्रेजों की कूटनीति प्रमाणित करते हैं—"नौकरशाही शासन की शक्ति कूटनीति के दृढ़ गढ़ों और अड्डों के भीतर बैठकर हिन्दू-मुसलमानों के सौभाग्य-गढ़ में सुरंगे लगा रही है और अपने भयंकर काले हाथों को दृढ़ बना रही है।"[१] 'सरकार तुम्हारी आंखों में' भी अंग्रेज रेजिडेण्ट साम्प्रदायिक संघष को बढ़ावा देता है। उसी के प्रोत्साहन से ही रंगीनखां राजा मदनसिंह के नाम पर मुसलमानों को सताता है और साथ ही राजा के

१. 'खुदाराम और चन्द हसीनों के खुतूत', पृ० ११२

अत्याचारों को धर्म का रूप देकर मुसलमानों को भड़काता है। इस प्रकार से अंग्रेजों द्वारा भड़काई गई साम्प्रदायिकता, दोनों जातियों को अपना सर्वस्व होम करना सिखाती है। दोनों जातियों के लोग एक-दूसरे को लूटते हैं, नारियों का अपमान करते हैं और धर्मग्रन्थों को जलाते हैं। 'उग्र' उनकी धर्मान्धता तथा अमानुषिकता की कड़ी आलोचना करते हैं—"दोनों ही मनुष्यता की दृष्टि से भयानक अपराधी हैं। दोनों ने सर्वेश्वर सम्राटों के सम्राट, ईश्वर के नाम पर संसार में विद्वेष और युद्ध फैलाया है। मनुष्यों की हत्या कर दोनों ने ही सम्राट की परम पवित्र थाती को नुकसान पहुंचाया है। दोनों ही गुमराह हैं, भयानक अपराधी हैं।"[1] इन दोनों जातियों के वैमनस्य को मिटाने के लिए तथा इन दोनों में एकता, प्रेम आदि का प्रसार करने के उद्देश्य से 'उग्र' सूफी कवियों का आश्रय लेते हैं। इन कवियों द्वारा निर्मित रचनाएं, दोनों जातियों की अमूल्य सम्पत्ति हैं, दोनों की एकता की प्रतीक हैं। 'चन्द हसीनों के खुतूत' में नर्गिस के पिता सूफ़ी साहब से प्रभावित होकर सभी राग-द्वेष भूल जाते हैं और उच्च मानवीय भावों से उल्लसित हो उठते हैं।

'उग्र' के कई मानवतावादी पात्र हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष को मिटाने के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करने को तत्पर हो जाते हैं। 'मलंग' के चाचा जी, 'शाप' के इसहाक, 'खुदाराम' के खुदाराम आदि ऐसे ही श्रेष्ठ मानव हैं। ये दोनों जातियों में एकता स्थापित करने के उद्देश्य से बड़े-से-बड़ा त्याग करते हैं। चाचाजी अपनी सारी सम्पत्ति लुटा देते हैं, इसहाक प्राण गंवा देते हैं और खुदाराम सिर हथेली पर रखकर कहते हैं—"तो, चलो मेरे साथ। हम लोग हिन्दू-मुसलमानों का झगड़ा रोकें। बच्चों को भी ले लो। मैं मुहल्ले भर की, कस्बे भर की, औरतों और बच्चों की पल्टन लेकर दोनों जातियों के पुरुषों पर आक्रमण करूंगा, उन्हें खुदा या धर्म के नाम पर लड़ने से रोकूंगा।"[2]

आलोच्य कथाकार अपने युग की राजनैतिक चेतना से प्रत्यक्षतः प्रभा-

---

१. 'ऐसी होली खेलो, लाल', 'दोजख़ ! नरक !!', पृ० ३८-३९
२. 'खुदाराम', पृ० ८८

वित हुआ है। उसने तत्कालीन हलचलों, आन्दोलनों तथा झगड़ों को बड़ी सफलता से वर्णित किया है। वह क्रान्तिकारी देशभक्तों की ओजमयी वीर गाथाओं, अछूतोद्धार के प्रयत्नों तथा साम्प्रदायिकता के दुष्परिणामों को दिखाने में पर्याप्त सफलता प्राप्त कर सका है।

(ग) आर्थिक चेतना

हिन्दी के प्रायः सभी सामाजिक कथाकारों ने आर्थिक समस्या को किसी-न-किसी रूप में उठाया है। साम्यवादी लेखकों ने तो इसे प्रधान समस्या के रूप में अंकित किया है। उग्र अपनी रचनाओं में आर्थिक समस्या को एकमात्र सामाजिक समस्या तो नहीं मानते हैं, परन्तु शोषितों, निर्धनों तथा दयनीय नर-नारियों के प्रति सहानुभूति रखने के कारण, धनलोलुप सेठों, शोषक जमींदारों तथा सूदखोर नर-पिशाचों की क्रूरता को निरावरण अवश्य करते हैं। उससे उनकी आर्थिक चेतना का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। उग्र स्वयं भी एक शोषित पात्र रहे, प्रकाशकों ने उनका प्रायः शोषण किया, उसी से उन्हें 'उग्र प्रकाशन' की स्थापना करनी पड़ी थी। आर्थिक-शोषण की समस्या को वे अनेक रचनाओं में उठाते हैं, यथा—'कढ़ी में कोयला', 'राम, डिक, हैरी एण्ड कम्पनी लिमिटेड', अभागा किसान', 'बेईमान और ईमानसिंह', 'नौ सौ निन्यानवे', 'कम्युनिस्ट दरवाज़े पर' आदि। 'कढ़ी में कोयला' में कथाकार मारवाड़ी-समाज की शोषण-नीति का विस्तारपूर्वक चित्रण करता है। मालेमस्त मारवाड़ी समाज येनकेन प्रकारेण परायी लक्ष्मी मुट्ठी में करते ही सोचता है, कि अब उसके भगवान् बनने में शेष ही क्या रहा है। शंख, चक्र, गदा आदि तो बाज़ार से भी होलसेल भाव से इच्छा करते ही मंगाये जा सकते हैं।[1] ये शोषक बाज़ार भाव को दबाने, अधेले-को अधेली, और अधेली को अधेला बनाने एवं धन को छिपाने आदि में बड़े पटु हैं। ये अंधेरे कुएं की भांति अस्पष्ट, गम्भीर और परिणाम में घोर घातक होते हैं। स्वार्थ इनके रोम-रोम में बसा हुआ है, काम पड़ने पर ये गधे को भी बाप बना लेते हैं और स्वार्थ सिद्ध हो जाने

---

१. 'कढ़ी में कोयला', 'ठाट', पृ० २

पर, गोमाता को भी बेघास की पेंशन देकर पिंजरापोल पठा देते हैं। इन्हों ने न्यायालयों को शेयर बाज़ार और धर्म को व्यापार बना दिया है। इनका दान किसी-न-किसी मलीन स्वार्थ के लिए रहता है।[1] कथाकार मालेमस्त मारवाड़ियों को यथार्थ रूप में चित्रित करने के साथ, पुलिस द्वारा इनके काले कारनामों की खबर लेने का भी संकेत देता है।

'राम, डिक, हैरी एण्ड कम्पनी लिमिटेड' कहानी में विदेशियों द्वारा भोली-भाली भारतीय जनता का शोषण दिखाया गया है। विदेशी व्यापारियों ने अत्याचार, अन्याय, छलकपट, धोखे-मक्कारी तथा क्रूरता के साथ हमारा वैभव लूटा, हमारी नैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक मान्यताओं को पांव तले रौंदा। आलोच्य कथाकार अपनी इस युगधर्मी कहानी के माध्यम से विदेशी व्यापार के बहिष्कार का संकेत करता है। 'अभागा किसान' कहानी में वह ज़मींदारों की शोषण-नीति की निष्ठुरता तथा अमानुषिकता से पाठकों को परिचित कराता है। ब्रिटिश-काल में ज़मींदार, अंग्रेज़ों के कृपापात्र बनने और निजी भोग-विलास के निमित्त निर्धन कृषकों का बड़ी निर्ममता के साथ शोषण करते थे। वे कर प्राप्ति के लिए कृषकों के बैलों को हस्तगत कर लेते थे, उनके खाने योग्य अनाज का दाना-दाना बेच देते थे और उनकी इज्ज़त तक लूटने में कोई आपत्ति नहीं समझते थे। उनकी इस अमानुषिक नीति से तंग आकर अभागे कृषकों ने कृषिकार्य छोड़कर श्रमिक बनने में अपना कल्याण समझा और मज़दूरी भी न मिलने पर, आत्महत्या करने में शान्ति प्राप्त की। कथाकार इन सभी गतिविधियों को यथार्थ रूप में अंकित करके, पाठकों को क्रांति के लिए प्रेरित करता है। वह उस समाज का घोर विरोधी है, जहां मनुष्य, मनुष्य को भेड़-बकरी की भांति अपना भोज्य-पदार्थ बना रहा है।

'नौ हज़ार नौ सौ निन्यानवे' कहानी सूदखोरों की खटमली नीति पर तीखा व्यंग्य करती है। इसके माध्यम से कथाकार एक ऐसे शोषक का वर्णन करता है, जो गांव के सभी वर्गों को बड़ी निर्भीकता से लूटता है। यह शोषक आदमखोर तथा मनुष्यता-रहित होने के कारण, पुलिस के द्वारा

1. 'कढ़ी में कोयला', 'ठाट', पृ० २५

पिटने से पूर्व युवकों द्वारा मार खाता है। वे इस नराधम की जीभर पिटाई करके, इसे मनुष्यता का पाठ पढ़ाते हैं। सम्भवतः कथाकार इसी नीति से ऐसे दुष्टों को राह पर लाना अधिक समीचीन समझता है। 'बेईमान और ईमानसिंह' कहानी पूंजीपतियों के काले कारनामों की एक हल्की-सी झलक प्रदान करती है। धनिक लोग बेईमानी की कमाई से कुरूप होने पर भी बड़े चमकीले लगते हैं। इनके धनोपार्जन के प्रधान साधन हैं—सूदखोरी, जुआ, नारियों का अवैध व्यापार और लोगों के दिवाले निकाल कर उनकी सम्पत्ति को हस्तगत करना।[1] ये लोग पुलिस से भी सांठ-गांठ रखते हैं और लोभी पंडितों को भी अपने पक्ष में किए रहते हैं। इनकी पाप-सम्पत्ति की रक्षा ईमानसिंह जैसे निर्धन करते हैं और उसी रक्षा में डाकुओं की गोलियों का निशाना भी बनते हैं। धनिक लोग उनके अपाहज बनने पर यह कहकर उन्हें नौकरी से अलग कर देते हैं कि उनका वेतन अधिक है और उन्होंने कम वेतन का आदमी रख लिया है।

'उग्र' यद्यपि साम्यवादी कथाकार नहीं हैं, तथापि उन्होंने साम्यवादी प्रभाव को अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है। वे धनिकों को यह बता देना चाहते हैं कि साम्यवाद रूस या चीन से नहीं आएगा, वह तो काले ज्वर की भांति देश-देश में स्वयं ही उत्पन्न हो जाएगा।[2] देश के निर्धन, पीड़ित और विवश प्राणी ही साम्यवादी बन जाते हैं और पूंजीवादी व्यवस्था के ध्वंस में जुट जाते हैं। उन्हें साम्यवादी बनाने वाले स्वयं पूंजीपति होते हैं, उनकी शोषणनीति तथा दुर्व्यवहार से ही पीड़ित लोग इस राह पर बढ़ते हैं और निरन्तर बढ़ते चले जाते हैं। उनकी क्रान्ति-ज्वाला पुनः बुझाए बुझती नहीं और उसका उत्तरदायित्व पूंजीपतियों पर ही होता है।

इस प्रकार उग्र की आर्थिक चेतना अप्रत्यक्ष रूप से साम्यवादी ही है। वे पूंजीवाद के विरोधी हैं और निर्धनों के प्रति पूर्ण सहानुभूति रखते हैं। आर्थिक शोषण उन्हें पसन्द नहीं है और वे शोषक-वर्ग की स्थान-स्थान पर कड़ी आलोचना करते हैं। धनिकों, जमींदारों और सूदखोर महाजनों के

---

१. 'रेशमी', 'बेईमानचन्द और ईमानसिंह', पृ० ३०-३१

२. 'चित्र-विचित्र', 'कम्युनिस्ट दरवाजे पर', पृ० ११८

विरुद्ध क्रान्ति के भाव जगाना उनका लक्ष्य है। इसी से वे उनके कुकर्मों का नग्नचित्रण भी करते हैं।

(घ) ऐतिहासिक चेतना : इतिहास प्रयोग का उद्देश्य

भूतकाल की घटनाओं तथा उनसे सम्बन्धित स्त्री-पुरुषों का क्रमानुसार वर्णन इतिहास की संज्ञा प्राप्त करता है। इतिहासकार जहां वस्तु-स्थिति के वर्णन में अपनी सम्पूर्ण शक्ति व्यय करता है, वहां साहित्यकार अनेक घटनाओं से प्रेरित होकर इतिहास की ओर प्रवृत्त होता है, उसकी प्रमुख भावनाएं हैं—'वर्तमान से पराजित अथवा असन्तुष्ट होने के फलस्वरूप पलायन की भावना, अतीत को वर्तमान से अधिक श्रेष्ठ एवं महत्त्वपूर्ण समझते हुए उसके पुनःसंस्थापन की भावना, कतिपय ऐतिहासिक पात्रों या घटनाओं के प्रति न्याय की भावना, इतिहास रस में लिप्त रहने की सहज भावना, जातीय गौरव, राष्ट्र-प्रेम, आदर्श-स्थापन तथा वीर-पूजा की भावना और जीवन की किसी नवीन व्याख्या को प्रस्तुत करने की भावना।'[1] इन भावनाओं में, 'उग्र' मुख्य रूप से वर्तमान को शक्तिशाली बनाने, जातीय गौरव, राष्ट्र-प्रेम, आदर्श-स्थापन तथा वीर-पूजा की भावना से प्रेरित होकर अपनी दृष्टि इतिहास की ओर ले जाते हैं। उनके कथा साहित्य में राजपूतकालीन इतिहास, ब्रिटिशकालीन इतिहास तथा रूसी-क्रान्ति से सम्बद्ध इतिहास के कुछ अंशों का बड़ा सजीव चित्रण मिलता है। वे अपने अनेक कहानी-संग्रहों—'पंजाब की महारानी', 'काल कोठरी, 'ऐसी होली खेलो, लाल' आदि में विदेशी आक्रमणकारियों, देशभक्त नर-नारियों और तत्कालीन नागरिकों के कार्य-कलापों का ओजमयी भाषा-शैली में वर्णन करते हैं। वे अपनी इन रचनाओं द्वारा विदेशियों की दानवी लीलाओं, अमानुषिक अत्याचारों और क्रूर प्रहारों को दिखाकर, भारतीय नवयुवकों तथा सामान्य लोगों की भुजाओं में नव रक्त का संचार करते हैं। वर्तमान को सशक्त बनाने के उद्देश्य से अतीत की गौरव गाथाओं का गाना गाते हैं। उनकी रचनाओं की सत्यता, उग्रता तथा क्रान्तिकारी प्रभाव को देखकर

---

१. 'आलोचना' १३, पृ० १७८

ही अंग्रेज सरकार कांप उठी थी और उसने उनके प्रकाशन को अवैध घोषित किया था। ये कृतियां भारतीय इतिहास की विभिन्न रोमांचकारी घटनाओं से सम्बन्धित हैं। 'पंजाब की महारानी' कहानी सन् १८४६ से १८४८ ई० के उन ऐतिहासिक पृष्ठों को स्मरण कराती है, जो अंग्रेजों की बर्बरता से भरे हुए हैं। अंग्रेजों ने पंजाब के महाराणा रणजीतसिंह की मृत्यु के पश्चात् उनकी धर्म-पत्नी महारानी जिंदा से विश्वासघात किया, उसके साथ अमानुषिक व्यवहार किया, उसी ऐतिहासिक सत्य को दिखाना आलोच्य कहानी का लक्ष्य है। यह कहानी आततायी अंग्रेजों के विरुद्ध क्रान्ति की आग भड़काने के नाते बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई। 'देश-द्रोह', 'सिक्ख-सरदार' आदि कहानियां पंजाब के वीर नययुवकों तथा नवयुवतियों के देश प्रेम तथा बलिदान दिखाकर, आदर्श-स्थापन का कार्य करती हैं। 'ऐसी होली खेलो, लाल' कहानी-संग्रह की कहानियां राष्ट्रीय चेतना, देश-प्रेम और वीर-पूजा के प्रसार के उद्देश्य से निर्मित हुई हैं। कहानीकार राजपूती वीरता, देशप्रेम आदि का चित्र अंकित कर, पाठकों के उत्साह-भाव को उत्तेजना देता हुआ कहता है—"राजपूत का खून तो युद्ध और शत्रु के भय से कभी इतना ठंडा नहीं होता था। राजपूत तो एक बार पुलकित-कलेवर हो—'जय! एकलिंग की जय!!' बोलकर रक्त की उष्ण गंगा में कूद पड़ता है, प्रलय तांडव करने लगता है। इस पुण्य देश के रक्षक राजपूतों का गर्म रक्त जब ऐसा ठंडा पड़ जाएगा तब यह हरी-भरी, सुन्दरी, प्यारी वसुन्धरा परायों के अत्याचार और व्यभिचार-ताण्डव का क्षेत्र बन जाएगी। ना, ना, ना! हम सपरिवार इस यज्ञ में स्वाहा हो जाएंगे पर विदेशियों के हाथों अपनी स्वतन्त्रता किसी भी दाम पर न बेचेंगे।"[१]

'मां कैसे मरी', 'जैतू में' आदि ऐतिहासिक कहानियों में 'उग्र' ब्रिटिश सरकार के अधिकारियों के दमन चक्र को दिखाकर, सोये देशवासियों को जगाते हैं। अंग्रेज़ अधिकारियों और कर्मचारियों ने देशभक्तों को बड़ी निष्ठुरता से अपनी गोलियों का निशाना बनाया, उनके निरपराध होने पर

१. 'ऐसी होली खेलो, लाल', पृ० १३१

भी उन्हें मृत्यु दण्ड दिए और उन्हें पांव तले कुचला। 'रेन ऑफ टेरर', 'एक भीषण स्मृति', 'नादिरशाही' आदि कहानियां भी इसी प्रकार की हैं और इनका लक्ष्य जनता को स्वतन्त्रता आन्दोलन के लिए उत्तेजित करना था। ये कहानियां समसामयिक महत्त्व के साथ अपना ऐतिहासिक महत्त्व भी रखती हैं। इनके माध्यम से हम उस समय का सच्चा इतिहास जान सकते हैं। 'प्यारी पताका' का सम्बन्ध जापानी इतिहास से है और 'पवित्र पताका' का सम्बन्ध कोरियाई इतिहास से है। इन कहानियों के माध्यम से भी कथाकार भारतीय स्वाधीनता संग्राम को बल प्रदान करता है। इन कहानियों के पात्र देश प्रेम के उच्च आदर्श से भारतीय पाठकों को राष्ट्रीय रंग में रंगते हैं।

उग्र के कथा साहित्य में इतिहास प्रयोग का प्रधान उद्देश्य क्रान्तिकारी भावों को जगाना और भड़काना है। कथाकार एक ओर देशी और विदेशी शासकों के अत्याचारों का वर्णन करता है और दूसरी ओर जनता को न्याय, स्वतन्त्रता तथा देश प्रेम के लिए अपूर्व बल प्रदान करता है। उसकी ये रचनाएं युग-चेतना का भी सजीव इतिहास अंकित करती हैं। वे वर्तमान को सबल बनाने के लिए अतीत की गौरवमयी वीरगाथाओं से उपजीव्य खोजती हैं। उनमें स्थूल घटनाओं की अपेक्षा ऐतिहासिक सत्य को अधिक प्रश्रय मिला है।

(ङ) सांस्कृतिक चेतना

संस्कृत अवस्था का नाम ही संस्कृति है, इसे मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति कह सकते हैं।[1] संस्कृति कोई जड़ या स्थावर वस्तु नहीं है, प्रत्येक देश में और प्रत्येक समय में यह परिवर्तित होती रही है, जो लोग बदलते हुए युग और बदलती हुई शक्तियों के साथ अपनी संस्कृति में संशोधन नहीं करते हैं, वे प्रगति की दौड़ में प्रायः पिछड़ जाते हैं।[2] संस्कृति का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है, इसके प्रमुख अंग हैं—धर्म, समाज, राजनीति और विविध कलाएं।

---

१. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी।

२. स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू, 'नई संस्कृति की खोज', पृ० १

उग्र के कथासाहित्य में भारतीय संस्कृति के स्वस्थ और अस्वस्थ दोनों प्रकार के तत्वों का विवेचन मिलता है। उन्होंने भारतीय संस्कृति और पाश्चात्य संस्कृति की तुलना भी कतिपय स्थलों पर की है। उनकी अन्तरात्मा यद्यपि भारतीय संस्कृति पर ही मुग्ध है, तथापि उन्होंने पाश्चात्य संस्कृति के कतिपय गुणों और भारतीय संस्कृति के कुछ दोषों को बड़े उत्साह तथा निर्भीकता से अंकित किया है। उन्होंने भारतीय समाज, धर्म, राजनीति तथा कलाओं के उत्थान-पतनमय वास्तविक रूप को ही चित्रित करना अधिक समीचीन समझा हैं। वे सामाजिक बुराइयों, धार्मिक आडम्बरों, राजनैतिक धांधलियों और कला-क्षेत्र के विकारों को छिपाना ठीक नहीं समझते हैं। (संस्कृति के प्रमुख अंगों में सामाजिक और राजनैतिक अंगों का विवेचन, इसी शोध-प्रबन्ध के इसी अध्याय में हो चुका है, अतः धार्मिकता और विविध कलाओं का विवेचन ही यहां अपेक्षित होगा।)

१. धार्मिक चेतना

'उग्र' अपनी रचनाओं में एक ओर भारतीय धर्म में घुसे आडम्बरों, दुराचारों और विकारों का यथार्थ रूप अंकित करते हैं और दूसरी ओर भारतीय धर्म की उच्चता, आध्यात्मिक शक्ति के अद्‌भुत चमत्कार, योग-साधना के महात्म्य आदि को चित्रित करते हैं। वे काशी के गुण्डानुमा पंडों, स्वार्थी तथा अज्ञानी ब्राह्मणों और धर्मान्ध लोगों को आड़े हाथों लेने में आत्मसुख का अनुभव करते हैं। इस नाते उनकी तुलना महात्मा कबीर से कर सकते हैं। अपनी 'ब्राह्मण-द्रोही' कहानी में वे लिखते हैं—'वे ब्राह्मण, ब्राह्मण नहीं हैं, जो भिक्षा मांगना ही ब्राह्मणत्व समझते हैं, मिथ्या व्यवस्था देते हैं, धर्म और मनुष्यता से बढ़कर सामाजिक कुप्रथाओं को मानते हैं, 'मुंह में राम, बगल में छुरी' रखते हैं—ब्राह्मणों के घर में जन्म लेकर भी किसी तरह ब्राह्मण नहीं हो सकते। कर्म ही ब्राह्मण है। कबीर, रैदास और गांधी से बढ़कर ब्राह्मण होना असम्भव है यदि जन्म से ही ब्राह्मण माना जाय तो संसार से ब्राह्मणत्व का लोप हो जाएगा। बड़े-बड़े ढोंगी, अर्थ-पिशाच, छः महीनों में एक बार स्नान करने वाले भी विप्र बन जाएंगे।''[१]

---

१. 'पोली इमारत,' 'ब्राह्मण-द्रोही', पृ० १४७

आलोच्य कथाकार धार्मिक कट्टरता का घोर विरोधी है और धार्मिक उदारता का सबल समर्थक है। वह देश के स्वतन्त्र होने से पूर्व, तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलनों से प्रभावित होकर, हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता का कड़ा विरोध और इन जातियों की एकता का सशक्त समर्थन करता रहा। उसने देश के स्वतन्त्र होने पर भी अपनी इस धारणा को त्यागा नहीं, वरन् यथा स्थान अंकित किया। उसकी सबल इच्छा यही रही कि भारतीय लोग साम्प्रदायिक दृष्टि से सोचना बन्द करें, वे हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई या पारसी से पहले अपने-आपको मनुष्य समझें और जाति-पांति की भावना से ऊपर उठें। जब तक संसार भर के मनुष्य अपने को एक ही परिवार का न समझेंगे तब तक विश्व-कल्याण असम्भव है। अलग-अलग बड़ाई के फेर में हम एक-दूसरे को किसी दिन नष्ट कर डालेंगे। विश्व को एटम बम से बचाने की इसके अतिरिक्त कोई युक्ति नहीं हैं कि हम सभी अपने को एक ही कुटुम्ब का प्राणी प्राणपन से मानने लगें।[1] वस्तुतः उग्र का धार्मिक दृष्टि-कोण, मानवीय धर्म से अत्यधिक प्रभावित है, उसमें संकीर्णता के स्थान पर व्यापकता और कट्टरता के स्थान पर उदारता का प्राधान्य है। उसमें विश्व-बन्धुत्व के ऊंचे भाव मिलते हैं। वे तो यहां तक कहते हैं—"पहले हिन्दू, मुसलमान, ईसाई या यहूदी कोई नहीं था। सभी मनुष्य थे, सभी ईश्वर के प्यारे बच्चे थे। फिर ? सब लोग मिलकर फिर से 'आदमी' क्यों नहीं बन जाते ? क्या 'हिन्दू', 'मुसलमान' या 'ईसाई', 'यहूदी' के नाम पर मनुष्यों में फूट-डालने पर प्रभु प्रसन्न होगा ? क्या यह ईश्वर के विरुद्ध विद्रोह नहीं है ?"[2] इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि उग्र रूढ़िवादी धार्मिकता के विरोधी और ज्ञानमयी, विश्वबन्धुत्वमयी तथा उदारतामयी धार्मिकता के भक्त हैं। वे धर्मान्धता, अज्ञानता, कट्टरता और रक्तपात को धर्म नहीं मानते हैं, वरन् उसकी भर्त्सना करते हैं। उनका यह दृष्टिकोण कबीर, गांधी आदि महा-पुरुषों के आदर्शों का पोषक तथा प्रसारक है।

---

१. 'यह कंचन सी काया', 'मलंग', पृ० ३८-३९

२. 'खुदाराम और चन्द हसीनों के खुतूत', पृ० ७१

२. विविध कलाओं के सम्बन्ध में 'उग्र' का दृष्टिकोण

'उग्र' के कथासाहित्य में ललित कलाओं के सम्बन्ध में ही विचार और विमर्श हुआ है। उपयोगी कलाओं को वे अपने प्रतिपाद्य विषय के लिए आवश्यक नहीं समझते हैं। ललित कलाओं में भी संगीत एवं नृत्य-कला के सम्बन्ध में ही अपने विचार व्यक्त करते हैं। वे भारतीय संगीत को अलौकिक शक्ति से सम्पन्न मानते हैं, जो अग्नि प्रज्वलित करने और पानी बरसाने की भी क्षमता रखता है। 'सरकार तुम्हारी आंखों में' में वे अपनी इसी मान्यता को व्यक्त करते हैं, उनकी यह धारणा आज के वैज्ञानिक युग में अस्वाभाविक-सी लगती है, परन्तु उसका सांकेतिक अर्थ लेना ही उचित है। कथाकार भारतीय संगीत की अमोघ शक्ति का भाव ही व्यंजित करना चाहता है। उसके उस्ताद गुलाब खां, दीप-राग से जो अग्नि प्रज्वलित करते हैं, वह एक प्रतीक ही है, उसे स्थूल घटना नहीं माना जा सकता है। इसी प्रकार 'मेघ-राग' में अभिव्यंजित, भारतीय संगीत की अलौकिक शक्ति का प्रतीकात्मक अर्थ लेना होगा। इन घटनाओं को स्थूल मान लेने से, कथाकार अस्वाभाविकता का पोषक माना जाएगा और यथार्थवादी कलाकार होने से, उसे इसका पोषक मानना सर्वथा अनुचित है।

आलोच्य कथाकार द्वारा भारतीय संगीत की जो अलौकिक शक्ति प्रदर्शित हुई है, उससे जहां चमत्कार की सृष्टि हुई है, वहां अस्वाभाविकता का संचार भी हुआ है। सामान्य पाठक यह विश्वास नहीं कर सकता है कि दीप-राग गाने से, चारों ओर आग लग जाए, बरगद का एक-एक पत्ता दीप-बत्ती-सा निर्धूम जल उठे, सारे जंगल में उजाला हो जाए, आग निरन्तर बढ़ती ही चली जाए और गायक उस अग्नि में भस्म हो जाए।[1] इसी प्रकार मेघराग गाने से आकाश में धुआंधार बादलों का घिरना, ठण्डी हवा का चलना, दीपकों का बुझना, पानी का बरसना, नव्वाब की कुत्सित प्रवृत्तियों का निवारण और उसका पश्चात्ताप की अग्नि में जलना भी अस्वाभाविक है। परन्तु इन सभी के सांकेतिक अर्थ ले लेने से अस्वाभाविकता का दोष

---

१. 'सरकार तुम्हारी आंखों में', पृ० १४३-१४६

दूर हो सकता है। कथाकार सर्वत्र संगीत का अद्भुत प्रभाव ही दिखाना चाहता है, अस्वाभाविकता का पोषण नहीं।

नृत्य-कला

'उग्र' नृत्य-कला को भी बड़ा सम्मान देते हैं। उनके अनुसार जितनी पुरानी यह सृष्टि है, उतनी ही पुरानी नर्तन-कला है, जिसमें लय, ताल, काव्य, संगीत, नाटक और रंग के—रंग-रंग के तत्वों का विलक्षण और सौन्दर्य-संगम है। आदि नृत्य ताण्डव और लास्य में सदाशिव के सार्वलौकिक ओज और पौरुष तथा भवानी के लावण्य और कोमलता का प्रतीकात्मक समन्वय है।···यह दिव्य कला नचनियों का धन्धा कदापि नहीं। इसका पुराना शास्त्र है, पद्धतियां हैं, शैलियां हैं, भेद-उपभेद हैं। नृत्यकला केवल कूल्हे हिलाना नहीं है। ३१ तो ताण्डव के प्रकार हैं, १२ लास्य के, इन्हीं ताण्डवों एवं लास्यों और रासों से सारे देश, या विश्व में नृत्य के विविध भेदोपभेद फैले हैं।[1] आलोच्य कथाकार काल और संस्कृति के अनुसार भारतीय नृत्यकला के शास्त्रीय-भेदों को भी अवसरानुसार अंकित करता है। उनमें भी कत्थक नृत्य के इतिहास पर विस्तारपूर्वक विचार करता है। उसके विचार से वर्तमान युग में कत्थकों का कोई आदर नहीं है। उसका कारण, कत्थकों का नैतिक तथा चारित्रिक पतन ही है। कत्थक जब तक हरि-कथा-कथक, कीर्तक थे, उनकी नृत्य-कला-साधना भक्ति-विभोर होती थी। वे भगवान् के आगे नाचते थे, न कि साधारण मनुष्य के। जिस कथक ने सर्वप्रथम राज-भय या धन-लोभ से, देव मन्दिर त्याग राज मंदिर में नृत्य-चंचल-चरण चलाए, निस्सन्देह उसने अपराध किया, उसका यह अपराध मुख्य रूप से नृत्य-कला के प्रति था।[2]

'उग्र' भारतीय नृत्य-कला के महत्त्व को दिखाने के लिए ही उसके विस्तृत इतिहास की ओर ले जाते हैं। वे उन कलाकारों को अपराधी तथा पापी घोषित करते हैं, जिन्होंने देव मन्दिरों को छोड़कर राज मन्दिरों में नृत्य-

---

१. 'फागुन के दिन चार', पृ० ८-९
२. वही, पृ० ९-१०

कला का उपयोग किया। उन्हें अपने पतन का दण्ड भी कम नहीं मिला, वे स्वाभिमानहीन तथा निशाचरी-वृत्ति के भिक्षु बने। वे दिन में सोने लगे और रात्रि वेश्याओं के समाज में व्यतीत करने लगे। उन्हें विलासिता की अनाचारी-वृत्ति ने कहीं का न छोड़ा, वे नारी-मारक और वासना के कीड़े ही बनकर रह गए।

कलाएं और नैतिकता

इस दृष्टि से उग्र का अभिमत आस्कर वाइल्ड से कुछ मिलता-जुलता है। वे सारी कलाओं को अनैतिक मानते हैं—नीति-विधान की बालिका है, सीमा में रहने की पक्षपातिनी, जबकि कला किसी भी प्रतिबन्ध को विवश मानने वाली त्रिकाल में भी नहीं। अतः अलौकिकता को छोड़कर और कुछ वह हो ही क्या सकती है ?[१] परन्तु कलाकार का मनुष्यता-विहीन होना भी उन्हें सह्य नहीं है, वे श्रेष्ठ कलाकार उसी को मानते हैं, जो पहले श्रेष्ठ मानव है—"कलाकार जितना भी श्रेष्ठ हो यदि वह श्रेष्ठ मानव नहीं है, तो शायद ही रसज्ञ उसकी कला में वह रस पाएं : जेहि बस होत सुजान।"[२]

संगीतकला और काव्यकला की अनैतिकता का एक साथ विवेचन करते हुए 'उग्र' कहते हैं—"यह समाज दुराचारी पाने पर लेखनी के धनिकों पर जितना बिगड़ता, खड्गहस्त होता है, उतना संगीतकारों पर नहीं। शायद इसलिए, कि लेखक की कला विशेष टिकाऊ होती है, अतः बुरी-भली होने से, अर्से तक, बुरा-भला परिणाम प्रकट कर-करा सकती है।"[३] इन पंक्तियों में 'उग्र' के निजी अनुभव साकार हो उठे हैं। उनकी रचनाओं की अश्लीलता, अनैतिकता तथा अभद्रता की जितनी कटु आलोचना हुई, उसकी तुलना में उनके समकालीन या आज के संगीतकारों के भद्दे गानों या अनैतिक संगीत की आलोचना बहुत कम हुई है। वे नैतिकता का बोझ लेकर न चले, इसी से उनकी वृत्तियों में तथाकथित अभद्रता का समावेश हुआ और उनके

---

१. 'फागुन के दिन चार', पृ० ८५
२. वही, पृ० २४६
३. वही, पृ०८५

साहित्य पर 'घासलेटी' का आरोप लगाया गया।

संक्षेप में, 'उग्र' के कथासाहित्य की समष्टि चेतना का क्षेत्र व्यापक है। वे प्रेमचन्द के समान ही देश और समाज की विविध समस्याओं का चित्रण करते हैं। किन्तु अपने व्यक्तित्व के अनुरूप वे यथार्थवादी दृष्टिकोण को अधिक प्रश्रय देते हैं। ऊंची कल्पनाओं और खोखले आदर्शों में उनका विश्वास नहीं है। वे समाज के कुत्सित अंगों पर ही मुख्यतः लेखनी चलाते हैं। उन्हें सामाजिक कल्याण के लिए उसके नग्न रूप को देखना और दिखाना अधिक उपयुक्त जान पड़ा है। इसी से वे कतिपय समस्याओं के ही समाधान देते हैं, शेष समस्याओं के सुलझाने का कार्य पाठकों और समाज-सुधारकों पर छोड़ देते हैं। वे अपनी रचनाओं के अन्त में पुरस्कार और तिरस्कार वितरण की पद्धति को बहुत कम अपनाते हैं। प्रेमचन्द के समान विविध आश्रमों की स्थापनाओं में उनकी आस्था नहीं है। किन्तु युग के प्रभाव और क्षेत्र-विशेष के अनुभव के आधार पर अछूत-समस्या, वेश्या-समस्या, भगाई हुई नारियों की समस्या आदि के कतिपय समाधान उन्होंने अवश्य दिए हैं। वे धार्मिक आडम्बरों के घोर विरोधी और साम्प्रदायिकता के निन्दक हैं। उनकी समष्टि-चेतना पर गांधीवादी आदर्शों का प्रभाव भी पड़ा है। वे अछूतोद्धार के पक्ष में और जाति-भेद के विपक्ष में बड़ी निर्भीकता के साथ लिखते चले जाते हैं। उनके उग्र व्यक्तित्व को राष्ट्रीय चेतना ने इतना अधिक उत्तेजित किया कि वे ब्रिटिश सरकार के अधिकारियों और कर्मचारियों के दमन-चक्र का स्पष्ट विरोध करते हैं। उनका राष्ट्रधर्मी 'कलाकार' इस बात की चिन्ता भी नहीं करता है कि उसकी कृतियां जब्त हो जाएंगी। उसने अपने यथार्थवादी दृष्टिकोण के अनुसार जो कुछ उचित समझा, उसे बड़ी निडरता से अभिव्यक्त किया। उसकी दृष्टि देश और समाज के अस्वस्थ रूप की ओर अधिक गई है, उसके मूल में उसका निजी जीवन और परिवेश है। उसने मुख्यतः सामाजिक रोगों के निदान के लिए 'नग्न स्थिति' को ही पाठकों के सामने रखा है।

'उग्र' का दृष्टिकोण : प्रकृतवादी या यथार्थवादी

हिन्दी-जगत में 'उग्र' प्रकृतवादी, नग्नतावादी या उग्रतावादी के रूप में ही ख्याति एवं कुख्याति प्राप्त करते रहे हैं। डॉ० श्रीकृष्णलाल प्रभृति विद्वानों ने उन्हें प्रकृतवादी उपन्यासकार माना है और डॉ० एस० एन० गणेशन आदि ने उन्हें नग्नतावादी या उग्रतावादी लेखक सिद्ध किया है। मूलतः इनका दृष्टिकोण क्या है ? इस तथ्य से अवगत होने के लिए हमें एक ओर उन सभी मतों का अवलोकन करना होगा, जो इनके सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों द्वारा उद्‌घाटित हुए हैं और दूसरी ओर प्रकृतवाद, यथार्थवाद आदि विविध वादों पर एक दृष्टि डालकर यह देखना होगा कि इनके कथा-साहित्य में किस वाद के कितने तत्त्व मिलते हैं।

विभिन्न विद्वानों के मत

(क) 'उग्र' प्रकृतवादी हैं

डॉ० श्रीकृष्णलाल तथा डॉ० त्रिभुवनसिंह ने 'उग्र' को प्रकृतवादी उपन्यासकार माना है। डॉ० श्रीकृष्णलाल के अनुसार अंग्रेजी के प्रभाव से कुछ लेखकों ने हिन्दी में भी प्रकृतवाद का प्रचार किया। चतुरसेन शास्त्री, बेचन शर्मा 'उग्र', इलाचन्द्र जोशी और चन्द्रशेखर पाठक इस शैली और पद्धति के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक हैं। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इन प्रकृतवादियों ने न तो प्रकार-विशेष (Types) ही दिए और न आदर्श चरित्रों की अवतारणा की, वरन् इनके विपरीत ऐसे चरित्रों की सृष्टि की जो

पुकार-पुकारकर कहते हैं कि मनुष्य और पशु में कोई विशेष अन्तर नहीं, विशेषकर भोग की दृष्टि से वे पशुओं से भी निकृष्ट और नीच हैं ।[१] डॉ० त्रिभुवनसिंह ने भी प्रायः इसी मत का समर्थन किया है और प्रकृतवादी उपन्यासकारो के अन्तर्गत इनका परिचय दिया है । वे 'उग्र' की प्रसिद्ध कृति 'दिल्ली का दलाल' को लक्ष्य बनाकर कहते हैं कि यह उपन्यास शुद्ध प्रकृतवादी शैली का प्रतीक है । इसे हम घोर प्रकृतवादी उपन्यास कह सकते हैं । इस उपन्यास के अन्दर जिस नग्न वास्तविकता का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है वह किसी भी श्रेष्ठ साहित्य के लिए वांछनीय नहीं है । अपने इस उपन्यास के द्वारा उन्होंने अनेक कुरुचिपूर्ण पाठकों के हृदय में सम्मानित स्थान अवश्य प्राप्त किया, परन्तु इसके लिए उन्हें आलोचकों की कम बौछारें नहीं सहनी पड़ीं ।[२] डॉ० चण्डीप्रसाद जोशी 'उग्र' के नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण को प्रकृतवादी मानते हैं और उनके उपन्यास 'जीजीजी' के आधार पर उन्हें प्रकृतवादी घोषित करते हैं—'उग्र' का नारी विषयक दृष्टिकोण उनके प्रकृतवादी विचार दर्शन के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है जो अत्यन्त हेय एवं घृणास्पद है । नारी के मातृत्व गुण को ही 'उग्र' जी सबसे बड़ी कमजोरी मानते हैं और यह गुण प्रकृति-जन्य है अतः निर्बल पुरुष की तुलना में भी वह शक्तिहीन है । जीजीजी, प्रभा की स्थिति पंगु कुबड़े से भी गई बीती है । वह अन्ततः सफल चित्रकार बन सकता है लेकिन जीजीजी अन्ततः पुरुष की स्वेच्छाचारिता की वेदी पर बलि हो जाती है ।''[३] डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा 'उग्र' को एक ओर आदर्शवादी कहानीकारों में स्थान देते हैं और दूसरी ओर उनकी कतिपय कहानियों को प्रकृतवादी सिद्ध करते हैं । वे अश्लीलता या घृणित विषयों से सम्बद्ध कहानियों की आलोचना करते हुए इन्हें प्रकृतवादी कहानीकारों में समाविष्ट करते हैं—''इनकी कुछ कहानियां प्रकृतवादी मिलती हैं, जिनमें कुरुचिपूर्ण वर्णनों को भाषा के कृत्रिम रूप में ढककर उपस्थित

---

१. 'हिन्दी साहित्य का विकास' (चतुर्थ संस्करण), पृ० २६७
२. 'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद' (तृतीय संस्करण), पृ० ३०१
३. 'हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय विवेचन', पृ० ३४३

किया गया है। पुरुष और स्त्री की प्रकृतियों तथा मानसिक अन्तर्दशाओं की यथार्थ अभिव्यक्ति इन्होंने खुलकर की है। इन कहानियों में यौन सम्बन्धी विचारों का सीमा से इतना अधिक प्रदर्शन हुआ है कि इसमें कामुकता तथा विलासिता की दुर्गन्ध आने लगती है।"[1]

(ख) 'उग्र' नग्नतावादी या उग्रवादी हैं

श्री ब्रजरत्नदास, शिवदानसिंह चौहान, डॉ० गणेशन प्रभृति विद्वानों ने 'उग्र' को घोर यथार्थवादी, नग्नतावादी या उग्रवादी लेखक माना है। श्री ब्रजरत्नदास के अनुसार वर्तमान युग के सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्रों में जो-जो बुराइयां, दुष्प्रवृत्तियां तथा दोष उन्हें दिखाई दिए उन्हीं का विवरण बड़ी यथार्थता से खूब मन लगाकर शोख रंगों में इस प्रकार चित्रित करने में वे निरन्तर लगे रहे कि उनके अधिकतर पाठकों का संयम टूटते-टूटते बच गया होगा। समाज का कुछ अंग ऐसा अवश्य होता है, जो कदाचार से पूर्ण तथा घृण्य है और जिसे ढका रखना ही उचित समझा जाता है पर वे उसी पर्दे में ताक-झांक लगाना तथा उसी को फाश करना ही अपना ध्येय बना लेते हैं। उसे भी वे किसी सुधार की दृष्टि से नहीं लिखते, जिससे उनके उद्देश्य के प्रति ही शंका होने लगती है।[2] श्री शिवदानसिंह चौहान उग्र-प्रतिभा और उनकी रचनाओं के व्यंग्य-विधान की सराहना करते हैं परन्तु उनका दृष्टिकोण नग्नतावादी ही मानते हैं। वे अन्य आलोचकों के मत का समर्थन-सा करते हैं—उग्र वास्तव में 'उग्र प्रतिभा' को लेकर आये। आपने फ्रान्सीसी उपन्यासकार जोला की तरह समाज के कुत्सित अंगों और वर्जित पहलुओं का निर्भीक होकर चित्रण किया। वेश्यावृत्ति तथा सभ्य समाज के बाह्य वातावरण के नीचे छिपी अन्य घृणित तथा घातक कुरीतियों को आपने अपनी आवेगपूर्ण, धड़ल्लेदार शैली में उघाड़कर सामने रख दिया। आलोचकों और सम्पादकों ने आप पर 'घासलेटी' (अश्लील) साहित्य की रचना करने का आरोप

---

१. 'हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन' (प्रथम संस्करण), पृ० २६६-६७
२. 'हिन्दी उपन्यास-साहित्य' (प्रथम संस्करण), पृ० २९७

लगाया। वास्तव में यह अश्लीलता तो तथाकथित थी। परन्तु आपके व्यंग्य की चोट सोद्देश्य थी, इसलिए आपकी रचनाएं जनता में हाथों-हाथ बिकीं।'[१]

डॉ० एस० एन० गणेशन अपने शोध-प्रबन्ध में चतुरसेन शास्त्री, बेचन शर्मा 'उग्र', मन्मथनाथ आदि लेखकों को प्रकृतवादी माने जाने का विरोध और नग्नतावादी या उग्रवादी माने जाने का समर्थन करते हैं। उनके विचार से प्रकृतवादियों में और इनमें जो समता है वह केवल इसी बात में है कि ये भी प्रकृतवादियों के समान जीवन के निकृष्ट अंगों को देखते हैं और इनकी शैली में भी प्रकृतवादियों का खुलापन है। पर प्रकृतवादियों के विरोधी जो तत्व इनमें मिलते हैं उनकी संख्या और महत्त्व अधिक है। ये जीवन की बुराइयों का नग्न चित्रण करते हैं, अतः इन्हें नग्नतावादी कहना अधिक उचित होगा, अथवा इनकी 'उग्र' आलोचनात्मक शैली के आधार पर उग्रवादी कहना भी असंगत नहीं है।[२] डा० चण्डीप्रसाद जोशी उग्र-साहित्य में उग्रता, व्यभिचार, प्रकृतवादी शैली आदि को एक साथ देखते हैं। उनके विचार से 'उग्र' सामाजिक-कुप्रथाओं का विरोध करते हैं, लेकिन आक्रोश का केन्द्र बन जाता है समाज में फैले व्यभिचार का वातावरण, अतः जिस उग्रता से वह समाज के अनाचारों का विरोध करते हैं, उतनी ही तन्मयता से व्यभिचार तथा अनैतिक काम-सम्बन्धों का चित्रण करते हैं। लेखक की प्रकृतवादी शैली सामाजिक विषयों के उपयुक्त नहीं है। यही कारण है कि 'उग्र' यद्यपि समाज सुधार का नेतृत्व भी करते हैं, लेकिन समाज को उनसे प्रेरणा नहीं मिलती।[३]

'उग्र' के दृष्टिकोण सम्बन्धी विभिन्न मतों पर यदि विचार करें तो उनमें आंशिक सत्य अवश्य उपलब्ध होता है। 'उग्र' के कथा-साहित्य में नग्नता, सीधी-सादी अभिव्यंजना शैली आदि कतिपय विशिष्टताएं

---

१. 'हिन्दी गद्य साहित्य', पृ० ६५
२. 'हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन', पृ० ३८१
३. 'हिन्दी उपन्यास : समाज शास्त्रीय विवेचन', पृ० १८२

प्रकृतवादी साहित्य से मिलती हैं। परन्तु ये विशेषताएं एकमात्र प्रकृतवादी साहित्य की नहीं हैं और प्रकृतवाद केवल इन्हीं दो विशिष्टताओं पर अवलम्बित भी नहीं है। इसलिए 'उग्र' को प्रकृतवादी मानना असमीचीन है। इसी प्रकार 'उग्र' को एकमात्र नग्नतावादी या उग्रवादी सिद्ध करना भी अनुचित है, वे आदर्शवादी, प्रतीकवादी तथा भावुकताप्रधान कृतियों के निर्माता भी हैं। उनका उद्देश्य कदाचार से परिपूर्ण तथा घृण्य जीवन का प्रचार करना नहीं है। वे अपने कथा-साहित्य द्वारा व्यक्ति और समाज के घातक-दोषों को दूर करने की प्रेरणा देते हैं। अपने इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखकर वे समाज की विसंगतियों, राजनैतिक हलचलों, धार्मिक आडम्बरों, आर्थिक शोषण तथा सांस्कृतिक पतन को यथार्थ रूप में अंकित करते हैं। देश और समाज का पतन उन्हें स्वीकार नहीं है, इसीलिए वे उसके नग्न रूप को पाठकों के सम्मुख रखकर, उनके सुधार की प्रेरणा देते हैं। वस्तुस्थिति के उद्‌घाटन के लिए यथार्थवाद के विविध रूपों—अतियथार्थवाद, आलोचनात्मक यथार्थवाद आदि—का आश्रय लेते हैं।

'उग्र' के कथा-साहित्य का प्रधान उद्देश्य सामाजिक अस्वास्थ्य का उपचार है, जिसकी पूर्ति के लिए वे अपनी कृतियों द्वारा ऐक्स-रे फोटो प्रस्तुत करते हैं। समाज-स्वास्थ्य के लिए जो कुछ आवश्यक समझते हैं, उसे निर्भय कह देने में आत्मसुख अनुभव करते हैं। इनका प्रयत्न तो प्रायः यही रहा है कि समाज के बिगड़े स्वास्थ्य पर नीरोग प्रकाश डाला जाए, किन्तु कुछ रचनाओं में उन्हें पूर्ण सफलता नहीं मिली है और उसी असफलता के परिणाम स्वरूप नग्नता या अश्लीलता का दोष आ गया है। परन्तु जहां तक उनके दृष्टिकोण का सम्बन्ध है वह प्रधानतः यथार्थवादी ही है। उन्होंने आवश्यकतानुसार यथार्थवाद के अनेक रूपों को ग्रहण करके अपने कथा-साहित्य का सृजन किया है। उनकी कुछ रचनाओं में ऐतिहासिक यथार्थवादी दृष्टिकोण प्रश्रय पाता है और कुछ रचनाओं में आलोचनात्मक यथार्थवाद मुख्यतः ग्रहण करता है। इसी प्रकार अतियथार्थवाद का भी वे आश्रय लेते हैं और उसी से अभद्रता, अशिष्टता, अनैतिकता आदि की गन्ध आने लगती है। परन्तु यह नग्नता साधन ही है, साध्य नहीं। उनकी

अनेक रचनाओं का झुकाव आदर्शवाद की ओर भी है। फलतः एक शब्द में यह निर्णय करना कि 'उग्र' प्रकृतवादी हैं या नग्नतावादी हैं, अनुचित है। उनके सम्पूर्ण कथा-साहित्य के आद्योपान्त अध्ययन के उपरान्त यही धारणा बनती है कि 'उग्र' किसी वाद विशेष के बन्धन को लेकर नहीं चले हैं, वे अस्वस्थ परम्पराओं के विरोधी, सुधार के इच्छुक तथा स्पष्टता के समर्थक हैं। उनकी कृतियों में विभिन्न वादों की विशिष्टताओं का मिश्रण मिलता है। उनके दृष्टिकोण का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने के लिए कुछ प्रमुख वादों के स्वरूप को देखना आवश्यक होगा और उसके बाद 'उग्र' के कथा-साहित्य में किस वाद का कितना अंश है, यह जानकर हम वस्तुस्थिति तक पहुंच सकते हैं।

प्रकृतवाद और 'उग्र'

प्रकृतवाद (Naturalism) यथार्थवाद का ही विकसित रूप है। इसके अनुसार मानव पहले पशु-सुलभ था, समय के साथ-साथ उसका विकास हुआ और वह सभ्यता तथा संस्कृति के आवरण ओढ़ता चला गया, परन्तु मूलतः वह पशु ही है और उसकी पाशविक वृत्तियों का तूफान यदा-कदा प्रस्फुटित हो ही जाता है। इस धारा के उपन्यासकार उन्हीं पाशविक वृत्तियों को यथार्थ रूप में अंकित करना अपना लक्ष्य समझते हैं। वे जीवन का वैज्ञानिक अध्ययन करते हैं और उनका अध्ययन दो आधारों पर अवलम्बित है—

(१) डार्विन, स्पेन्सर आदि के पैत्रागति की, परिवेश, परिणामवाद आदि से सम्बन्धित सिद्धान्तों के आधार पर और (२) मनोविज्ञान के नियतिवाद के आधार पर। डार्विन और स्पेन्सर ने निम्नतम श्रेणी से लेकर जन्तुओं के क्रमिक विकास का अध्ययन करके मनुष्य के पूर्व रूपों का भी निर्णय किया। इस निर्णय से मनुष्य में जो पाशविक प्रवृत्तियां अवशिष्ट हैं, उनके कारणों पर भी प्रकाश पड़ा। किन्तु डार्विन और स्पेन्सर के ये सिद्धांत जीवन-विज्ञान और शरीर विज्ञान से ही अधिक सम्बन्धित थे। मनोभावों के क्षेत्र में उनका प्रवेश न था। किन्तु फ्रायड आदि मनोवैज्ञानिकों ने जिस नियतिवाद का सिद्धान्त प्रस्तुत किया, उसमें और डार्विन के परिणामवाद

में बहुत समानता है।[1] मनोवैज्ञानिक नियतिवाद को सभी मतों के मनोविज्ञान मान्यता देते हैं। इसके अनुसार मनुष्य की चित्त-वृत्तियां बहुत कुछ जन्म से ही नियत हो जाती हैं।[2]

प्रकृतवादी कलाकार मानव की आदिम वासनाओं के प्रति विशेष आग्रह रखते हैं और सामाजिक परम्पराओं के बन्धन को स्वीकार नहीं करते हैं। वे समाज द्वारा निर्धारित मर्यादाओं को छिन्न-भिन्न करके मनुष्य को उसके प्राकृतिक रूम में ही देखने और दिखाने का प्रयास करते हैं। उनकी दृष्टि मनुष्य की जघन्य अवस्था पर ही प्रायः रहती है। यही कारण है कि प्रकृतवादी कलाकारों द्वारा निर्मित अधिकांश साहित्य, सर्वथा घासलेटी साहित्य है और उसे सम्मान प्राप्त नहीं हो सका है। यह साहित्य एकांगी दृष्टिकोण अपनाने के कारण दोषपूर्ण है।

प्रकृतवादी प्रत्यक्ष आलोचना नहीं करते हैं। वे ज्ञानार्जन से लिए तटस्थ रहते हैं, अपनी मान्यताओं की अपेक्षा, बौद्धिक दृष्टिकोण को प्रश्रय देते हैं और सामान्यीकृत सिद्धान्तों को प्रत्यक्ष रूप से नहीं कहते हैं। वे अपने आदर्शों को उपदेश या तर्क के माध्यम से वाणी भी नहीं देते हैं। उनका प्रयास यही रहता हैं कि जीवन जैसा है, उसे उसी रूप में पाठकों के सामने प्रस्तुत किया जाए। सामाजिक नग्नता दिखाने में उन्हें संकोच नहीं वरन् सन्तोष प्रतीत होता है।

जयशंकर प्रसाद प्रकृतवाद के नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण पर विचार करते हुए लिखते हैं—'प्रकृतवाद के भीतर स्त्रियों के सम्बन्ध में नारीत्व की दृष्टि ही प्रमुख होकर मातृत्व से उत्पन्न हुए सब सम्बन्धों को तुच्छ कर देती है। वर्तमान युग की ऐसी प्रवृत्ति है। जब मानसिक विश्लेषण के इस नग्न रूप में मनुष्यता पहुंच जाती है तो उसे सामाजिक बन्धनों की बाधा घातक समझ पड़ती है और इन बन्धनों को कृत्रिम

---

१. डॉ० गणेशन : 'हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, पृ० ३६६-३७०

2. 'According to him (freud), man has acquired, some where in his phylogenetic history, certain innate unlearned strivings, or urges, or instincts.'
see Brown : psychodynamics of Abnormal Behaviour; p. 156.

माना जाने लगता है।'[१]

प्रकृतवाद जीवन के पतन में सौन्दर्य देखता है, इसी से उसका दृष्टिकोण नैराश्यमय तथा अस्वस्थ है। वह जीवन के सर्वांगीण रूप की अपेक्षा मृत यौवन, मुरझाते पुष्प और नष्ट होते संसार में सौन्दर्य देखता है।[२] वह निम्न स्तरीय प्रवृत्तियों को ही प्रश्रय देता है। प्रकृतवादी कलाकारों के अनुसार सामाजिक कुत्सित प्रवृत्तियों में सुधार नहीं हो सकता है। मनुष्य-पशु के सत्य-मार्ग पर चलने की आशा नहीं है। इस प्रकार प्रकृतवाद का दृष्टिकोण एकांगी है, वह मानव में पाशविक वृत्तियों को ही देखता है, जीवन के अन्य पहलुओं को वह न देखता और न समझता है।

प्रकृतवाद एक कलात्मक प्रणाली भी है और इसने वस्तु के समान अभिव्यंजना को भी नया रूप प्रदान किया है। इसकी अभिव्यंजना का आधार यथार्थ कथन है और यह यथार्थ को उसके पूर्ण नग्न रूप में अंकित करता है। प्रकृतवादी लेखक, कथा को प्रत्येक प्रकार की कृत्रिमता से मुक्त कर देता है और एक शृंखलाबद्ध कथा कहना उसके लिए अनिवार्य नहीं है, किन्तु जीवन का निरीक्षण आवश्यक है। वह या तो जीवन के विशाल रूप को देखता है या केवल अध्ययन के ध्येय से एक सीमित खण्ड को ले लेता है। प्रकृतवादी उपन्यास में कथा के पूर्ण होने की आवश्यकता नहीं रहती, किन्तु उसमें प्रतिपादित जीवन पूर्ण रहता है।[३]

प्रकृतवादी कथासाहित्य का अभिव्यंजन सीधा होता है। उसमें कथा की वक्रता एवं चमत्कार नहीं होता। प्रत्येक विचार को मूर्त रूप दिया जाता है। नैतिक पतन को उसी रूप में अंकित किया जाता है और किसी आदर्श की स्थापना नहीं की जाती है। प्रकृतवादी कलाकार भयंकर तथा वीभत्स विषयों को कला की सूक्ष्म रेखाओं से भी प्रकट करते हैं।[४] वे सर्वथा घृणित विषयों को भी सभ्यता का आवरण ओढ़ा कर अभिव्यक्त करते हैं।

---

१. जयशंकर प्रसाद, 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध', पृ० १२२
२. डॉ० गणेशन : 'हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन'. पृ० ३७८
३. ,, हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन', पृ० ३७२
४. ,, वही, पृ० ३७७

हत्या और व्यभिचार जैसे विषयों को सन्तुलित रूप में पाठकों के सम्मुख रखना, इन लेखकों का ही कार्य है।

प्रकृतवाद का यथार्थ निरीक्षण पर अवलम्बित होता है। इस धारा के लेखक, लिखने से पूर्व वस्तु का सूक्ष्मातिसूक्ष्म निरीक्षण करते हैं। उनकी कृतियों में यह सूक्ष्म निरीक्षण सविस्तार अंकित होता है। इससे अनावश्यक विस्तार भी आ जाता है। इनकी यह शैली अनावश्यक होने पर भी, यथार्थ स्वरूप को प्रकट करने के निमित्त महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।

आलोच्यवाद की कतिपय कृतियों में मानवता का हृदय-स्पन्दन भी उपलब्ध होता है। उसमें ऐसे दृश्यों का विधान रहता है, जिनमें पात्रों की मनुष्यता वाणी पाती है। यही कारण है कि ये कृतियां विश्व-साहित्य में स्थायी महत्त्व का अधिकार रखती हैं।[1]

उपर्युक्त प्रकृतवादी साहित्य की विशिष्टताओं में से केवल दो-तीन विशेषताएं ही 'उग्र' के कथासाहित्य में उपलब्ध होती हैं। प्रकृतवाद-विरोधी तत्वों की संख्या अधिक होने के कारण उसे प्रकृतवादी साहित्य के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता है। कथाकार ने निस्सन्देह अपनी अनेक रचनाओं में जीवन के निकृष्ट अंगों को चित्रित किया है और अभिव्यंजना का सीधा-सादा रूप भी अपनाया है, परन्तु इसी से उसके दृष्टिकोण को प्रकृतवादी मान लेना उचित नहीं है। ये दोनों तत्व अपना लेने से ही कोई लेखक प्रकृतवादी नहीं बन सकता है। जीवन की कुरूपताओं को यथार्थ रूप में अंकित करने का अधिकार किसी भी लेखक को है। फिर 'उग्र' के कथा-साहित्य का प्रतिपाद्य विषय समाज के कुत्सित अंगों का चित्रण ही नहीं है, वे राष्ट्रीय चेतना, सच्ची वीरता, सात्विक प्रेम, भावुकता, आदर्शवादी दृष्टिकोण आदि को भी अपने कथा-साहित्य में यथास्थान चित्रित करते हैं।

'उग्र' के कथा-साहित्य में पाए जाने वाले प्रकृतवादी तत्व हैं—जीवन के कुत्सित पहलुओं का चित्रण और उसके लिए स्पष्ट अभिव्यंजना-शैली का ग्रहण। वे 'दिल्ली का दलाल', 'कढ़ी में कोयला', 'फागुन के दिन चार' आदि औपन्यासिक कृतियों तथा 'बीभत्स', 'विधवा', 'चांदनी', 'करुण कहानी,'

---

१. डॉ० गणेशन : 'हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन', पृ० ३७९

'सुधारक', 'दिल्ली की बात' आदि कहानियों में व्यक्ति एवं समाज के घृणित, निकृष्ट तथा बीभत्स पक्ष का विस्तारपूर्वक उद्घाटन करते हैं। इन रचनाओं में नारियों के अवैध व्यापार करने वाले नर-पशुओं, शराबियों, पाखण्डी पंडे-पुरोहितों, वेश्याओं, व्यभिचारी नर-नारियों, राक्षसों, सामाजिक कुरीतियों, विद्रूपताओं, असंगतियों, भ्रष्टाचारों आदि का चित्रण सीधी-सादी शैली में करते हैं। इसी से हिन्दी के अनेक वरिष्ठ-गरिष्ठ आलोचकों के कोप का शिकार उन्हें बनना पड़ा है। उनकी रचनाओं पर अश्लीलता, अशिष्टता, अशिवत्व आदि के दोष आरोपित किए गए हैं। काशी के कुछ गुण्डानुमा पंडे तो यहां तक कुपित हुए कि उनके हाथ-पांव तोड़ने तक की धमकियां देने लगे।

इनकी पुस्तक 'चाकलेट' को लेकर 'घासलेटी' आन्दोलन इनके विरुद्ध चला। इन पर यह भी आक्षेप किया जाने लगा कि ये रुपया कमाने के लिए अश्लील साहित्य का सृजन करते थे। इन विद्वेषपूर्ण आलोचनाओं तथा आक्षेपों का उत्तर देते हुए स्वयं 'उग्र' लिखते हैं—'मेरी पुस्तक 'चाकलेट' के वजन पर 'घासलेटी' आन्दोलन मेरे विरुद्ध घनघोर चला था। इन्हीं दिनों एक नहीं, दो-दो बार गांधी जी ने मेरी पुस्तक 'चाकलेट' पढ़ी थी और उसके लेखक की सचाई का अनादर, 'चाकलेट' की निन्दा करना अस्वीकार कर दिया था। हिन्दी वालों के कौवा-रोर में एक प्रहार स्पष्ट यह था—आक्षेप मुझ पर—कि मैं अश्लील-साहित्य टकों के लिए लिखता था। मेरा विश्वास आज भी यही है कि रुपये ही कमाना हो, तो कहानी-उपन्यास लिखने से कहीं सरल धन्धे और हैं।'[1]

'उग्र' की तथाकथित रचनाओं में प्रकृतवादी कतिपय तत्वों, अश्लीलता, नग्नता आदि को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। परन्तु उनके साथ यह देखना भी आवश्यक है कि उनका लक्ष्य प्रकृतवाद का प्रचार करना है या स्वस्थ, संयत, मर्यादित तथा नैतिक जीवन का निर्माण करना है। 'उग्र' की सम्पूर्ण कृतियों के अध्ययन, मनन तथा चिन्तन के उपरान्त यह निस्संकोच भाव से कहा जा सकता है कि उनका प्रधान उद्देश्य न तो प्रकृतवाद का

---

१. 'अपनी खबर', पृ० १३४

प्रसार है और न सस्ती लोकप्रियता, मानसिक विलासिता तथा अर्थोपार्जन है। वे सामाजिक अनाचारों, कुरूपताओं आदि पर प्रबल प्रहार करने के उद्देश्य से ही अतियथार्थ या आलोचनात्मक यथार्थमय चित्र अंकित करते हैं। वे जीवन के स्थायी मूल्यों की रक्षा के निमित्त ही 'नग्न स्थिति' पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं और उनका यह दृढ़ विश्वास है कि 'विषस्य विषमौषधम्'। अर्थात् विष की औषधि है ही विष।[1] हम उनके इस दृष्टिकोण से भिन्न धारणा रख सकते हैं और बुराई को समाप्त करने के लिए कोई अन्य आदर्शवादी मार्ग ग्रहण कर सकते हैं परन्तु 'उग्र' के मूल ध्येय को अस्वीकार नहीं कर सकते हैं। वे नैतिकता, मानवीय सहानुभूति, त्याग तथा बलिदान में विश्वास रखते हैं और इसी से अपनी तथाकथित अश्लील रचनाओं में भी बुराई का विरोध करते हैं और ऐसे पात्रों की सृष्टि करते हैं जो मनुष्यता को ही प्रश्रय देते हैं। उनके ये पात्र पाशविक वृत्तियों से ऊपर उठते हैं और सामाजिक जीवन को स्वस्थ तथा नैतिकतापूर्ण बनाने का संकल्प रखते हैं।

'दिल्ली का दलाल' उनकी घोर प्रकृतवादी रचना मानी गई है, परन्तु इसमें वे जहां नारियों के अवैध व्यापार करने वाले अनेक नर-पिशाचों का चित्रण करते हैं, वहां उनका विरोध करने वाले अनेक मानवतावादी पात्रों को भी प्रस्तुत करते हैं। पं० भूदेव शर्मा, बूढ़ा रामराज, नन्दन आदि पात्र इसी प्रकार के हैं, जो नारियों के अवैध व्यापार करने वाले अब्दुल्ला, सन्तू आदि नर-पिशाचों को पुलिस से दण्ड दिलाते हैं और उनके अड्डों से प्राप्त अभागिनियों के उद्धार में सहयोग देते हैं। कथाकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति इन्हीं पात्रों में हुई है। वह दानव पात्रों के प्रति सहानुभूति नहीं रखता है। उसका लक्ष्य नीच तथा निर्मम प्रकृति के घटिया मनुष्यों के प्रति घृणा तथा विरोध का भाव जगाना है। इसी से वह उन पर तीखे व्यंग्य-वाणों के प्रहार पर प्रहार करता चला जाता है। 'फागुन के दिन चार' के सम्बन्ध में भी यही कुछ कहा जा सकता है। इस उपन्यास में कथाकार काशी तथा बम्बई के अनैतिक जीवन का नग्न चित्रण करता है। काशी के व्यभिचारी

---

१. 'दिल्ली का दलाल', भूमिका

जीवन को लीलाधर, रत्नशंकर, जगरूप, महामाया आदि की जीवन-गाथा द्वारा पाठकों के सामने रखा गया है और बम्बई के घिनौने चित्र विभिन्न अभिनेताओं, अभिनेत्रियों, फिल्म-निर्देशकों आदि के माध्यम से उद्‌घाटित किए गए हैं। कथाकार चरित्रहीन नर-नारियों के जीवन की कुरूपताओं, विकृत-पक्षों तथा विलासी लीलाओं का समर्थन नहीं करता है। वह तो उनकी कटु आलोचना करता है। उसका लक्ष्य पाठकों के हृदय में यह भाव जगाना है कि अनैतिक जीवन का अन्त बड़ा भयानक तथा घृणित होता है। अपने इसी ध्येय की सिद्धि के लिए वह नायक जगरूप और कुल्टा मिस रोज़ के अन्तिम दिन अत्यन्त दुःखमय दिखाता है। जगरूप अपनी मृत्यु से पूर्व पश्चात्ताप की अग्नि में जलता हुआ सोचता है—'तो ? क्या? मैं बुरी तरह मरूंगा और मुझे भी कोई दाग देने वाला नहीं मिलेगा? तो क्या जीवन-क्षेत्र में जो जैसा बोता है अवश्यमेव काटता भी उसी की फसल है ?''[1] मिस रोज़ भी अपने कुकर्मों के परिणामस्वरूप ही पुलिस द्वारा सताई जाती, वेश्या बाज़ार में नरक भोगती और अन्त में बावर्चिन बनने को बाध्य होती है। कथाकार इन व्यभिचारियों को पीड़ित होता देखकर सन्तोष ही अनुभव करता है, जिससे इस श्रेणी के प्राणी सतर्क हो सकें और उनके सुधार या अन्त से, सामाजिक जीवन स्वास्थ्य तथा शान्ति प्राप्त कर सके। इन घृणित पात्रों के विरुद्ध नन्दकुमार जैसे पात्रों की सृष्टि हुई है, इन्हीं के माध्यम से कथाकार की मान्यताएं अभिव्यंजित होती हैं। नन्दकुमार हिन्दी का एक निर्धन लेखक है जो बम्बई जाकर अनैतिकता के नग्न स्वरूप से परिचित होता है और अवसरानुसार दुराचारी अभिनेताओं, अभिनेत्रियों और निकृष्ट फिल्मों की कड़ी आलोचना करता है। वह पत्रों में उनके विज्ञापन छापने पर प्रतिबन्ध लगाने का विचार व्यक्त करता है। उसकी धारणानुसार, श्रेष्ठ कलाकार बिना श्रेष्ठ मानव हुए कोई हो ही नहीं सकता। वह उन कलाकारों की बड़ी निडरता से आलोचना करता है, जो दुराचारी होने पर भी 'पद्म-भूषण' की उपाधियां प्राप्त करते हैं।

'बीभत्स', 'विधवा', 'चांदनी' आदि कहानियों में भी जो कुत्सित,

---

१. 'फागुन के दिन चार' पृ० २४२-२४३

अश्लील तथा नग्न चित्र अंकित हुए हैं, वे साधन ही हैं, साध्य नहीं। 'बीभत्स' कहानी में सुमेरा की लोभ-वृत्ति का दुष्परिणाम दिखाया जाता है, वह शव ढोते-ढोते स्वयं भी शव बन जाता है। उसका पेट फूलकर विदीर्ण हो जाता है, अंतड़ियां बाहर निकल आती हैं। उसका घर नारकीय दुर्गन्ध से भर जाता है। 'विधवा' में कहानीकार सामाजिक रूढ़िवादिता तथा अन्धविश्वास का दुष्परिणाम दिखाने के लक्ष्य से ही कुलीन रमा को वेश्या-वृत्ति की ओर अग्रसर करता है। वह आर्यसमाजी विचारों के अनुसार उसके पुनर्विवाह का समर्थक है। उसे विधवा-विवाह में न तो कोई पाप दिखाई देता है और न समाज का अमंगल। समाज तथा व्यक्ति का पतन तो विधवा विवाह निषेध से होता है। 'चांदनी' कहानी में विलासी राजाओं के अनाचारों को दिखाकर उनके विरुद्ध रोष-भाव को उभारा गया है। कथाकार 'नग्न-स्थिति' से पाठकों को परिचित कराना चाहता है, उसका प्रचार या प्रसार उसका उद्देश्य नहीं है। 'करुण-कहानी' के माध्यम से गणेश जैसे क्रूर, दुराचारी तथा अधिनायकवादी पुरुषों की प्रत्यक्ष रूप से भर्त्सना की गई है और लीला जैसी विवश, निरीह अबलाओं के प्रति सहानुभूति व्यक्त की जाती है। इससे स्पष्ट है कि कथाकार व्यभिचार का नहीं वरन् मानवीय स्नेह-भावनाओं का ही पोषक है। 'सुधारक' के डाक्टर(पात्र) और समाज-सुधारक रतिलाल के घृणित कर्मों, अनैतिक आचरण तथा लोभमयी वृत्ति से भी पाठकों की भावनाओं को उनके विरुद्ध उत्तेजित किया गया है। कहानीकार ऐसे व्यक्तियों को निरावरण करके उनकी पाशविकता की निन्दा ही करता है। वह विधवाओं की दयनीय स्थिति दिखाकर इस बात की प्रेरणा देता है कि समाज उनकी सुरक्षा के नैतिक उपाय सोचे न कि पाखण्डी तथा गिरी मनोवृत्ति वाले दानवों को उन्हें सौंप दे। 'दिल्ली की बात' में तो वह विधवा पार्वती की विवशता तथा दुर्बलता से लाभ उठाने वाले व्यभिचारी देवनाथ की उसी के पुत्र से हत्या करा देता है।

'उग्र' की विभिन्न अश्लील कही जाने वाली रचनाओं के विवेचन से स्पष्ट है कि प्रकृतवाद में जो नग्नता साध्य है, वही नग्नता उनके कथा-साहित्य में साधन है। प्रकृतवाद मनुष्य की पाशविक वृत्तियों को स्वाभाविक मानकर, उनके विरोध या सुधार को आवश्यक नहीं समझता है और 'उग्र'

की कृतियां कहीं प्रत्यक्ष और कहीं अप्रत्यक्ष रूप से उनके विरोध तथा सुधार की प्रेरणा देती हैं। उनमें कथाकार का दृष्टिकोण नैराश्यमय नहीं है। वह निम्नस्तरीय प्रवृत्तियों को कहीं भी प्रश्रय नहीं देता है। उसने कहीं भी इस बात का प्रचार नहीं किया है कि मनुष्य पशु है और उसे पाशविकता की ओर ही बढ़ते रहना चाहिए। वह मनुष्यता के शाश्वत मूल्यों, नैतिकता, विश्वास और आशावाद का समर्थक है। इसलिए उसकी कृतियों की नग्नता या अभद्रता को केवल मात्र आधार बनाकर उसे प्रकृतवादी कहना ठीक नहीं है।

प्रकृतवाद विरोधी तत्त्वों की प्रचुरता के कारण भी 'उग्र' के दृष्टिकोण को प्रकृतवादी नहीं माना जा सकता है। वे प्रकृतवादियों की भांति जीवन का वैज्ञानिक अध्ययन नहीं करते हैं। उन्होंने मानव-समाज का जो कुछ भी अध्ययन किया है, वह डार्विन, स्पेन्सर आदि के पैत्रागतिकी, परिवेश, परिणामवाद आदि से सम्बन्धित सिद्धान्तों के आधार पर नहीं किया है। उसका आधार मनोविज्ञान का नियतिवाद भी नहीं है। आलोच्य कथाकार भारतीय जीवन की विविध गतिविधियों को निजी अनुभव, अध्ययन तथा चिन्तन के अनुसार पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। उसका उद्देश्य वस्तु-स्थिति का यथार्थ चित्रण या उसकी आलोचना करना रहा है, वह भारतीय सुधारवादी आन्दोलनों से भी प्रभावित हुआ है और उसने कतिपय कृतियों में सामाजिक समस्याओं के समाधान भी दिए हैं। उसने अस्वस्थ मर्यादाओं, परम्पराओं तथा प्रथाओं के विध्वंस पर ही बल दिया है, वह त्याग, स्नेह, परोपकार तथा करुणामयी परम्पराओं का पूर्णतः समर्थन करता है और उनके प्रसार में प्रयत्नशील भी है। उसने मनुष्य की पाशविक वृत्तियों के उदात्तीकरण को ही किसी न किसी रूप में प्रश्रय दिया है।

भारतीय समाज के गौरवशाली अतीत को ह्रासोन्मुखी अवस्था में देखकर 'उग्र' का आदर्शवादी तथा आशावादी दृष्टिकोण तिलमिला उठता है। वे वर्तमान पतन, भ्रष्टाचार तथा अनैतिकता को देखकर कहते हैं—"आदर्श, चरित्र, ब्रह्मचर्य और सतीत्व के लिए विश्व-विख्यात भारत के मुख पर समाज के कलंकी-कर्मों की याद से मेरे तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। देश के वह लोग जो बात-बात में भारत-भारत चिल्लाते हैं, यदि इस दिशा में

भी ध्यान देते, तो आने वाली पीढ़ी अधिक से अधिक ओज-तेजमयी होती। तो उनकी सेवाएं अमर होतीं।"[1] ये शब्द 'उग्र' की उस रचना के हैं, जिसे घोर प्रकृतवादी उपन्यास माना गया है। इन शब्दों के लेखक को प्रकृतवाद का पोषक भला कैसे कहा जाए ?

'उग्र' के कथा-साहित्य में प्रकृतवाद के विरुद्ध सामान्यकृत के सिद्धान्तों के अनेक दृष्टान्त मिलते हैं। 'जीजीजी' उपन्यास में कथाकार कामवासना को नारी जीवन की अनिवार्य आवश्यकता मानता है। उसका यह सिद्धान्त प्रकृतवाद का विरोध ही करता है, समर्थन नहीं। नारी जीवन को लेकर वह लिखता है—"पति, पुत्र, पुत्री, घर इन सबको छोड़कर वह कसाई के साथ आखिर किस चीज़ के लिए भागी ? शायद वही औरतों की पहली चीज़ है, बाकी सभी बाद की आवश्यकताएं।"[2] इसी प्रकार उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति भी प्रकृतवाद विरोधी है और आदर्शवाद या सुधारवाद की पोषक है। 'कढ़ी में कोयला' जिसके नग्न चित्रण को लेकर कड़ी आलोचना की गई है, उसी का एक पात्र नवयुवकों को उपदेश देता हुआ कहता है—"सिनेमा मत देखो ! रेस मत खेलो ! नशे की चीज़ों से बचो ! फिर न डॉक्टर की ज़रूरत होगी, न सूदखोर सेठ की और न अदालत कचहरी का मुंह देखना पड़ेगा। अपनी पत्नी को छोड़ दूसरे की औरत पर नज़र न डालो। वीर्य बचाओ ! ओ नौजवानों ! ओ भोले-भालो ! ओ नौनिहालो ! वीर्य बचाओ ! वीर्य ही यौवन, बुद्धि और तेज है। वीर्य का अभाव ही बुढ़ापा, अक्ल का दीवाला याने अच्छे लाला के भी मुंह का कोयला-काला होना है।"[3] इन पंक्तियों में कथाकार की अपनी आत्मा बोल उठी है, उसने अपने यायावरी जीवन में अच्छे-बुरे कई प्रकार के अनुभव प्राप्त किए, वह जीवन की राह में भटका भी है और उसका कटु अनुभव सामाजिक दृष्टि से उपादेय है।

प्रकृतवाद के नैराश्यमय दृष्टिकोण को भी 'उग्र' नहीं ग्रहण करते हैं। वे एक ओर जहां सामाजिक जीवन की ह्रासोन्मुखी गाथा को वर्ण्य विषय

---

१. 'दिल्ली का दलाल', पृ० १६९-१७०
२. 'जीजीजी', पृ० २०
३. 'कढ़ी में कोयला', पृ० १०२-१०३

बनाते हैं, वहां राष्ट्रीय जागरण का आशावादी तथा उत्साह-वर्द्धक सन्देश भी अनेक रचनाओं में देते हैं। उनकी राष्ट्रीय तथा ऐतिहासिक कहानियों में उनका उग्र रूप द्रष्टव्य है। 'उसकी मां', 'वह दिन', 'जैतू में', 'ऐसी होली खेलो, लाल', 'सिक्ख-सरदार' आदि कहानियां उनके शुद्ध राष्ट्रीय तथा उत्साहमय दृष्टिकोण की परिचायक हैं। 'उग्र' यदि निराशावादी होते तो राजद्रोह में भाग न लेते और न ही ब्रिटिश सरकार के प्रभुओं का कोपभाजन बनते। उन्हें अपने क्रान्तिकारी दृष्टिकोण के कारण ही कारावास दण्ड भोगना पड़ा और अपनी अनेक कृतियां जब्त करानी पड़ीं। उन्होंने अपनी अनेक कहानियों में गांधीवादी आदर्शों और मर्यादओं को भी सर्वोच्च स्थान दिया है। उनके माध्यम से नवयुवकों तथा नवयुवतियों को देश के लिए सर्वस्व-समर्पण की प्रेरणा दी है, अन्याय का विरोध करने को अनन्त उत्साह प्रदान किया है। 'उसकी मां' कहानी का देशभक्त युवक कहता है—"सबसे बुरी बात यह है, जो सरकार रौब से, 'सत्तावानी'-रौब से, धाक से, धांधली से, धुएं से हम पर शासन करती है। वह आंखें खोलते ही कुचल-कुचलकर हमें दब्बू, कायर, हतवीर्य बनाती है। और किस लिए? ज़रा सोचें तो? मुट्ठी भर, मनुष्यों को अरुण-वरुण और कुबेर बनाए रखने के लिए। मुट्ठी भर मनचले सारे संसार की मनुष्यता की मिट्टी पलीत करें, परमात्मा-प्रदत्त स्वाधीनता का संहार करें-छिः! नाश हो ऐसे मनचलों का।"[१] इन वाक्यों में निराशा नहीं वरन् उत्साह-सिन्धु लहराता मिलता है। इसी प्रकार 'ऐसी होली खेलो, लाल' की देशभक्त युवती पद्मा कहती है—"तुम भी कैसी बातें करते हो। जब तक यह मां दुर्गा हमारे साथ है तब तक विदेशी हमारी ओर क्या आंखें उठाएंगे। पिछले दो युद्धों में मेरी दो बड़ी विवाहिता बहनें जौहर कर चुकी हैं। ··जब तक हम राजपूत स्त्री-पुरुषों को स्वतन्त्रता, स्वधर्म और स्वदेश के लिए प्राण देना आता है, तब तक एक विदेशी तो क्या लाख विदेशी भी हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते।"[२] इन कहानियों के निर्माता को निराशावादी या प्रकृतवादी कलाकार स्वीकार कर लेना

१. 'ऐसी होली खेलो, लाल', 'उसकी मां', पृ० ७
१. वही, पृ० १३१

असमीचीन है। राष्ट्रधर्मी 'उग्र' ने स्वाधीनता संग्राम की बेला में अपनी रचनाओं द्वारा नित्य नई हलचलें उत्पन्न की, और अग्निल वातावरण में घृत डालने का कार्य किया।

'दिल्ली का दलाल', 'फागुन के दिन चार' आदि औपन्यासिक कृतियां, जिन्हें घोर प्रकृतवादी माना गया है, वे भी निराशावादी दृष्टिकोण का पोषण नहीं करती हैं। इनमें अब्दुल्ला, सन्तू, लीलाधर आदि अनैतिकतावादी पात्रों का सबल शब्दों में विरोध किया गया है। बूढ़े रामराज, नन्दन, नन्दकुमार आदि का पौरुषमय व्यक्तित्व, उग्रजी का अपना व्यक्तित्व ही तो है। वे भगाई हुई स्त्रियों के उद्धार के लिए प्रेरणा देते हैं, भ्रष्टाचारियों की कड़ी निन्दा और विरोध करते हैं और मानवता के ऊंचे आदर्शों में उनकी अटूट आस्था है।

प्रकृतवादी कलाकारों के विपरीत उग्र भयंकर तथा कुत्सित विषयों का उद्घाटन सूक्ष्म रेखाओं से नहीं वरन् स्पष्ट तथा तीखे व्यंग्य-बाणों से करते हैं। डॉ० गणेशन के शब्दों में—"उग्र, चतुरसेन और मन्मथनाथ के हाथ में कलम नहीं कुठार है, और कुठार लिए कोई प्रकृतिवादी नहीं बन सकता।"[1]

इस प्रकार प्रकृतवादी साहित्य और 'उग्र' के कथा-साहित्य में साम्य कम और वैषम्य अधिक मिलता है। साम्य केवल इस बात का है कि 'उग्र' भी प्रकृतवादी लेखकों के समान जीवन के कुत्सित, उपेक्षित तथा वीभत्स अंगों को वर्ण्य विषय बनाते हैं और उसमें एक सीमा तक अश्लीलता आ गई है। परन्तु प्रकृतवादी कलाकारों के समान 'उग्र' मनुष्य को मूलतः पशु नहीं मानते हैं, वे सुधार और नैतिकता के समर्थक हैं, और मानवीय मूल्यों में आस्था रखते हैं। प्रकृतवाद में जो नग्नता साध्य है, उसे वे साधन रूप में ग्रहण करते हैं। उनके कथा-साहित्य में प्रकृतवाद के विरुद्ध उपदेशात्मकता, प्रत्यक्ष आलोचना, आदर्शवाद, राष्ट्रवाद आदि के अनेक तत्व मिलते हैं। वे आवश्यकतानुसार विभिन्न वादों का आश्रय लेते हैं और जीवन का वैज्ञानिक पद्धति से नहीं वरन् व्यावहारिक पद्धति से अध्ययन, मनन तथा चिन्तन

---

१. 'डॉ० गणेशन : हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन', पृ० ३७७

करते हैं। उनकी रचनाएं निराशावाद की अपेक्षा आशावाद की पोषक हैं और उनमें क्रान्तिकारी भावनाएं यत्र-तत्र अभिव्यंजित हुई हैं। उनका 'उग्र व्यक्तित्व' प्रकृतवादी मान्यताओं से पर्याप्त भिन्नता रखता है और वे स्वतन्त्रता आन्दोलन से ही बहुत कुछ प्रभावित हुए हैं। वे अस्वस्थ परम्पराओं को ही छिन्न-भिन्न करने की प्रेरणा देते हैं। उनकी यह धारणा नहीं है कि मनुष्य को उसके प्राकृतिक रूप में स्वच्छन्द विचरने के लिए छोड़ दिया जाए।

यथार्थवाद और 'उग्र'

साहित्य में यथार्थवाद का प्रयोग, आदर्शवाद और स्वच्छन्दतावाद के विरोधी अर्थों में किया जाता है। यथार्थवादी कलाकार मानव-जीवन एवं समाज का सम्पूर्ण वास्तविक चित्र प्रस्तुत करता है। वह अपने साहित्य का वस्तु-विषय काल्पनिक जगत् से न लेकर वास्तविक जगत से लेता है। उसकी धारणानुसार साहित्य में सत्य की अभिव्यक्ति उसी दशा में हो सकती है, जब उसका मूल स्रोत शुद्ध बाह्य तथ्यों पर अवलम्बित हो। अपने इसी विश्वास के कारण वह निश्चित समस्याओं को, अपनी रचनाओं में समाविष्ट करता है।

यथार्थवादी साहित्य के सम्बन्ध में सभी विद्वान एकमत नहीं हैं। उदाहरणार्थ 'लूक्स जार्ज' के अनुसार—"सच्चे यथार्थवादी साहित्य की यह प्रमुख विशेषता है कि लेखक बिना किसी भय अथवा पक्षपात के, ईमानदारी के साथ जो कुछ अपने आस-पास देखता है, उसका चित्रण करे।"[१] मुंशी प्रेमचंद के विचार से यथार्थवाद चरित्रों को पाठकों के सम्मुख, उनके यथार्थ नग्न रूप में रख देता है। उसे इससे कुछ नाता नहीं कि सच्चरित्रता का परिणाम बुरा होता है या कुचरित्रता का परिणाम अच्छा। उसके चरित्र अपनी कमजोरियां और खूबियां दिखाते हुए अपनी जीवन-लीला समाप्त

1. George Lukaces : Study in European Realism, p. 137-138. "1t is a condition sinquanon of great realism that the another must honestly record without fear of favour everything he sees around him."

करते हैं। चूंकि संसार में बुरे चरित्रों की ही प्रधानता है, यहां तक कि उज्ज्वल से उज्ज्वल चरित्रों में भी कुछ न कुछ दाग-धब्बा रहता है, इसलिए यथार्थवाद हमारी दुर्बलता, हमारी विषमताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न-चित्रण होता है।[1] आर० एल० स्टीवेन्सन यथार्थवाद को सत्य से दूर, रचना की कलात्मक शैली मानते हैं—"यथार्थवाद का प्रश्न साहित्य में मुख्यतः सत्य से अल्पांश भी सम्बन्ध नहीं रखता। बल्कि उसका सम्बन्ध केवल रचना की कलात्मक शैली मात्र से है।"[2] 'कजामिया' की धारणा स्टीवेन्सन के विचार से सर्वथा भिन्न है। वे यथार्थवाद को साहित्य में एक शैली नहीं वरन् एक विचारधारा मानते हैं।[3]

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी यथार्थवादी साहित्य की भी प्रायः वही विशेषताएं मान लेते हैं जो मुख्यतः प्रकृतवादी साहित्य की विशिष्टताएं हैं। उनके अनुसार यथार्थवादी लेखक अपने साहित्य सर्जन के लिए कुछ कौशलों का सहारा लेता है। वह (१) वक्तव्य वस्तु के इर्द-गिर्द की प्रत्येक बात का ब्यौरेवार विवरण उपस्थित करता है और गन्दी तथा घिनौनी समझी जाने वाली चीज़ों का विशेष रूप से उल्लेख करता है। (२) वक्तव्य वस्तु के साथ अत्यन्त क्षीण सूत्र से सम्बद्ध नगण्य व्यक्तियों की चर्चा करता है। (३) सम-सामयिक घटनाओं और रीति-रस्मों का विस्तारपूर्वक उल्लेख करता है। (४) भिन्न-भिन्न पात्रों की बोलियों का लेखन करता है और उनमें यदि जुगुप्सित, अश्लील गालियां भी हों तो उन्हें ज्यों का त्यों रख देने में नहीं हिचकता। (५) भिन्न-भिन्न व्यवसाय और पेशे के लोगों की पारिभाषिक शब्दावली को चुन-चुन कर संग्रह और व्यवहार करता है। (६) घटना की सचाई का वातावरण उपस्थित करने के लिए, चिट्ठियों, सनदों और अन्य प्रामाणिक समझी जाने वाली बातों को उपस्थित करता है।[4]

---

१. प्रेमचंद : 'गद्य-तरंगिणी', उपन्यास नामक लेख, पृ० ५२

२ डॉ० त्रिभुवनसिंह : 'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ० ६

३ Cazamian : "A History of English Literature, Ch. V, Realism, p. 1199. "Realism in art is not a method but a tendency."

4. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी : 'हिन्दी साहित्य', पृ० २८

उपर्युक्त मतों में यद्यपि पर्याप्त मतभेद पाया जाता है तथापि यह कहा जा सकता है कि यथार्थवाद अपने स्वस्थ रूप में अश्लीलता का पोषक नहीं है। उसका लक्ष्य हमारी आंखें खोलना और भविष्य को दृढ़ बनाने के लिए प्रोत्साहन देना है। वह एक विशिष्ट विचारधारा है और उसकी अपनी शैली है। यथार्थवादी कलाकार फोटोग्राफर ही नहीं वरन् निर्माता भी होता है, उसकी रचना में रचनात्मक शक्ति का चमत्कार होता है। वह रोमांस, कल्पना, वास्तविकता, सामयिकता, सत्यता आदि को एक साथ प्रश्रय देता है। उसका प्रधान लक्ष्य वस्तुस्थिति का उद्घाटन करना होता है परन्तु वह कभी प्रत्यक्ष और कभी अप्रत्यक्ष रूप से सुधार की प्रेरणा भी देता है। वह घिसी-पिटी सड़कों पर चलने के विपक्ष में है और परिवर्तन में उसका विश्वास है। आवरण उसे पसन्द नहीं, वह स्पष्टवादी है और बड़ी निडरता से वास्तविकता को प्रकाश में लाता है। वह प्रत्येक युग की वास्तविकता को ढूंढता है और मानव-जीवन को विकास की राह पर अग्रसर देखना चाहता है। वर्ण्य विषय का पूर्ण चित्रण उसे अभीष्ट है और वह कोरी कल्पनाओं का विरोधी है। वह मानव जीवन को ही अपना विषय बनाता है, देवों, देवियों या परियों से उसका कोई नाता नहीं है। समसामयिक जीवन की परिस्थितियों पर वह विशेष बल देता है और सामाजिक जीवन की असंगतियों, कुप्रथाओं तथा विद्रूपताओं को देखना और दिखाना उसे मंगलकारी प्रतीत होता है।

यथार्थवादी लेखक अपने कथ्य को विश्वसनीय बनाने के लिए विशेष शिल्प-विधान का आश्रय भी लेता है—वस्तुस्थिति का पूर्ण चित्रण ही उसे आवश्यक लगता है, वह जिस किसी भी वस्तु का वर्णन करने लगता है, उसका इतने विस्तार से वर्णन करता है कि कोई भी सम्भावित वस्तु या घटना छूटने नहीं पाती, चाहे उसमें व्यर्थ का विस्तार ही क्यों न हो जाए। वह कतिपय समाचार-पत्रों की कटिंग, डायरी के पन्ने आदि देना भी अनिवार्य सा मानता है, जिससे उसका कथ्य पाठकों को सत्यता का विश्वास दिला सके।[1]

---

१. डॉ० त्रिभुवनसिंह : 'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद', पृ० १५

यथार्थवाद अत्यन्त विस्तृत विचारधारा है, उसके अनेक रूप हैं। यथा—ऐतिहासिक यथार्थवाद, समाजवादी यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, अतियथार्थवाद, आलोचनात्मक यथार्थवाद आदि। ऐतिहासिक यथार्थवादी कलाकार भूतकालीन जीवन की गतिविधियों के उद्घाटन में अपनी शक्ति व्यय करते हैं। समाजवादी यथार्थवाद को प्रश्रय देने वाले लेखक पहले समाजवादी और बाद में यथार्थवादी होते हैं। ये मानव-जीवन का निरीक्षण और अध्ययन द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से प्रभावित होकर करते हैं। मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी साहित्यकार मनुष्य के अन्तर्जगत के विविध व्यापारों के यथार्थ चित्रण को प्रधानता देते हैं और उसके आत्म-तत्व को पूर्व निश्चित पशुधर्मी तथा विकृत प्रवृत्तियों से पूर्ण सिद्ध करते हैं। अति यथार्थवादी कलाकार सामाजिक मर्यादाओं तथा परम्पराओं का अतिक्रमण कर, नग्न यथार्थ को अपना लक्ष्य बना लेते हैं। इसी से इनकी रचनाओं में अश्लीलता प्रधान बन जाती है और नैतिकतावादी उन्हें घृणा की दृष्टि से देखने लगते हैं। आलोचनात्मक यथार्थ के समर्थक यथार्थ स्थिति के उद्घाटन के साथ उसकी विवेचना और आलोचना भी करते हैं और उनका झुकाव आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद या नग्नतावाद की ओर हो जाता है।

'उग्र' के कथा-साहित्य में यद्यपि अनेक वादों के तत्व मिलते हैं तथापि कथाकार का प्रधान दृष्टिकोण यथार्थवादी ही है। उसने बाह्य तथ्यों को अपनी कृतियों का आधार बनाया है और समाज तथा देश की निश्चित समस्याओं पर विचार किया है। वह बड़ी निडरता से ऐतिहासिक एवं सामयिक अनैतिकता, दमन-चक्र तथा विद्रूपता को चित्रित करता है। उसने अपने पात्रों की अच्छाइयों, बुराइयों तथा दुर्बलताओं पर निष्पक्ष होकर प्रकाश डाला है। वह मानव-समाज के ही सबल-दुर्बल पात्रों की सृष्टि करता है, देवों, देवियों या परियों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। उसकी रचनाओं का शिल्प-विधान भी यथार्थवादी है।

निस्सन्देह 'उग्र' जीवन के कुत्सित तथा उपेक्षित पक्ष के उद्घाटन पर बल देते हैं, परन्तु उनका लक्ष्य सुधार ही है। उन्होंने पहली बार ज़मींदारों एवं कृषकों के संघर्ष के नाटक या ऐयारी, तिलस्मी एवं जासूसी चमत्कारिता का प्रहसन न खेल समाज के उस घोर यथार्थ का चित्रण किया है, जिसमें

तत्कालीन समाज पतनोन्मुख हो रहा था। उन्होंने ही समाज के घृणित परिवेश का द्वार खोला था, जिसमें मनुष्यता अपने खण्डित रूप में आर्तनाद कर रही थी, और नारियां पुरुष के छल, कपट एवं कामलोलुपता की वेदी पर अपने सतीत्व एवं मर्यादा को बलिदान कर रही थीं। यह एक कठिन कार्य था, जिसे उन्होंने बड़े उत्साह से किया।[१]

यथार्थवाद के विविध रूपों में 'उग्र' ऐतिहासिक यथार्थ, आलोचनात्मक यथार्थ और अति यथार्थ को यथास्थान अपनाते हैं। 'पंजाब की महारानी' 'काल कोठरी' आदि कहानी-संग्रहों में वे ऐतिहासिक यथार्थ को प्रश्रय देते हैं, शेष रचनाओं में प्रायः आलोचनात्मक यथार्थवाद का निर्वाह करते हैं, परन्तु कतिपय स्थलों पर अतियथार्थ का भी आश्रय लेते हैं। उसी से नग्नता अपनी सीमा का उल्लंघन कर जाती है और उनके साहित्य पर 'घासलेटी' का आरोप लगाने का अवसर आलोचकों को मिल जाता है। किन्तु कथाकार का एकमात्र दृष्टिकोण अति यथार्थवादी नहीं है, वह पशु सुलभ रति-सम्बन्धी सुविधाओं को, मानव समाज के लिए नहीं चाहता है, उसका यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि नर-नारियों को कामवासना की पूर्ति के लिए स्वच्छन्द विचरने दिया जाए और स्वस्थ सामाजिक बन्धनों को भी छिन्न-भिन्न कर दिया जाए। वह नारी को केवल भोग्या नहीं मानता है, उसे मातृत्व की शक्ति से सम्पन्न और देश तथा समाज के लिए त्याग-मूर्ति के रूप में भी चित्रित करता है। 'जीजीजी' की प्रभा वासना के दलदल को नहीं, वरन् मातृत्व को जीवन का लक्ष्य बनाती है। वह अपने विलासी, कामुक तथा व्यभिचारी पति के आगे घुटने नहीं टेकती है, अपने मातृ गुणों का ही प्राण-पन से पोषण करते हुए दम तोड़ती है।

'पंजाब की महारानी' और 'काल कोठरी' कहानी-संग्रहों में कथाकार का दृष्टिकोण ऐतिहासिक यथार्थवादी रहा है। इन कहानियों में तथाकथित अश्लीलता भी प्रायः नहीं मिलती है। इनका लक्ष्य ब्रिटिश शासन के अत्याचारों या ज़ारशाही के दमन-चक्र को पाठकों के सम्मुख रखना है। उसने ऐतिहासिक तिथियों, घटनाओं आदि पर अधिक बल न देते हुए,

१. डॉ० सुरेश सिन्हा 'हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास', पृ० १९२

ऐतिहासिक जीवन की यथार्थ गतिविधियों को ही उभारा है। सन् १८५७ के राष्ट्रीय जागरण तथा उससे कुछ पूर्व की राजनैतिक परिस्थितियों का वास्तविक चित्र अंकित करना उसका प्रधान लक्ष्य रहा है। उसने बिना किसी भय या संकोच के सत्य के उद्घाटन में अपनी कला का उपयोग किया है, जिससे ब्रिटिश सरकार के अधिकारी अत्यधिक कुपित हुए और उन्होंने उसकी अनेक रचनाओं को जब्त कर लिया। किन्तु सत्य अमर है, उसकी शक्ति अटूट है, इसी का सजीव प्रमाण देती हुई, उसकी वे रचनाएं पुनः पाठकों के सामने आईं और कथाकार के महत्त्व का उद्घाटन कर रही हैं और करती रहेंगी। इन कहानियों की 'उग्र-शैली', कटु सत्य और प्रभावोत्पादकता अपूर्व है।

'उग्र' की अधिकांश कृतियां आलोचनात्मक यथार्थ को ही मुख्यता प्रदान करती हैं। उन्होंने सामाजिक असंगतियों, कुरूपताओं, अनाचारों तथा कुप्रथाओं की यत्र-तत्र आलोचना की है। आलोचना करने से पूर्व उन सभी विद्रूपताओं का यथार्थवादी या अति यथार्थवादी शैली में उद्घाटन किया है। अपने 'उग्र' स्वभाव के कारण वे सभी कुछ निस्संकोच भाव से, स्पष्ट शब्दों में कहते चले गए हैं। लुकाव-छिपाव उन्हें पसन्द नहीं, बुराई के निराकरण के लिए उसका यथार्थ रूप पाठकों के सामने रखने में उन्हें समाज-मंगल प्रतीत हुआ है। उनकी रचनाएं ऐक्स-रे फोटो का कार्य करती हैं, जिनके अवलोकन से हम रोग का वास्तविक रूप जानकर उचित उपचार करा सकते हैं। उनमें जो बुराई या अश्लीलता दिखाई देती है, वह तो समस्या का मूल रूप है, उसे कथाकार का लक्ष्य समझना असमीचीन है। उसने नग्नता या अभद्रता को साधन रूप में ही ग्रहण किया है, साध्य रूप में नहीं। वह व्यभिचार का प्रचारक नहीं, वरन् उसका घोर विरोधी है। उसने अपने नर-पिशाचों की दानवी-लीलाओं का समर्थन नहीं किया है अपितु उन्हें पाप-कर्मों का कठोर-से-कठोर दण्ड पाते दिखाया है। उसके वे पात्र या तो आजन्म कालापानी का दण्ड पाते हैं या तड़प-तड़प कर प्राण देते हैं। 'मनुष्यानन्द' में भोली-भाली नारियों को अपने पाप-जाल में फंसाने वाला मौलवी लियाकत हुसैन आत्मग्लानि की आग में जलता है, तड़पता है और उस अज्ञात शक्ति के सामने गिड़गिड़ाता हुआ कहता है—'अब खत्म करो,

ए मेरे खुदा ! इस दोजखी जिन्दगी का किस्सा अब खत्म करो ! बेशक-बेशक, मेरे गुनाह बहुत बड़े-बड़े हैं। बेशक मुझे घुल-घुलकर और तड़प-तड़पकर मरना चाहिए। मैंने सैकड़ों भोले दिलवालों को, अपने मन के शौक के लिए ठगा है—मगर, मेरे मालिक ! अब तो बहुत सांसत हो चुकी मेरी। उन गुनाहों के लिए मुझे चार बरसों तक जेल में रहना पड़ा—यही कहां कम था। इसके बाद जब से बाहर आया हूं तब से मुसीबत ही तो झेल रहा हूं। मेरे भाई मर गये, उनकी दुकानें नष्ट हो गईं, हमारा वह गुनाहों का अड्डा मकान भी नेस्तोनाबूद हो गया। अब मेरा कोई सुधलेवा नहीं।'[1] इस कथन में बुराई का पोषण नहीं, उसकी आलोचना ही की गई है। कथाकार पाप-लीलाओं की विजय नहीं, पराजय ही दिखाता है, उसके दुष्ट पात्रों का अन्त नारकीय अवस्था में ही होता है। वे दर-दर की ठोकरें खाते हैं, कथाकार उनके प्रति सहानुभूति के स्थान पर कठोरता का व्यवहार करता है। वह तो इस भ्रान्ति का भी निवारण करता है कि कानून से बच जाने पर कोई पापी सुख-शान्ति से रह सकता है। 'फागुन के दिन चार' की मिस रोज़ के पाप प्रमाणित नहीं हो पाते हैं, सरकार उसे दण्ड देने में असमर्थ है परन्तु कथाकार के शब्दों में—'मिस रोज़ दण्ड से बच गई ऐसा जो कहते थे उन्होंने इस तथ्य पर गौर किया होता तो जरूर उनका समाधान हो जाता कि जिसका सारा जीवन ही दण्ड—अभिशाप—की तरह रहा हो उसके कपाल में न्यायालय का कटघरा न लिखा जाए तो भी न्याय होगा। पंजाबी युवक को त्यागकर जब मिस रोज दिल्ली से बम्बई लौटी—उसी दिन पुलिसवालों ने उसे दबोच लिया था।···तीन महीने तक सुबह और शाम पुलिस वाले उसी की पी और खाकर उसी की सेज पर उसकी काया का कचरा करते रहे। और वह विवश थी, यह सब करने-कराने को। क्या यह दण्ड नहीं ? क्या यह मृत्यु-दण्ड से कम है ?'[2] इन पंक्तियों के लेखक को बुराई या व्यभिचार का समर्थक नहीं कहा जा सकता है, वह तो उसकी निन्दा करता है, व्यभिचारी नर-नारियों के प्रति पाठकों के हृदय

---

१. 'मनुष्यानन्द', पृ० २१४-२१५

२. 'फागुन के दिन चार', पृ० २४२

में घृणा तथा उपेक्षा के भाव जगाता है। उसका उद्देश्य पापी जीवन का प्रसार नहीं है, वह तो पाशविक जीवन का भयानक अन्त दिखा कर अपने पाठकों को सावधान करता है कि स्वच्छन्द भोग या विश्वासघात का परिणाम मनुष्य का सर्वनाश कर देता है।

आलोच्य कथाकार ने कामुक नर-नारियों के आरम्भिक जीवन के जो नग्न चित्र अंकित किए हैं, उनमें अश्लीलता अवश्य आ गई है, वह चाहता तो सांकेतिक रूप में भी वस्तुस्थिति का उद्‌घाटन कर सकता था, अपनी रचनाओं को अश्लीलता के दोष से बचा सकता था। किन्तु यथार्थवादी कलाकार आवरण को पसन्द नहीं करता है, स्वतन्त्रता में उसका विश्वास है और निडरता उसके रोम-रोम में बसी होती है। वह दूसरों की आलोचना के भय से अपनी लेखनी को किसी बन्धन में नहीं बांधता, वह ईमानदारी के साथ जो कुछ अनुभव करता है, अपनी रचनाओं में अंकित कर देता है। 'उग्र' के फक्कड़ तथा प्रचण्ड व्यक्तित्व में भी यही दृष्टिकोण प्रधान है, वे सांकेतिक पद्धति या आवरणमयी शैली को अनावश्यक समझकर यथार्थवादी पद्धति का आश्रय लेते हैं और आवेश में आकर अति यथार्थवादी लेखकों के समान स्वतन्त्र-सा हो जाते हैं। किन्तु उनका मूल दृष्टिकोण यथार्थवादी या आलोचनात्मक यथार्थवादी ही है। प्रकृतवाद या अति यथार्थवाद को यदि वे लक्ष्य बनाते तो स्वच्छन्द भोग में आस्था रखने वाले पात्रों का अन्त इतना भयानक तथा नारकीय न दिखाते। वे पात्र आत्मग्लानि में जल-जलकर राख न होते। 'फागुन के दिन चार' का विलासी जगरूप जिस पश्चात्ताप और आत्मग्लानि को व्यक्त करता है, वह इस तथ्य का प्रमाण है कि कथाकार स्वच्छन्द विलास का समर्थक नहीं है। उसकी आत्मा व्यभिचार के पक्ष में नहीं, विरोध में चिल्ला-चिल्लाकर कहती है—"जगरूप तू जानता है? तू अपनों को छोड़कर बनारस से बम्बई आया था केवल अपने सुख के मोह में तो? जल्द-से-जल्द नवाबी-मज़े लेने। ऐसी कमाई करने जिससे जिन्दगी इन्द्रसभा नाटक की तरह बराबर रंगीन बनी रहे। देख तो तू अपनी देह! देख तू अपनी सूरत। ओरे आत्म-पोषी! महज़ अपने को चाहने वाला कहां-से-कहां पहुंचा है, देख तो! तू काशी में, कुल में, कुलीनता की सीमा से रहता तो क्या तेरी ऐसी

गति होती ?"[१] इस प्रकार की आत्मग्लानि दिखाने वाले कथाकार को नग्नता या पाशविक भोग-वासना का प्रचारक नहीं माना जा सकता है। मनुष्य को पशु की भांति स्वतन्त्रता दिलाना उसका लक्ष्य नहीं है, वह संयत तथा सदाचारी जीवन की स्थापना ही चाहता है और उसके लिए बुराई का ठीक-ठीक रूप पाठकों के सामने रखना आवश्यक समझता है। उसने सामाजिक व्यभिचार को दिखाने में कहीं-कहीं संयम अवश्य खो दिया है, परन्तु उससे उसका दृष्टिकोण अन्यथा नहीं समझना चाहिए। उसकी कुछ रचनाएं अभद्रता के दोष से बच नहीं पाई हैं, उनमें तथाकथित अश्लीलता विद्यमान है, किन्तु नग्नता ही उनका प्रतिपाद्य विषय नहीं है।

'उग्र' के कथा-साहित्य में यथार्थवादी विशेष शिल्पविधान के कतिपय तत्व भी मिलते हैं। वे अपनी कुछ रचनाओं में कथ्य को विश्वसनीय बनाने के लिए समाचार पत्रों की कटिंग पद्धति को अपनाते हैं। उदाहरणार्थ 'दिल्ली का दलाल' की भूमिका में वे लिखते हैं—'नई दिल्ली, ८ अक्तूबर, १९६४। पुलिस ऐसे कई आदमियों की तलाश सारे राज्य में कर रही है जिन पर चौदह साल की एक स्कूल-गर्ल पर बरबस बलात्कार का आरोप है।...नई दिल्ली, १० अक्तूबर, दिल्ली की स्कूल कन्या पर बलात्कार वाले मामले में पुलिस ने कमला मार्केट के एक व्यापारी को कल गिरफ्तार कर लिया।...उन दस-बारह आदमियों की भी खोज जारी है जिन पर उस कन्या पर बलात्कार करने का आरोप है।'[२] इसी प्रकार 'फागुन के दिन चार' के मुखड़ा में 'ब्लिट्ज़' के भावों को अपने कथ्य की पुष्टि के लिए रखा गया है। यथार्थवादी शिल्प के अनुसार ही आलोच्य कथाकार जिस किसी वस्तु का वर्णन करने लगता है, उसका वर्णन बहुत दूर तक करता चला जाता है, उसकी शैली में व्यर्थ का विस्तार तथा अनावश्यक वर्णन भी आ जाते हैं। वह मुख्य वस्तुओं के स्थान पर नगण्य वस्तुओं के विवेचन और विश्लेषण में तल्लीन हो जाता है। वह व्यास शैली में कथ्य को स्पष्ट तथा विस्तार के साथ चित्रित करता है। उसका व्यंग्य-विधान भी स्पष्टता लिए

---

१. 'फागुन के दिन चार', पृ० २४२
२. 'दिल्ली का दलाल', भूमिका

हुए है, उसमें दुराव-छिपाव कम और तीक्ष्णता अधिक मिलती है।

संक्षेप में 'उग्र' का दृष्टिकोण यथार्थवादी है, उसे प्रकृतवादी या नग्नतावादी कहना समीचीन नहीं है। उनके कथासाहित्य में यद्यपि प्रकृत-वाद, अतियथार्थवाद, ऐतिहासिक यथार्थवाद, आलोचनात्मक यथार्थवाद आदि के कतिपय तत्वों का एकसाथ समावेश मिलता है, तथापि वे मूलतः यथार्थवादी ही हैं। उनका झुकाव एक ओर भारतीय आदर्शवाद की ओर लक्षित होता है और दूसरी ओर पश्चिमी यथार्थवाद की ओर, परन्तु भारतीय संस्कारों का प्राधान्य होने के कारण वे यत्र-तत्र संयम, सदाचार तथा नैतिकता का समर्थन करते हैं। उन्होंने प्रकृतवाद और अति यथार्थवाद के कतिपय तत्त्वों को समाज-सुधार के उद्देश्य से ही अपनाया है। वे नग्नता या अभद्रता का प्रसार नहीं वरन् उपचार चाहते हैं और 'विषयस्य विषमौषधम्' की धारणा की पुष्टि करते हैं। उनके कथा-साहित्य की अश्लीलता साधन है, साध्य नहीं। उन्होंने सामाजिक अनाचारों, असंगतियों तथा विद्रूपताओं की कड़ी आलोचना करना अपना कर्तव्य समझा है। उनका दृष्टिकोण आलोचनात्मक यथार्थ-वादी-सा है, वह कहीं तो आदर्शोन्मुखी है और कहीं नग्नतावादी-सा जान पड़ता है। वे मूलतः भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति में आस्था रखते हैं, किन्तु उसके अस्वस्थ रूप को देखकर उनका 'उग्र-व्यक्तित्व' अत्यधिक उत्तेजित हो जाता है और वे यथार्थवाद की सीमा का उल्लंघन भी कर जाते हैं। उन्होंने स्वस्थ परम्पराओं, मानवीय मूल्यों तथा आदर्शों का कहीं भी विरोध नहीं किया है। वे राष्ट्रीय चेतना से भी अत्यधिक प्रभावित हुए हैं। उनकी अनेक कहानियां उनके देशप्रेम तथा क्रान्तिकारी विचारों की परिचायक हैं। उनके सामाजिक उपन्यास प्रकृतवादी और अतियथार्थ-वादी दृष्टिकोण का आभास इसलिए देने लगते हैं कि वे सामाजिक व्यभिचार पर लिखते समय सांकेतिक शैली से काम नहीं लेते हैं और जो कुछ देखते या अनुभव करते हैं, उसी को कल्पना के सहयोग से कहते चले जाते हैं। उनके स्वभाव की उग्रता किसी बन्धन को स्वीकार नहीं करना चाहती और वे आत्माभिव्यक्ति को ही सर्वस्व मान लेते हैं।

उग्र के कथा-साहित्य की शिल्पविधि

शिल्पविधि का बोध अंग्रेजी के 'टेकनीक' शब्द से किया जाता है। टेकनीक का अर्थ है, ढंग, विधान,तरीका, जिसके माध्यम से किसी लक्ष्य की पूर्ति की गई हो। यह लक्ष्य भौतिक जीवन में किसी वस्तु अथवा मनोवांछित तत्व की प्राप्ति से सम्बन्ध रखता है और कला के क्षेत्र में इस लक्ष्य से अभिप्राय है—सम्पूर्ण भावाभिव्यक्ति का प्रकार। कला के विभिन्न तत्वों अथवा उपकरणों की योजना का वह विधान, वह ढंग जिससे कलाकार की अनुभूति अमूर्त से मूर्त हो जाए।[१]

शिल्पविधि ही एक ऐसा साधन है, जिसके द्वारा कलाकार अपने भावों और विचारों को वाणी देता है। इसलिए प्रत्येक कलाकार अपनी शिल्पविधि को विषयानुरूप उत्तमोत्तम रूप देने के लिए प्रयत्नशील रहता है। उससे शिल्पविधि में गत्यात्मकता तथा परिवर्तनशील का संचार होता रहता है। तोलस्तोय तो यहां तक कहते हैं कि प्रत्येक कलाकार अनिवार्यत: अपने फार्म की भी सर्जना करता है।[२] स्टीवेनसन के विचारानुसार—'सच्चा कलाकार प्रत्येक नए विषय के साथ अपनी विधि को अन्यविध (vary) करता जाएगा।'[३] कलाकार युग एवं समाज की परिवर्तनशीलता को आत्म-

१. डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल : 'हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास', द्वितीय संस्करण, पृ० २

see 'Novelist on the Novels', p. 265.

2. 'I think that every great artist necessarily creates his own form also.'
3. Robert Rouis Stevenson, 'AHumble Remonstrance' (1884), quoted from 'Novelist on the Novels', p. 82—'with each new subject—the true artist will vary his method.'

सात् करने के निमित्त भी अपनी शिल्पविधि को नवीन रूप देते हैं। उनकी कला के विकास में शिल्पविधि के नए-नए रूप बड़े उपयोगी सिद्ध होते हैं।

शिल्प की सार्थकता विषय के अधिक से अधिक अनुकूल होकर प्रभावपूर्ण प्रेषणीयता में निहित है। विषय को उसकी स्वाभाविक अनुकल शिल्पविधि मिली है या नहीं, इस बात की जांच इस प्रकार हो सकती है : क्या पढ़ने के उपरान्त आलोच्य रचना की कल्पना किसी और प्रकार से की जा सकती है, या, आपकी कल्पना पूर्णतः परिपुष्ट हो गई है और आपको रचना का वही रूप पूर्ण तथा अन्तिम लगता है।[1]

'उग्र' के कथा-साहित्य की शिल्पविधि पर विचार करते समय दो खण्ड बनाने आवश्यक हैं, प्रथम खण्ड में उनकी कहानियों की शिल्पविधि पर प्रकाश डाला जाएगा और दूसरे खण्ड में उनके उपन्यासों के शिल्प-विधान का विवेचन किया जाएगा। कहानी और उपन्यास, एक ही परिवार के दो भिन्न-भिन्न सदस्य हैं, जिनका शिल्प-विधान एक दूसरे से पर्याप्त भिन्न है। कहानी, उपन्यास का लघु संस्करण नहीं है, उसकी अपनी शिल्पविधि है। उपन्यास, एक सीमा तक, कहानी का विस्तृत रूप होने पर भी, एक स्वतंत्र विधा है और उसका शिल्प-विधान भी अपना है।

(क) कहानी-साहित्य की शिल्पविधि

कहानी की शिल्पविधि से तात्पर्य उसकी रचना-प्रक्रिया से है। कहानी की रचना-प्रक्रिया के प्रधान उपकरण हैं--कथानक, पात्र एवं चरित्र-चित्रण, भाषा और संवाद। इन्हीं उपकरणों से कहानी का संघटन होता है। ये उपकरण परस्पर भलीभाँति गुंथे हुए हैं और एक का कार्य दूसरे के सहयोग से ही सम्पन्न होता है। 'उग्र' के कहानी-साहित्य की शिल्पविधि की आलोचना करते समय कहानी के इन्हीं प्रधान उपकरणों को ही दृष्टि में रखना अधिक समीचीन होगा।

---

१. डॉ० सत्यपाल चुघ : 'प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि,' पृ० ११

कथानक

यह उपकरण कहानी का मेरुदण्ड है। इस उपकरण के अभाव में कहानी की कल्पना करना आकाश कुसुमवत् है। वर्ण्य-विषय के आधार पर कहानी का कथानक ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, पौराणिक प्रतीकात्मक, भावात्मक, विचारात्मक, कलात्मक, जासूसी, मनोवैज्ञानिक, हास्य-व्यंग्यात्मक आदि कई प्रकार का हो सकता है। रचना-लक्ष्य या दृष्टिकोण के विचार से वह आदर्शवादी, यथार्थवादी, प्रकृतवादी आदि हो सकता है। रचना-शैली के अनुसार वह कथात्मक, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक, कथोपकथनात्मक आदि शैलियों में निर्मित हो सकता है। उसके विकास की प्रमुख अवस्थाएं हैं—प्रारम्भ, विकास, कौतूहल, चरम-सीमा और अन्त। कहानीकार जीवन के किसी भी पहलू को वर्ण्य-विषय बना सकता है और किसी भी शैली में कथ्य को अभिव्यक्ति दे सकता है, किन्तु उसके प्रतिपाद्य के अनुरूप ही शिल्पविधि का होना आवश्यक है।

'उग्र' की कहानियां सुनिश्चित कथानक लेकर चलती हैं। वे वर्ण्य-विषय के आधार सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, भावात्मक एवं हास्य-व्यंग्यात्मक कथानक लिए हुए हैं। 'पोली इमारत' कहानी-संग्रह की अधिकांश कहानियों के कथानक सामाजिक हैं। इनमें भारतीय समाज की कुरीतियों, असंगतियों तथा अनाचारों का यथार्थ चित्रण हुआ है। कथाकार रूढ़िवाद, अन्धविश्वास और पाखण्ड के विरुद्ध विद्रोह-भाव को प्रश्रय देता है। उसने सुधार की भावना से ही सामाजिक कुसंस्कारों पर कुठाराघात किया है। उसके सामाजिक कथानकों में समाज के कुत्सित अंगों का स्पष्ट विवेचन होने से, अश्लीलता भी आ गई है।

'काल कोठरी' कहानी-संग्रह की कहानियों के कथानक ऐतिहासिक हैं। ये देश और विदेश के इतिहास की विविध घटनाओं तथा पात्रों को लेकर निर्मित हुए हैं। 'पंजाब की महारानी', 'देशद्रोह', 'रेन आफ टेरर', 'सिक्ख-सरदार' आदि कहानियों के कथानक भारतीय इतिहास से सम्बन्धित हैं, इनमें सन् १८५७ के आस-पास की घटनाओं एवं ऐतिहासिक पात्रों का वर्णन एवं विश्लेषण हुआ है। 'प्यारी पताका', 'पागल', 'वीर-कन्या', 'पवित्र

पताका' आदि कहानियों के कथानक जापानी, रूसी तथा कोरियाई इतिहास से घटनाओं एवं पात्रों का निर्वाचन करते हैं। कथाकार ने सुप्त जनता को जगाने के लिए इन कहानियों का सृजन किया है। उसने एक ओर ईस्ट इण्डिया कम्पनी और ब्रिटिश सरकार के अधिकारियों के दानवी दमन-चक्र को दिखाकर उत्साह-भाव को उद्दीप्त किया है और दूसरी ओर जापानी, रूसी तथा कोरियाई क्रांति का वर्णन करते हुए भारतीय जनता में क्रान्ति का नव-मन्त्र फूंका है। उसकी कहानियों के ये कथानक देश प्रेम की शाश्वत भावनाओं को प्रश्रय देते हैं।

'ऐसी होली खेलो, लाल' कहानी-संग्रह की कहानियों के कथानक राष्ट्रीय चेतना से प्रभावित हैं। उन्हें राजनैतिक कथानकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है। 'उग्र' ने अपने आरम्भिक साहित्यिक जीवन-काल में, राजनैतिक कथाओं को लेकर ही इस क्षेत्र में पदार्पण किया था। उच्च कलापूर्ण राजनैतिक कहानियों का सूत्रपात उन्हीं से हुआ। इन कहानियों में 'उग्र' भारतीय स्वाधीनता-आन्दोलन में सम्मिलित होने वाले नवयुवकों और नवयुवतियों के साहस, देशप्रेम, जीवनोत्सर्ग की भावनाओं को बड़े सशक्त रूप में प्रस्तुत करते हैं। इन्हीं कथानकों के माध्यम से उनका राष्ट्रीय व्यक्तित्व साकार हो उठा है। वे ब्रिटिश सरकार के अमानुषिक अत्याचारों को बड़ी निर्भीकता से अंकित करते हैं। इन कहानियों में गांधीवादी मान्यताओं को यत्र-तत्र महत्त्व प्राप्त हुआ है। कथाकार का 'उग्र' व्यक्तित्व भी इन कहानियों के कथानकों को प्राणवान बनाता है। उनकी प्रभावोत्पादकता तथा उग्रता से भयभीत होकर ही ब्रिटिश सरकार ने उन्हें जब्त कर लिया था और उनके निर्माता को कारावास-दण्ड दिया था। 'उसकी मां' इन कहानियों में सर्वोच्च स्थान रखती है।

'उग्र' ने सामाजिक, ऐतिहासिक तथा राजनैतिक कथानकों के अतिरिक्त प्रतीकात्मक, भावात्मक तथा हास्य-व्यंग्य-प्रधान कथानकों को भी प्रश्रय दिया है। इनका रचना-काल सन् १९२० से प्रारम्भ हो जाता है और यह समय छायावादी तथा रहस्यवादी प्रवृत्ति के प्रभुत्व का है। ये उससे प्रभावित हुए बिना न रहे। इन्होंने भी सीधी-सादी बातों को प्रतीक-कथाओं तथा भाव-कथाओं में ढाला। इनके 'मुक्ता' कहानी-संग्रह की अधि-

कांश कहानियों के कथानक प्रतीकात्मक, भावात्मक तथा लाक्षणिक हैं। प्रत्येक कहानी की कथावस्तु में उसके पीछे विद्यमान रहने वाले भाव का महत्त्व है। इनके आकार लघु हैं। इन कहानियों की कथाओं में रवीन्द्रनाथ ठाकुर की लघुकथाओं जैसा कवित्वमय व्यंग्य भी है, और खलील जिब्रान की लघुकथाओं जैसी धार्मिकता एवं वस्तुस्थितियों के प्रति अकुण्ठित आक्रोश भी है। इनके ये कथानक कवि-हृदय का कोरा हाहाकार ही अभिव्यंजित नहीं करते हैं, सामाजिक परिस्थितियों और समस्याओं का यथार्थ चित्रण करते हुए उन पर सुनियोजित व्यंग्य भी करते हैं।[1] सामाजिक चेतना के समावेश से इन कथाओं के महत्व में वृद्धि हुई है और ये अमर कहानियों का रूप धारण कर सकी हैं। 'उग्र' के कहानी-साहित्य में इन कहानियों का स्थान अन्यतम है।

'उग्र' विरचित 'गंगा, गंगदत्त और गांगी', 'मूसल ब्रह्म', 'काने का ब्याह,' 'पिशाची' आदि कहानियों के कथानक हास्य-व्यंग्य प्रधान हैं। ये कहानियां 'चित्र-विचित्र' नामक कहानी-संग्रह में संकलित हुई हैं। इन कहानियों के कथानकों में हास्य का अलमस्त फक्कड़पन और व्यंग्य में दुधारी तलवार का तेज तीखापन मिलता है। कथाकार आदर्शवादी तथा रूमानी कथाओं के भावुकतापूर्ण वातावरण में भी हास्य और व्यंग्य के अवसर निकाल लेता है। उसने काशी के धर्मावतारों, सामाजिक पंडों, धनलोलुप सेठों तथा कामुक ब्राह्मणों पर सोद्देश्य व्यंग्य-प्रहार किए हैं। ये व्यंग्य व्यक्तिगत आक्षेप न होकर, समाज के विभिन्न दुर्गुणों एवं दुर्नीतियों पर किए गए कटाक्ष हैं।

रचना-लक्ष्य की दृष्टि से 'उग्र' की अधिकांश कहानियों के कथानक यथार्थवादी हैं, उनमें प्रकृतवाद, अति-यथार्थवाद, आलोचनात्मक यथार्थ-वाद और आदर्शवाद के कतिपय तत्वों का समावेश भी हुआ है। 'मों को चूनरी की साध', 'आंखों में आंसू', 'नौ हज़ार नौ सौ निन्यानवे,' 'विधवा' आदि कहानियां इसी प्रकार की हैं। इनके कथानक पतनोन्मुख समाज की गतिविधियों को चित्रित करते हैं। इनमें नग्नता, अश्लीलता आदि का दोष

---

१. 'मुक्ता', भूमिका, राजकमल चौधरी।

भी आ गया है। कथाकार सामाजिक कुरूपता को देखने और दिखाने में ही अपने कथानकों की सार्थकता समझता है। उसे अपने लक्ष्य में एक सीमा तक सफलता भी मिली है।

'ध्रुव धारणा', 'प्रस्ताव स्वीकार', 'स्वदेश के लिए' आदि कतिपय कहानियों के कथानक आदर्शवादी हैं। इनके माध्यम से कथाकार अपने राष्ट्रीय दृष्टिकोण को व्यक्त करता है। त्याग, साहस और बलिदान के भावों से ओत-प्रोत होने के कारण ये कहानियां बड़ी प्रभावशाली बन गई हैं। इनके कथानक अशिष्टता, अभद्रता आदि दोषों से सर्वथा मुक्त हैं; हमारे उत्साह-भाव को उत्तेजित करते हैं और सच्ची राष्ट्रीयता की सीख सिखाते हैं।

रचना-शैली के विचार से 'उग्र' की कहानियों के कथानक वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक, कथोपकथनात्मक, संस्मरणात्मक आदि शैलियों में निर्मित हुए हैं। कथाकार ने प्रतिपाद्य-विषय तथा परिस्थिति-विशेष के अनुरूप विविध शैलियों का उपयोग किया है। सम्भवतः इसी से उसे पुरानी पीढ़ी का प्रमुखतम शैलीकार माना जाता है। परम्परागत शैलियों के साथ-साथ, उसने नवीन शैली को भी जन्म दिया, जिसे सामान्यतः 'उग्र-शैली' की संज्ञा प्रदान की जाती है।

'बीभत्स', 'नौ हज़ार नौ सौ निन्यानवे', 'अभागा किसान', 'ब्राह्मण-द्रोही' आदि अनेक कहानियों के कथानक वर्णनात्मक शैली में निर्मित हुए हैं। इनमें कथाकार पर्दे की ओट में सारी बातें सुनाता रहता है। उसकी स्थिति इतिहासकार के समान है। वह बीच-बीच में वार्तालाप-पद्धति का भी आश्रय लेता है। उस दशा में पात्रों के प्रत्यक्ष वार्तालाप कथा को गति देते हैं। उदाहरणार्थ 'बीभत्स' कहानी में लोभी सुमेरा की भयानक जीवन गाथा वर्णनात्मक शैली में ही अंकित हुई है। कथाकार तटस्थ रहकर घट-नाओं का वर्णन करता है और बीच-बीच में संवादों के माध्यम से कथा को गति देता है—"क्या मजूरी मिलेगी ?" व्यापारिक उत्सुकता से सुमेरा ने दरियाफ़्त किया।

"एक रुपया फ़ी मुर्दा। पांच हैं। गंगाजी हमारे हाट से पांच कोस पर पड़ती हैं। चलोगे ?"

"मैं तो अनूपशहर जाता हूं। मजदूरी तो बहुत कम है, काम बड़े खतरे का।"

"चलो, तो चलो, चार आने और ले लेना।"

बैलों को एक चाबुक मार तेज बढ़ाते हुए सुमेरा ने कहा—"काम खतरे का है, दो रुपया मुर्दा मिले, तो चलूं।"[1]

'उग्र' कृत 'यह कंचन-सी काया तेरी', 'ऐसी होली खेलो, लाल', 'मां कैसे मरी ?', 'घोड़े की जीवनी', 'जुआरी', जल्लाद', 'दूध के कार्ड', 'रमा बी० ए०', 'कम्युनिस्ट दरवाजे पर', 'सोसायटी आफ डेविल्स', 'पीर', 'आज़ादी से आठ दिन पहले', 'मेरी मां' आदि कहानियों के कथानक आत्म-कथात्मक तथा संस्मरणात्मक शैली में निर्मित हुए हैं। कथाकार प्रथम पुरुष में कथा कहता है और अपने आपको किसी पात्र से सम्बद्ध कर देता है। वह सारी कथा जीवन-चरित्र के रूप में कहता है। परन्तु इसका सर्वथा यह अर्थ नहीं होता कि उसमें लेखक का आत्म-चरित्र निहित है।

आलोच्य कथाकार ने पत्रात्मक शैली में भी कुछ कहानियां लिखी हैं। यथा—'हत्यारा समाज', 'जैतू में', 'सिक्ख सरदार' आदि। इन कहानियों का आरम्भ वर्णनात्मक या आत्मकथात्मक शैली में होता है और उसके उपरान्त कथाकार अधिकांश घटनाओं को पत्रों के माध्यम से प्रकाश में लाता है। परन्तु, पत्रात्मक-पद्धति का जो सौष्ठव पत्रों के उत्तर-प्रत्युत्तर के रूप में अभीष्ट होता है, वह इन कथाओं में कम मिलता है। इन कहानियों के कथानक अपने प्रतिपाद्य-विषय की दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण हैं, शैली की दृष्टि से उनका महत्त्व गौण है।

'दित वारिया', 'स्वदेश के लिए', 'सुधारक' आदि कहानियों के कथा-नक प्रधानतः संवाद-पद्धति में निर्मित हुए हैं। इनमें कहानीकार घटनाओं को गतिशील, रोचक तथा प्रभावशाली बनाने के लिए पात्रों के प्रत्यक्ष संवादों का आश्रय लेता है। इन कहानियों में वर्णनात्मक अंश इधर-उधर अथवा बहुत कम हैं। घटनाओं की व्याख्या में कतिपय वाक्यों का ही प्रयोग होता है। कथाकार संक्षिप्त, सरस, सजीव तथा आवश्यकतानुसार तीखे

---

१. 'पोली इमारत', 'वीभत्स', पृ० ३७-३८

संवादों के माध्यम से ही कथानक को प्रभावोत्पादक बनाता है। संवादों के द्वारा ही, पात्रों का चरित्र प्रकाश में लाया जाता है, और कथाकार अपनी मान्यताओं को अभिव्यक्त करता है।

उग्र अपनी कहानियों के आरम्भ, विकास, कौतूहल, चरम-सीमा और अन्त के लिए किन-किन विधानों का उपयोग करते हैं ? इसका पृथक्-पृथक् विवेचन इस प्रकार से होगा—

आरम्भ—'उग्र' अपनी कहानियों के आरम्भ अनेक पद्धतियों से करते हैं। जैसे—कथोपकथनों द्वारा, पात्र के जीवन का परिचय देते हुए, किसी दृश्य को प्रस्तुत करते हुए तथा घटनाओं को सामने लाते हुए। 'सुधारक', 'स्वदेश के लिए', 'अभागा किसान', 'नागा नरसिंहदास', 'ध्रुव धारणा' आदि कहानियों के कथानक पात्रों के पारस्परिक वार्तालापों से आरम्भ होते हैं। इस पद्धति का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

युवक ने पूछा, "स्वर्ग कहां है ?"

पादरी ने उत्तर दिया, "स्वदेश-सेवा में।"

पुनः प्रश्न हुआ, "किस कार्य के करने से अद्वितीय पुण्य की प्राप्ति होती है ?"

उत्तर मिला, "स्वदेश-द्रोहियों का दमन।"

युवक—"सबसे बड़ा सुख किसे मिलेगा ?"

पादरी—"स्वदेश के ऊपर बलि चढ़ जाने से।"[१]

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि कथाकार प्रारम्भ में ही, ढोल पीटकर मुनादी करने वाले की तरह, कथ्य को स्पष्ट रूप में कह देना समीचीन समझता है। उद्देश्य को घुमा-फिराकर व्यक्त करना उसे अभीष्ट नहीं।

'मों को चूनरी की साध', 'चौड़ा छुरा', 'मूर्खा', 'बदमाश', 'मलंग' आदि कहानियों के कथानकों का प्रारम्भ पात्रों के जीवन-परिचय से होता है। कथाकार मुख्य पात्र के जीवन-परिचय के माध्यम से मूल संवेदना को सांकेतिक रूप में प्रकाशित करता है। यथा—"अजीब लड़की थी वह। उसकी मनमोहिनी चंचलता, उसका आकर्षक लड़कपन देखने वाले आंखें

१. 'यह कचन-सी काया तेरी', 'स्वदेश के लिए', पृ० १०५

फाड़-फाड़कर देखते थे। उसका नाम तुलसा था।···आठवां (वर्ष) पूरा हो गया, तभी तो कन्यादान दे दिया गया है। पगली जब छः साल की रही, तभी अपने बाप से चूनरी पहनने के लिए लड़ा-झगड़ा करती थी। कहती थी, 'मुझे आज ही ब्याह दो, मगर चूनरी ज़रूर मंगा दो, देखो न, इसे चूनरी क्या मिल गई, मानों संसार का राज्य मिल गया हो।''[१] इस परिचय से कथाकार तुलसा के अद्भुत व्यक्तित्व और सामाजिक असंगति का एक साथ उद्घाटन करता है। तुलसा का अबोध अवस्था में ही, केवल चूनरी को पाने के लिए, विवाह कराने को उत्सुक होना, उसके अद्भुत चारित्रिक गुण को सूचित करता है और 'आठवां वर्ष पूरा होते ही कन्यादान दे दिया गया', सामाजिक असंगति को अभिव्यंजित करता है।

'वीभत्स', 'न्यूज रील', 'करुण कहानी' आदि का प्रारम्भ दृश्य-विशेष को प्रस्तुत करते हुए होता है। कथाकार 'न्यूजरील' के प्रारम्भ में लिखता है—"बाहर भरा प्लेटफार्म, अन्दर भरा डिब्बा, जिस वक्त मैं उस सेकेण्ड क्लास में दाखिल हुआ डिब्बा भरा आदमियों से कम, सामान से ज्यादा। जगह बैठने की बारह आदमियों की, पर हम याने पीछे सात आदमी। और जब उस कम्पार्टमेण्ट में घुसे, तब सहज छः आदमी बिलकुल बेढंगे बैठे, लेटे या तिड़बिढंग पड़े थे, तीन बर्थों या सीटों पर। आखिरी सीट पर एक देवी जी आराम से कम्बल ओढ़े पसरी थीं।"[२] इस उदाहरण से कथाकार की व्यंग्य-प्रियता, सामाजिक जीवन की कुरूपता की कड़ी आलोचना आदि का आभास मिलता है। उसका यही मूलभाव उत्तरोत्तर विकास प्राप्त करता है।

'उग्र' अपनी कुछ कहानियों का प्रारम्भ पात्रों की परिस्थिति के परिचय से भी करते हैं—"जब मेरा दोस्त सैर-चमन को निकला, दिन थे पतझड़-खिज़ां के। वह अद्भुत अल्हड़ ऊबड़-खाबड़ पथ से चला, हां बन बीहड़ की ओर। उसके चंचल चरण वज्र से चमकीले, नील मणि से नीले।"[३] इसी

---

१. 'पोली इमारत', 'मों को चूनरी की साध', पृ० १

२. 'चित्र-विचित्र', 'न्यूजरील', पृ० १०४

३. 'मुक्ता', 'रेशमी', पृ० ५१

प्रकार कतिपय कहानियों के प्रारम्भ कथाकार ने वर्णन तथा भावाभिव्यक्ति दोनों को एक साथ प्रश्रय देते हुए किया है—"तुम्हारी वाह ! होली है ! हमारी आह होली है। निष्ठुर कारीगर ! जिसे रोने वाला दिल देता है उसकी दो ही आंखें क्यों बनाता है।"[1] इस प्रकार उग्र की प्रायः सभी कहानियों के प्रारम्भ आकर्षक तथा मूलसंवेदना के सूचक हैं। वे कथानकों के विकास, चरम-सीमा आदि से सम्बन्धित हैं।

२. **विकास**—आलोच्य कथाकार कथानकों को विकास प्रदान करने के लिए, मूलसंवेदना के अनुरूप, घटनाओं की सृष्टि करता है, और पात्रों के कार्य-व्यापार को गति देता है। वह पात्रों और घटनाओं में पारस्परिक संघर्ष उत्पन्न करता है, जिससे आगे की कुतूहल-वर्धक घटनाएं जुटाई जा सकें। उदाहरणार्थ 'मों को चूनरी की साध' के कथानक को विकास प्रदान करने के लिए, वह एक ओर तुलसा की चिरअभिलाषित चूनरी उसे दिलाकर उल्लास की सृष्टि करता है और दूसरी ओर उसके पति की आकस्मिक मृत्यु दिखाकर संघर्षमयी परिस्थितियों को उपस्थित करता है। इससे सभी पात्रों के कार्य-व्यापार में विद्युतगति का संचार होता है। इसी प्रकार 'न्यूज रील' के कथानक को विकास प्रदान करने के लिए वह 'देवी जी' और 'भले आदमी' की वाद-विवादमयी घटना की सृष्टि करता है। गार्ड, टिकटकलेक्टर, स्टेशन मास्टर आदि को एक साथ इकट्ठा कर, डिब्बे की जांच कराना भी उसे आवश्यक प्रतीत होता है। उसके बाद वह नामधारी नेता का प्रवेश कराकर, आगामी संघर्ष और कुतूहल-वर्धक घटनाओं को जन्म देता है। नेता का कार्य-व्यापार और व्यवहार देखिए—'डिब्बा खाली करने से खाली होता है, देवी जी।' एम० एल०ए० ने कहा, 'यह हिन्दुस्तान है। यहां सीधी अंगुली घी भी नहीं निकलता। आइए।' सांड जैसे बाजरे की टट्टी में घुस जाय वैसे ही नेता डिब्बे में घुस बैठा। आते ही मद्रासी के नौकर को एक धक्का देकर सीट पर बिस्तर लगाने से विरत किया। 'समेट इसको।' उसने दूसरे के नौकर को आर्डर दिया। 'बिछा अपना।' उसने अपने नौकर से कहा। और मद्रासी बेचारे सज्जन, साथ ही कमज़ोर। और

---

१. 'रेशमी', 'वाह होली! आह होली !!', पृ० ३७

यू० पी० का नेता दबंग साथ ही मजबूत। कमजोर बेचारे सिकुड़कर एक ओर खड़े हो गए।[1]

उपर्युक्त दोनों उद्धरणों से स्पष्ट है कि आलोच्य कथाकार कथानक-विकास के कौशल से न केवल परिचित है, वरन् उसका सफलतापूर्वक निर्वाह भी कर सका है। उसने आवश्यक घटनाओं एवं पात्रों की ही सृष्टि की है, जिससे कथानक व्यर्थ के विस्तार से बच गए हैं। उसके कथा-विकास आगामी कुतूहल-वर्धक घटनाओं को लाने में सहायक हैं और उनमें स्वाभाविकता भी पूर्णत: विद्यमान है।

३. कुतूहल—'उग्र' अपनी कहानियों के कथानकों में कुतूहल के संचार के निमित्त पात्रों और घटनाओं में उलझन-सी उत्पन्न कर देते हैं, जिससे पाठकों में परिणाम जानने की तीव्र जिज्ञासा जाग्रत होती है। यथा—'मों को चूनरी की साध' में तुलसा के विधवा हो जाने पर, विचित्र संघर्षमयी परिस्थिति उत्पन्न कर देते हैं। तुलसा को चूनरी ओढ़ने का अधिकार दिया जाए या नहीं ? इस समस्या को लेकर मां, अन्य स्त्रियों और स्वयं तुलसा की मान्यताओं में पर्याप्त भिन्नता है, वही भिन्नता विचित्र संघर्षमयी स्थिति का मूल है। कथाकार का कलात्मक निरूपण देखते ही बनता है—'मां ने कहा—उतार दे इसे ! तेरे भाग्य में चूनरी नहीं है। तू महा-अभागिन है।'

'ना···ना···ना···! मेरी चूनरी न छीनो ! न छीनो ! नहीं तो मैं सिर पटक कर फोड़ लूंगी, जान दे दूंगी।'···मगर औरतें कब मानने वाली ! उन्होंने ज़बरदस्ती उसे पकड़ कर उसकी चूनरी उतार ली, और उसे पहनने के लिए पुरानी-गन्दी धोती दे दी।···एक सप्ताह तक तुलसा के शरीर पर ज्वर—भयानक ज्वर—का कब्जा रहा। वह उसी तरह नंगी चारपाई पर पड़ी रही। रह-रहकर बेहोश हो जाती, और होश में आते ही आस-पास के लोगों से चिल्लाकर कहती, 'मों को चूनरी की साध !' मगर लोग न पसीजे। पसीजते भी कैसे ? समाज का नियम जो टूट जाता। भला विधवा बालिका चूनरी पहनेगी !···वह अन्तिम सांस ले रही थी। उसकी

१. 'चित्र-विचित्र', 'न्यूज रील', पृ० १०७

मां सिसकती हुई उसकी ओर ताक रही थी। एकाएक आंख खोलकर उसने मां से कहा, 'मों को चूनरी की साध !' इस उदाहरण का कौतूहल जहां रोंगटे खड़े करने वाला है, वहां मूल संवेदना के भी सर्वथा अनुकूल है। वह सोद्देश्य तथा मर्मस्पर्शी है, उसमें कलाकार की आत्मा का आक्रोश भी अभिव्यंजित हुआ है। वह सामाजिक विद्रूपता पर तीखा प्रहार करता है। कथाकार के ये शब्द—'पसीजते भी कैसे ? समाज का नियम जो टूट जाता। भला विधवा बालिका चूनरी पहनेगी'—कितनी तीव्रता और विद्रोहमयी स्थिति को अभिव्यंजित करते हैं, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

४. चरम-सीमा—आलोच्य कथाकार कथानकों को चरम-सीमा की ओर लाते हुए पात्रों की भावनाओं में उत्तेजना भर देता है, जिससे वे एक निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं, और उनमें दुविधा या मानसिक संघर्ष की स्थिति समाप्त हो जाती है। वह अहनी भावात्मक कथाओं की समाप्ति प्रायः चरम-सीमा पर ही कर देता है। परन्तु, सामाजिक यथार्थ को लेकर चलने वाली कहानियों में चरम-सीमा से अगली अवस्था—अन्त, भी बनी रहती है। यथा—'मों को चूनरी की साध' में तुलसा की दयनीय स्थिति को देखकर उसकी मां का मातृ हृदय हाहाकार कर उठता है, वह हाहाकार ही कथानक को चरम-सीमा प्रदान करता है। मां उत्तेजित होकर कहती है—'मेरी बेटी चार गज सूत की चूनरी के लिए मरी जा रही है। समाज और रिवाज उसे, विधवा होने के कारण, वह नहीं दे सकते। आग लगे इस समाज में। वज्र पड़े ऐसे रिवाज पर ! मैं अपनी रानी की साध पूरी करूंगी। उसे चूनरी दूंगी।'[1] पति, मुहल्लेवालियों आदि की 'ना ! ना !' की घोर अवहेलना करते हुए, वह चूनरी ले आती है, जिसे देखकर मृतप्राय: तुलसा कमल की भांति खिल उठती है। उससे कथानक की संघर्षमयी स्थिति समाप्त हो जाती है। परन्तु कथाकार सामाजिक विद्रूपता का क्रूर परिणाम भी दिखाना चाहता है, उसी से वह कथा को चरम-सीमा पर पहुंचा कर भी, उसे आगे बढ़ाता है। उसका यही शिल्पविधान, उसकी

---

१. 'पोली इमारत,' 'मों को चूनरी की साध'. पृ० ३

अनेक सामाजिक कहानियों—'आंखों में आंसू', 'अभागा किसान', 'पोली इमारत' आदि में देखा जा सकता है।

५. **अन्त**—'उग्र' की कहानियों के कथानक सोद्देश्य हैं, इसी से उनके अन्त चरम-सीमा से आगे भी बढ़ते हैं। वे गोपन रीति से अपने आशय की ओर संकेत न कर, स्पष्ट रूप से, पाठकों को झकझोरते हैं, उन्हें सामाजिक असंगतियों, कुप्रथाओं तथा अनीतियों के विरुद्ध विद्रोह करने की प्रेरणा देते हैं। उनमें पाठकों की सम्भावना के विरुद्ध अकस्मात् ऐसी स्थितियों का आगमन होता है, जिससे पाठकों का सुप्त आक्रोश-भाव उत्तेजना प्राप्त करता है और वे सामाजिक अनाचारों से घृणा और विद्रोह करने लगते हैं। यथा—'मों को चूनरी की साध' के अन्त में कथाकार लिखता है—'चूनरी पहनते-पहनते जमीन पर धम्म से गिर पड़ी। दो-तीन हिचकियां लीं—और बस ! साध पूरी हो गई। श्मशान ने तुलसा को उसकी चूनरी के साथ-साथ अपनी भयानक हंसी—चिता—की गोद में हो-होकर उठा लिया।'[1] इसी प्रकार 'विधवा', 'वीभत्स', 'हत्यारा समाज' आदि सामाजिक कहानियों का अन्त भी दुखान्त तथा व्यंग्यात्मक है। कथाकार समाज-व्यवस्था की कड़ी आलोचना करता है। 'हत्यारा समाज' के पीड़ित रघुनन्दन के शब्दों में कलाकार का आक्रोश देखिए—'अभागिनी बालिका को आधी शीशी विष देकर मैंने शेष का सत्कार स्वयं किया और फिर दोनों सो रहे। हमारी हत्या का जिम्मेदार यदि कोई है, तो वह है हमारा पाषाण-हृदय समाज। पुलिस या सरकार फांसी देना चाहे तो उसी हत्यारे को दे, उसी का नाश हमारी हत्या का बदला हो सकता है।'[2] 'वीभत्स' के अन्त में, लोभी-वृत्ति का दुष्परिणाम दिखाते हुए कहानीकार कहता है—'उसका पेट तो भयानक फूलकर विदीर्ण हो गया था, अंतड़ियां बाहर झांक रही थीं। दाहिना हाथ उसका कमर और थैली पर था, जिसमें मुर्दों की ढोआई के पचहत्तर और बाईस—कुल सत्तानवे रुपये थे।'[3]

---

१. 'पोली इमारत', 'मों को चूनरी की साध' पृ० ४

२. 'यह कंचन-सी काया', 'हत्यारा समाज', पृ० १०४

३. 'पोली इमारत', 'बाभत्स' पृ० ४२

आलोच्य कथाकार की प्रतीकात्मक एवं भावात्मक कहानियों के अन्त प्रायः चरम-सीमा पर ही हो जाते हैं। इनमें उसने सांकेतिक-पद्धति से ही, अपना आशय व्यक्त किया है। 'मुक्ता', 'रिसर्च', 'प्रार्थना' आदि कहानियों के अन्त इसी प्रकार के हैं। इनमें कथाकार अपनी ओर से कुछ अधिक न कह, संकेत-मात्र से, अभीष्ट आशय की ओर पाठकों को आकृष्ट कर, कथानकों को समाप्त कर देता है। 'प्रार्थना' कहानी का अन्त देखिए—'बेचारा बूढ़ा भगवान टका-सा मुंह लिए मनुष्यता के मैदान में गहरी शिकस्त खा···

आदमियत से दूर···सुदूर···

भाग गया !—अह ! !'[१]

इसी प्रकार 'रिसर्च' कहानी के अन्त में कथाकार कहता है—'मुस्कराकर शैतान ने इन्सान को जवाब दिया, और उस अर्द्धनग्न सुन्दरी को चूमता, बालक के शव को हवा गाड़ी से कुचलता वह चलता बना।'[२] इन दोनों उद्धरणों से स्पष्ट है कि कथाकार अपना आशय स्वयं स्पष्ट शब्दों में न कह, पाठकों पर छोड़ देता है, वे ही सोचें, इसी में उसे अपनी कला की सार्थकता प्रतीत होती है।

संक्षेप में, 'उग्र' की कहानियों के कथानक सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, प्रतीकात्मक तथा हास्य-व्यंग्यात्मक हैं। उनका निर्माण कथात्मक, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक, वार्तालापात्मक आदि शैलियों में हुआ है। उनमें सामान्यतः कथा-विकास की पांचों अवस्थाएं—आरम्भ, विकास, कुतूहल, चरम-सीमा और अन्त का नियोजन मिलता है। उनके आकार लघु भी हैं और दीर्घ भी। 'चौड़ा छुरा', 'मूर्खा', 'सुधारक', 'रामदाने के लड्डू' आदि कथाएं अति लघु आकार वाली हैं। 'बीभत्स', 'अभागा किसान', 'जल्लाद', 'जब सारा आलम सोता है', 'सनकी अमीर' के कथानक अपेक्षाकृत बड़े हैं। इन्हीं कहानियों में कथाकार कथा-निर्माण का पूर्ण सौष्ठव अभिव्यंजित कर सका है। ये कहानियां विस्तृत आकारमयी होने पर भी,

---

१. 'रेशमी', 'प्रार्थना', पृ० १६

२. वही 'रिसर्च', पृ० २४

अनावश्यक विस्तार का अभाव रखती हैं। इनके कथानक सुसंगठित हैं, इनमें कुतूहल, जिज्ञासा तथा मार्मिकता का गुण मिलता है। लघु आकारमयी कथाओं में विकास, कुतूहल, चरम-सीमा आदि अंगों का उचित प्रसार नहीं हो सका है। ये कथाएं या तो अतिसाधारण हैं, या प्रतीकात्मक हैं। प्रतीकात्मक या भावात्मक कहानियों—'मुक्ता', 'रिसर्च', 'प्रार्थना', 'रेशमी' आदि के कथानकों में शृंखला का अभाव मिलता है। इनमें अस्पष्टता तथा क्लिष्टता भी आ गई है। ये कथाएं भिन्न-भिन्न अंगों में भिन्न-भिन्न परिस्थितियों का चित्रण करके एक भावना की सिद्धि को लक्ष्य बनाती हैं। 'मेघराग' जैसी कुछ कहानियों की स्वाभाविकता संदिग्ध है, इनमें भारतीय अलौकिकता के समावेश से असाधारण घटनाओं की सृष्टि की गई है। परन्तु ऐसी कहानियां संख्या में कम हैं। कथाकार ने मुख्यतः सामाजिक, राजनैतिक एवं ऐतिहासिक विषयों पर ही, स्वाभाविक घटनाओं को लेकर यथार्थवादी कहानियां लिखी हैं। उनके कथानक वर्ण्य-विषय को अभिव्यक्ति देने में पूर्णतः समर्थ हैं। कथानक के अनुरूप ही प्रतिपादन शैली या शैलियों का उपयोग हुआ है।

२. पात्र एवं चरित्र-चित्रण

कहानी का दूसरा महत्त्वपूर्ण उपकरण पात्र एवं चरित्र-चित्रण है। कथानक की घटनाएं जिन व्यक्तियों पर निर्भर होती हैं, वे पात्र कहलाते हैं। उनके आचरण के सम्पूर्ण रूप को चरित्र-चित्रण कहते हैं। पात्रों के अभाव में भी कहानी की कल्पना नहीं की जा सकती है। वे ही कथा को संचालित करते हैं। कहानी-साहित्य का विकास इस बात का साक्षी है कि कहानी क्रमशः घटनाओं की प्रधानता के स्थान पर चरित्रों की प्रधानता को स्थान दे रही है।

कथानक की दृष्टि से पात्रों के मुख्यतः दो भेद किए जा सकते हैं—प्रधान-पात्र और गौण-पात्र। वर्ग के विचार से भी उन्हें दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—वर्गप्रधान और व्यक्तिगत। दृष्टिकोण के अनुसार वे आदर्शवादी, यथार्थवादी, आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी और प्रकृतवादी हो सकते हैं। उनके चरित्र-चित्रण की मुख्य चार प्रणालियां हैं—सांकेतिक

ढंग से, वर्णन द्वारा, कथोपकथन द्वारा और घटनाओं के विकास द्वारा। चरित्र-चित्रण की मुख्य विशेषताएं हैं···अनुकूलता, स्वाभाविकता सप्राणता, सहृदयता और मौलिकता।

'उग्र' के कहानी-साहित्य में सामाजिक समस्याओं, राष्ट्रीय-चेतना तथा मानव-चरित्र के स्वरूप का विश्लेषण करने के लिए सैकड़ों मुख्य तथा गौण पात्रों की सृष्टि हुई है। उनमें केशवचन्द, सुमेरा, अलियार, रामरूप, करोड़ीमल, प्रेमीराम, भिक्खन, ज्ञानू, कलाधर, उपेन्द्र, रतिलाल, निर्भयदेव, लाल, सेठ भारतभूषण आदि प्रधान पुरुष-पात्र हैं और तुलसा, राजकुमारी चम्पा, सलोनी, हुस्नबानू, जानकी, पार्वती, जिन्दां, गंगू गोसाईंन आदि प्रधान स्त्री-पात्र हैं। इसी प्रकार राम, काम, दाम, शमशेरा, नईमखां, देवकुमार, बाबू, रमेश आदि गौण पुरुष-पात्र हैं और ज़ोहरत, सीता, सौदामिनी, मिस मिनी आदि गौण स्त्री-पात्र हैं। आलोच्य कहानी-साहित्य में गौण पात्रों का आयोजन अनावश्यक नहीं है, वे वातावरण के निर्माण में और घटनाओं को संचालित करने में, मुख्य पात्रों को सहयोग देते हैं। उनके माध्यम से मुख्य-पात्रों का चरित्र प्रकाश में भी आता है।

'उग्र' ने अपने यथार्थवादी दृष्टिकोण के अनुसार ही, मुख्यतः यथार्थ-जीवन से पात्रों की सृष्टि की है। ये पात्र प्रतिपाद्य विषय के अनुरूप ही, सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक गतिविधियों को प्रकाशित करते हैं। इनके माध्यम से कथाकार ने विभिन्न सामाजिक असंगतियों एवं विद्रूपताओं का उद्‌घाटन किया है और राजनैतिक दमन-चक्र, देशप्रेम, धार्मिक अन्ध-विश्वास, नैतिक पतन आदि की समस्याओं को पाठकों के सामने रखा है। ये अपने गुण-दोषों के अनुरूप घटनाओं को संचालित करते हैं और कहानियों की मूल संवेदनाओं को मुखरित करते हैं। उदाहरणार्थ 'उरूज' का केशव-चन्द, 'बीभत्स' का सुमेरा, 'विधवा' की रमा, 'अभागा किसान' का भिक्खन और 'सुधारक' का रतिलाल क्रमशः घूसखोरी, धन-लोलुपता, विधवा-समस्या, आर्थिक-शोषण और अनैतिकता की समस्या को प्रकाश में लाते हैं। इन पात्रों में कोई शोषक है तो कोई शोषित है।

आलोच्य कथाकार की आस्था सुधार और उच्च मानवीय भावों में भी रही है उस पर राष्ट्रीय जागरण, गांधीवादी आदर्शों, आर्यसमाज के

विभिन्न आन्दोलनों आदि का भी प्रभाव पड़ा है। इसलिए उसने सुधारवादी, महान-मानव तथा देशभक्त पात्रों की भी सृष्टि की है। 'दिल्ली की बात' के गांधी, 'खुदाराम' के खुदाराम, 'समाज के चरण' के स्वामी योगानन्द, 'मलंग' के चाचाजी, 'ध्रुवधारणा' के उपेन्द्र, रमा, 'उसकी मां' का लाल, 'ऐसी होली खेलो, लाल' का ठाकुर बघेलसिंह, 'वीर कन्या' की क्लेरोडिया आदि पात्र यथार्थ जीवन के निकट रहकर भी आदर्शवादी हैं। गांधी, खुदाराम, मलंग आदि पात्र साम्प्रदायिकता के विरोधी और मानवतावाद के समर्थक हैं। इनका सुधार, आत्म-परिवर्तन, अहिंसा, सेवा आदि उच्च मानवीय भावों में विश्वास है। इसी प्रकार से लाल, उपेन्द्र, रमा, बघेलसिंह आदि पात्र राष्ट्रीयता के प्रचारक एवं बलिदान की साक्षात् मूर्तियां हैं। ये हमारी सुप्त राष्ट्रीय भावनाओं को उद्दीप्त करते हैं और देश के लिए सर्वस्व समर्पण की प्रेरणा देते हैं।

'उग्र' मुख्यतः सामाजिक कहानीकार हैं, इसलिए उनके पात्र प्रायः वर्गगत हैं। वे अपने-अपने समूह की विशिष्टताओं का उद्घाटन करते हैं। उदाहरणार्थ 'नौ हज़ार नौ सौ निन्नानवे' का करोड़ीमल अपने समय के सूदखोर नर-पिशाचों का, 'सुधारक' का रतिलाल पाखण्डी सुधारकों का, 'उसकी मां' का लाल देशभक्त नवयुवकों का, 'मलंग' का मलंग उदार महानमानवों या सुधारकों का और 'करुण कहानी' का गणेश व्यभिचारी एवं सन्देही पतियों का प्रतिनिधित्व करता है। इसी प्रकार 'विधवा' की रमा सामाजिक असंगतियों से पथभ्रष्ट होने वाली नारियों का, 'वीरकन्या' की क्लेरोडिया देशभक्त वीर-कन्याओं का, 'मूर्खा' की गुलाबो सीधी-सादी माताओं का, 'चांदनी' की चांदनी प्रेम-निर्वाह करने वाली दृढ़ प्रेमिकाओं का और 'मूसल ब्रह्म' की गंगू गोसाईन लोभी नर-पिशाचिनियों का प्रतिनिधित्व करती है।

आलोच्य कहानियों के कतिपय पात्र वर्ग-प्रधान न होकर, व्यक्तिगत भी हैं। वे व्यक्तिगत रहन-सहन, चाल-ढाल एवं बात-चीत की विशिष्टाओं से अपना भिन्न अस्तित्व रखते हैं। यथा—'जल्लाद' का रामरूप, 'मों को चूनरी की साध' की तुलसा, 'शाप' का परमहंस और 'दिल्ली की बात' की पार्वती के चारित्रिक गुण-दोष उन्हें अपने-अपने वर्ग से अलग कर देते हैं।

रामरूप जल्लाद है, परन्तु एक अनाथ बालक की ममता को लेकर, उसके पाषाण-हृदय से करुणा का स्रोत उमड़ता है। वह उसे मृत्यु दण्ड देने से पूर्व स्वयं एक पेड़ में फंदा डालकर आत्महत्या कर लेता है। उसका यह आचरण जल्लाद वर्ग के आचरण से सर्वथा भिन्न है। 'मों को चूनरी की साध' की तुलसा, चूनरी-मोह में अपने प्राण गंवा देती है, उसके चरित्र की यह विशिष्टता अन्य बाल-विधवाओं में सामान्यतः दुर्लभ है। 'शाप' के परमहंस प्राचीन ऋषियों का-सा आचरण लिए हुए हैं, जो बीसवीं शती के साधुओं, महात्माओं आदि में प्रायः नहीं मिलता है।

'उग्र' के कहानी-साहित्य में स्थिर और गतिशील दोनों प्रकार के पात्र मिलते हैं। 'उरूज' का घीसालाल, 'विधवा' के देवरत्न, 'समाज के चरण' के स्वामी योगानन्द, 'ध्रुव धारणा' के उपेन्द्र, रमा, 'सुधारक' का रतिलाल, 'उसकी मां' का लाल आदि पात्र स्थिर हैं। इन पर बदलती परिस्थितियों एवं घटनाओं का प्रभाव प्रायः नहीं पड़ता है। ये अपने अच्छे या बुरे अस्तित्व के अनुसार ही आचरण करते हैं, घटनाओं के घात-प्रतिघात, इनकी मान्यताओं को मोड़ने या बदलने में असमर्थ-से हैं। परन्तु, 'जल्लाद' का रामरूप, 'आंखों के आंसू' की सुरूपा, 'विधवा' की रमा, 'समाज के चरण' का ज्ञानू श्वपच आदि पात्र गतिशील हैं। इनमें रामरूप एवं ज्ञानू श्वपच उत्थान की ओर बढ़ते हैं और सुरूपा एवं रमा पतन की ओर अग्रसर होती हैं।

'उग्र' अपने पात्रों के बाह्य व्यक्तित्व को ही विस्तार से अंकित करते हैं। उनके आन्तरिक व्यक्तित्व का उद्‌घाटन बहुत कम स्थलों पर कराते हैं। उसका मुख्य कारण, उनका राष्ट्रीय तथा सामाजिक यथार्थवादी दृष्टिकोण है, उसके अनुसार उन्हें पात्रों के मानसिक उतार-चढ़ावों को देखने और दिखाने की अधिक आवश्यकता अनुभव नहीं होती है। वे पात्रों के बाह्य व्यक्तित्व को उनके वार्तालापों, कार्य-कलापों एवं हाव-भावों आदि के माध्यम से अभिव्यंजित कराते हैं। 'ध्रुव धारणा' कहानी का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

"रमा की कमल-कली-सी आंखें अपने जीवन-सर्वस्व को एकाएक अपने सामने पाकर हंस दी। उनकी इच्छा उपेन्द्र की आंखों से कुछ बातें

करने की थी, परन्तु बाहर से 'भारत माता की जय', 'महात्मा गांधी की जय !' का गगन-भेदी घोष सुनकर उनके (आंखों के) पार्श्ववर्ती कानों ने उनको वैसा करने से रोका।

रमा बोली—"यह कैसी आवाज़ आ रही है ? क्या कोई गिरफ्तार हुआ है ?"

उपेन्द्र—"हुआ न होगा तो होने वाला होगा। बोलो, किसे गिरफ्तार कराना चाहती हो ?"

रमा—"तुम्हें।"

उपेन्द्र—"अच्छा तो मैं जाता हूं।"

रमा—"सच ?"

उपेन्द्र—"नहीं तो क्या झूठ ?"

रमा—"बैठ जाओ, मैं तुम्हारे चरण की धूल अपने सिर पर लगा लूं। तुम जेल जाओगे। जान पड़ता है मेरा हृदय आनन्द से फट जाएगा।"

उपेन्द्र—"रमा।"

रमा—"प्यारे।"

उपेन्द्र—"तुम मुझे चाहती हो ?"

रमा—"प्यारे, जेल जाओ, यह प्रश्न वहां से लौटने पर हल किया जाएगा।...इस समय जहां जाते हो, जाओ। वहीं इसका उत्तर मिल जाएगा।"

रमा ने जल्दी से उपेन्द्र की चरण-धूलि अपने सिर आंखों पर लगा ली।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि कथाकार अपने पात्रों के निजी सुख-दुःख, हर्ष-विषाद की अपेक्षा, उनके राष्ट्रीय भावों, सामाजिक पहलुओं आदि को अधिक प्रश्रय देता है। इसी से पात्रों का चरित्र-चित्रण करते समय वह मनोविश्लेषणात्मक शैली का आश्रय नहीं लेता है। उसके पात्रों के पास इतना समय ही नहीं है, कि वे अपने जीवन के विषय में सोचें। इसी प्रकार सामाजिक यथार्थ को लेकर चलने वाली कहानियों के पात्र भी सामाजिक

---

१. 'यह कंचन-सी काया', 'ध्रुव धारणा', पृ० ६६-६७

सुधारणा या सामाजिक असंगतियों से इतने लदे हुए हैं कि वे निजी मनन, चिन्तन तथा विचारणा से वंचित हैं। वे समाज की कुप्रथाओं एवं विद्रूपताओं से या तो शक्तिहीन हो चुके हैं, अथवा उनके विरुद्ध उपेक्षा, विद्रोह एवं आक्रोश प्रकट करने में अपने जीवन की सार्थकता समझते हैं।

किन्तु, कतिपय चरित्र-प्रधान कहानियों में कथाकार पात्रों के आन्तरिक व्यक्तित्व को भी वाणी देना आवश्यक समझता है। वह ऐसी परिस्थितियों को उपस्थित कर देता है, जिससे पात्रों का संघर्षण हो, और उनके दमित भाव, विचार तथा मान्यताएं साकार हो उठें। यथा 'मलंग' कहानी के चाचाजी जब अपना सर्वस्व नईमखां को सौंप देते हैं, तो उनके हृदय में दबी भावनाओं का एक तूफान-सा प्रस्फुटित होता है। कथाकार के शब्दों में—अन्दर ही अन्दर चाचाजी पर उस घटना, उस सुन्दरी, उस सम्पत्ति त्याग के बाद क्या गुज़री यह परमात्मा ही जनता होगा। उन्होंने सोचा कि त्याग तो किया मगर औरत से हारने पर। हार का त्याग भी कोई त्याग। वह मिलती तो जीवन कितना मादक होता। वह न मिल सकी तो अंगूर खट्टे हो गए। फिर भी उन्होंने सोचा, इस त्याग से इतना तो फायदा हुआ कि दुनिया का दर्द सिर गया। अब प्रिय नहीं, परिवार नहीं, धन नहीं, बाज़ार नहीं केवल मैं ही मैं हूं।'[1]

'उग्र' अपनी कहानियों में, पात्रों के चरित्र-चित्रण की दोनों पद्धतियों प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक और परोक्ष या अभिनयात्मक का आश्रय लेते हैं। वे अवसरानुसार कहीं तो स्वयं पात्रों के चरित्र, आचार-विचार, व्यवहार आदि का वर्णन करते है और कहीं पात्रों के अपने कार्य-व्यापारों, उनके परस्पर वार्तालापों आदि के माध्यम से उनके चरित्र पर प्रकाश डालते हैं। प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक पद्धति में 'चाचाजी' के चरित्र पर विचार करते हुए 'उग्र' लिखते हैं—'चाचाजी सारे मलंगपुर शहर के 'चाचाजी'। हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, पारसी, छोटे बड़े सभी चाचाजी को 'चाचाजी' ही जानते हैं। उनका और भी कोई नाम है, किसी को पता नहीं, न ही पता लगाने की आवश्यकता है। हवा,

---

१, 'यह कंचन-सी काया', 'मलंग', पृ० ३९

पानी और प्रकाश की तरह चाचाजी सारे मलंगपुर के प्राणों के रक्षक और पोषक, हिक़मत और आयुर्वेद दोनों ही के चमत्कारिक दश्तशफ़ा या पीयूष-मणि। वह संस्कृत पढ़े, फारसी पढ़े, अंग्रेजी में बी० ए० पास।[१] चरित्र-चित्रण की यह पद्धति यद्यपि सरल, स्पष्ट तथा सुविधाजनक है, तथापि इसका अधिक प्रयोग कलाकार की चरित्र-चित्रण कला में पटुता के अभाव का सूचक भी होता है। इसी से विज्ञ कलाकार एक सीमा तक ही, इसका प्रयोग करते हैं। 'उग्र' चरित्र-चित्रण कला के इस नियम से परिचित हैं। वे प्रायः सभी कहानियों में परोक्ष या अभिनयात्मक शैली का भी यत्र-तत्र अवलम्ब लेते हैं। वे अपने पात्रों को कतिपय गुणों से विभूषित करके, स्वयं तटस्थ हो जाते हैं और पात्रों के परस्पर वार्तालापों, कार्य-कलापों, परिस्थितियों और उनसे होने वाली प्रतिक्रियाओं के माध्यम से, उनका चरित्र पाठकों के सामने उपस्थित होने देते हैं। यथा—'सुधारक' में डाक्टर एवं रामकिशोर की विधवा का चरित्र-चित्रण, उनके संवादों, कार्यकलापों आदि के माध्यम से ही करते हैं—

"कौन ?"

"दरवाजा खोलो।" मैं हूं डॉक्टर।

अनाथ अबला के सूने घर का द्वार कम्पित हाथों से खुला। रामकिशोर की विधवा घूंघट काढ़े, सिर झुकाए नजर आई। डॉक्टर ने सिर से पांव तक घूर कर विधवा की जवानी की जांच की, और जैसे तगड़ी गाय से कसाई खुश हो, वैसे ही मन-ही-मन नाच उठा।

"दो सौ रुपये तुम्हारे मृत पति पर मेरे होते हैं।"

"मगर मेरे पास तो दो सौ कौड़ियां भी नहीं।"

"मुंह खोलकर बात करो।" डॉक्टर ने मन्त्र मारा—"मैं तुम्हारा सहायक हूं—कोई परदेसी नहीं।"

मगर हिन्दू विधवा का मुंह नहीं खुला।

"पैसा-कौड़ी नहीं है, तो तुम्हारा गुज़र कैसे होगा ?"

"ईश्वर है—सबकी लाज रखने वाले।" बांसरी-सी बेचारी विधवा

---

१. 'यह कंचन-सी काया', 'मलंग' पृ० ३८

बज उठी।

"तुम यदि बुरा न मानो, तो···" झूठी माया पसारता हुआ डॉक्टर बोला, "जिन्दगी भर मैं रामकिशोर की तरह तुम्हें संभाल सकता हूं। तुम बड़ी सुन्दरी हो।"

"जाने दीजिए ऐसी बातें।" लज्जित अबला बोली, "ऐसी बातों से मैं अपना अपमान समझती हूं।"

"मान रखना है, तो मेरे रुपये देने होंगे, या कुछ और, नहीं तो बात कचहरी तक जाएगी, और तुम जेल तक।"[१]

वस्तुतः चरित्र-चित्रण की उत्तम पद्धति परोक्ष या अभिनयात्मक ही होती है। इसी के प्रयोग से, पात्र अपनी कथनी और करनी के अनुसार अपना यथार्थ चरित्र लेकर उपस्थित होते हैं। वे लेखक के हाथों में कठ-पुतली न बनकर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हैं। 'उग्र' की चरित्र-चित्रण कला का कौशल प्रायः वहीं अभिव्यंजित हुआ है, जहां उन्होंने इस पद्धति को अपनाया है। प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग अधिक न करके, उन्होंने अपनी कहानियों को कलात्मक सौन्दर्य ही प्रदान किया है।

संक्षेप में, 'उग्र' के कहानी-साहित्य में पात्रों की रूप-रेखा सर्वथा स्पष्ट है। वे कथानकों के अनुकूल, मूल संवेदनाओं को प्रकाश में लाने वाले पात्रों की ही सृष्टि करते हैं। उनके अधिकांश पात्रों का सम्बन्ध यथार्थ जीवन से है। वे मानवीय करुणा, दया, निष्ठुरता, ईर्ष्या, वासना, लोलुपता आदि अनुभूतियों से युक्त हैं। उनके माध्यम से कथाकार ने तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक उत्थान-पतन, धार्मिक गतिविधियों आदि का उद्घाटन किया है। उनके चरित्र-चित्रण में स्वाभाविकता, मौलिकता, सप्राणता आदि गुण विद्यमान हैं। वे प्रायः वर्णगत हैं, कथाकार उन्हें देश और समाज की ह्रासोन्मुखी दशा के विरुद्ध क्रान्ति करने के लिए प्रेरित करता है। वे स्थिर भी हैं और गतिशील भी, उनमें विविधता तथा अनेकरूपता मिलती है। कथाकार उनके बाह्य व्यक्तित्व को ही उभारता है, आन्तरिक भावनाओं को विशेष अवस्था में ही प्रकाश में लाता है। उसने चरित्र-चित्रण करते समय

---

१. 'यह कंचन-सी काया', 'सुधारक', पृ० ११८

प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक और परोक्ष या अभिनयात्मक पद्धतियों का सन्तुलित प्रयोग ही किया है। उसके पात्र स्वस्थ एवं अस्वस्थ दोनों प्रकार के हैं। उनमें काम-कुण्ठाएं कम और क्रियाशीलता अधिक मिलती है। यह क्रियाशीलता उन्हें उत्थान की ओर भी ले जाती है और पतन की ओर भी। कहानीकार उनके यथार्थवादी स्वरूप को छिपाता नहीं है। कुछ पात्रों का चरित्र-चित्रण तो यथार्थवादी सीमा का भी उल्लंघन कर जाता है। इसी से उसमें अभद्रता या नग्नता का दोष आ गया है। कथाकार का 'उग्र', विद्रोही, स्वच्छन्द तथा अच्छा-बुरा व्यक्तित्व उसके पात्रों में यत्र-तत्र अभिव्यक्त हो उठा है।

३. भाषा और संवाद

भावाभिव्यक्ति एवं विचार-विनिमय के प्रधान साधन का नाम भाषा है, और उसका स्वरूप स्थान, विषय, पात्र आदि के अनुरूप निर्धारित किया जाता है। आज हिन्दी के अनेक रूप प्रयुक्त हो रहे हैं, जैसे तत्सम शब्दों से परिष्कृत साहित्यिक हिन्दी, बोलचाल की सरल हिन्दी, अरबी-फारसी के शब्दों से युक्त हिन्दी और स्थानीय बोलियां या ग्रामीण हिन्दी। कहानी की भाषा का रूप क्या हो ? यह प्रश्न यद्यपि विवादास्पद हो सकता है, तथापि इतना तो निश्चित है कि उसकी भाषा में भावगत उपयुक्तता के साथ-साथ सुबोधता एवं सरलता का होना आवश्यक है। वह भावों को मूर्त रूप में उपस्थित करने में समर्थ हो।

'उग्र' के कहानी-साहित्य की भाषा विषय के अधिक से अधिक अनुकूल है, उसमें विषयानुरूप स्वाभाविकता का गुण प्रचुर मात्रा में मिलता है। पांडित्य-प्रदर्शन का उसमें सर्वथा अभाव है। वह कहीं तत्सम शब्दों का सौष्ठव लिए हुए है और कहीं अरबी-फारसी, अंग्रेजी आदि के शब्दों की स्वाभाविक छटा से युक्त है। सामाजिक, राजनैतिक तथा ऐतिहासिक कहानियों की भाषा जहां सरल, मुहावरेदार तथा स्पष्ट है, वहां प्रतीकात्मक तथा भावनाप्रधान कहानियों की भाषा में लाक्षणिकता, वक्रता, मूर्तिमत्ता, कल्पना, भावुकता, व्यंजनात्मकता, सांकेतिकता, नवीन उपमाओं आदि की प्रधानता मिलती है। ये कहानियां प्रसाद-संस्थान के अन्तर्गत आती हैं,

और इनकी भाषा पर छायावादी कलात्मकता का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। इन कहानियों की कथाओं के वाच्यार्थ में उतना सौन्दर्य नहीं है, जितना सांकेतिक अर्थ में निहित है। इस प्रकार की भाषा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—"विश्वास के अनुसार फल···'प्रकाश' की भावना होते ही जंगली रास्ते की सारी अटपटता, अंधेरी रात-सी दूर हो गई, और दिव्य गगन-पथ की तरह मेरे यार का रास्ता जगमगा उठा!"[1] इन कहानियों की भाषा काव्यमयी तथा चमत्कारपूर्ण है। उसमें भाव-भंगी, उमंग, चंचलता और मादकता तथा वातावरण से ऊपर उठने की शक्ति अद्भुत है। उपमान प्रस्तुत करते समय, कथाकार एक के बाद दूसरे उपमानों की झड़ी-सी लगा देता है—'सूरज-सा मुंह मेरे यार का, चांद-सा माथा, दिन-सी दीप्त देह, रात-सी रहस्यमयी पलकें। उस रसीले की एक-एक सांस आबेहयात···।"[2] वस्तुतः इस नाते 'उग्र' कालिदास के समान अपनी मौलिक उपमाओं के बिना एक पग भी नहीं चलते हैं। उनकी कुछ मौलिक उपमाओं के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. "मेरी एक मां थी। मस्ज़िद की तरह बूढ़ी, आम की तरह पकी, दया की तरह उदार, दुआ की तरह मददगार, प्रकृति की तरह करुणामयी, खुदा की तरह प्यारी और कुरानपाक की तरह पाक।"[3]

२. "मेरे एक बच्चा था। चांदनी-सा गोरा, नए चांद-सा प्यारा, युवती के कपोल-सा कोमल, प्रेम-सा सुन्दर, चुम्बन-सा मधुर, आशा-सा आकर्षक और प्रसन्न हंसी-सा सुखद।"[4]

३. "मेरी एक बीवी थी। गुलाब की तरह खूबसूरत, मोती की तरह आबदार, कोहनूर की तरह बेशकीमती, नेकी की तरह नेक, चांद की तरह सादी, लड़कपन की हंसी की तरह भोली और जान की तरह प्यारी।"[5]

---

१. 'मुक्ता', 'रेशमी', पृ० ५०
२. 'मुक्ता', 'रेशमी', पृ० ५१
३. 'मुक्ता', 'दोजख की आग', पृ० १५
४. वही।
५. वही।

४. "सांड जैसे बाजरे की टट्टी में घुस जाए वैसे ही नेता डिब्बे में घुस बैठा।"[१]

५. "उसने पुनः डुबकी मारी। माथे का पुष्प-मुकुट पुनः प्रवाह में बह चला। कपड़े का रंग उसके पीछे, धोखा के पीछे अपयश की तरह।"[२]

उपर्युक्त उपमाएं कोरा चमत्कार ही उत्पन्न नहीं करती हैं, इनकी सार्थकता विषयानुरूप प्रभावपूर्ण प्रेषणीयता में निहित है। ये विषय की अभिव्यक्ति में जादू का-सा कार्य करती हैं, इनके प्रयोग से कथ्य की मार्मिकता में वृद्धि होती है।

'उग्र' कृत सामाजिक और राजनैतिक कहानियों की भाषा अपेक्षाकृत अधिक व्यावहारिक है। उसमें मुहावरों, लोकोक्तियों, अरबी-फारसी के शब्दों और अंग्रेजी के वाक्यांशों या शब्दों का विषयानुरूप प्रयोग मिलता है। पात्रानुकूल भाषा के प्रयोग में भी कलाकार की सफलता दर्शनीय है—"आपने बड़ी ज्यादती की जो कभी मुझे यह खबर न दी कि आपको गेहूं की कमी है। कसम खुदा की, आप नामंज़ूर करेंगे इस नाचीज़ नज़र को तो आपसे खुदा भी खुश न होंगे। मैं आपको बहादुर और बुज़ुर्ग और सौदामिनी को अपनी बेटी ताज बीबी की तरह मानता हूं—वल्लाह।"[३] ये वाक्य उदार और विनीत मुसलमान रमजान के हैं, इनमें उसका व्यक्तित्व साकार हो उठा है। 'कसम खुदा की', 'नामंज़ूर', 'नाचीज़ नज़र' 'वल्लाह' आदि फारसी-अरबी के शब्द कितने स्वाभाविक रूप से हिन्दी की प्रकृति में समा गए हैं।

अंग्रेजी शब्दों या वाक्यांशों का प्रयोग एक सीमा तक ही कथाकार ने किया है। उसने अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों—'बिल्डिंग', 'नम्बर', 'डबल', 'जीरो', 'मार्केट वेल्यू', 'कामरेड', आदि का सर्वथा स्वाभाविक प्रयोग ही किया है—"मैं पुनः बिल्डिंग के नम्बर देखता क्या, आंखों में टटोलता हुआ चला। मैं इस कदर परेशान हो चुका था डबल जीरो की खोज में कि

१. 'चित्र-विचित्र', न्यूज रील', पृ० १०७
२. वही, 'काने का ब्याह', पृ० ७२
३. 'पोली इमारत', 'बाजरा', पृ० ९२

अब चारों ओर से हटकर मेरा ध्यान मकान के नम्बरों पर यों डट गया जैसे गुरु द्रोणाचार्य द्वारा बतलाए गए निशाने पर अर्जुन की एकान्त दृष्टि।"[1] इस प्रकार आलोच्य कथाकार ने अनेक अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग अत्यन्त स्वाभाविक रूप में ही किया है, उससे विषय में प्रभावोत्पादकता का संचार हुआ है, क्लिष्टता या दुरूहता नहीं आई है।

स्थानीय बोलियों का प्रयोग, कथाकार ने केवल हास्य-व्यंग्य-प्रधान कहानियों में ही किया है। उससे हास्य-व्यंग्य के संचार में पूर्ण सहयोग मिला है और पात्र-विशेष के व्यक्तित्व का अंकन भी हुआ है। 'सोसायटी आफ डेविल्स' में गोरे और 'पीटर दि ग्रेट' के संवादों की भाषा इस प्रकार के प्रयोगों का सर्वोत्तम उदाहरण है—

"सूत जा, सूत जा। तोहार होश ठिकाने नाहीं हौ। कत हल्ला करइ। हमारे मालिक क उघाई जाई त बिगड़ि हैं।"

अंग्रेजी बोलना बेकार समझकर साहब ने लंगड़ी हिन्दी की शरण ली 'यू शूआर।'

पीटर—"देख, सूअर-ऊअर मत कहे, नाहीं त कही देत हई, आपन मुंह नाहीं देखतन बनरे के···"

साहब—"तुम इस गाड़ी में काहे आया ?"

पीटर—"तू काहे अइलइ ? पइसा देहली, तब अइली। केहू के बाप क साझा।"

साहब—"बाहर निकल आओ ! गाधा !"[2]

सामाजिक व्यभिचार, विद्रूपता तथा अभद्रता को दिखाने के लिए, 'उग्र' अशिष्ट शब्दों, गालियों आदि का प्रयोग भी करते हैं। वे 'रण्डी', 'पतुरिया', 'कसबी', बदमाश', 'व्यभिचारिणी', 'हरामज़ादा', 'सूअर', आदि शब्दों को निस्संकोच व्यवहार में लाते हैं—"किसी का दबैल बसा हूं जो चुप रहूं। एक नहीं हज़ार बार कहता हूं, तू मेरी स्त्री नहीं, रण्डी है, पतुरिया है, कसबी है, बदमास है।···हां, हां, कह। रुकी क्यों ? मुझे लज्जा

---

१. 'चित्र-विचित्र', 'कम्युनिस्ट दरवाजे पर', पृ० ११३
२. 'चित्र-विचित्र', 'सोसायटी आफ डेविल्स'. पृ० ५८

क्यों नहीं आती ? तू मुझे उपदेश देगी। दुष्टा ! व्यभिचारिणी ! वेश्या !"[1]

'उग्र' का काव्य-प्रेमी व्यक्तित्व, प्रतिपाद्य विषय को प्रभावशाली तथा मार्मिक बनाने के उद्देश्य से, बीच-बीच में पद्यात्मक अंशों का प्रयोग किए बिना नहीं रहा है। ये प्रयोग हिन्दू-मुस्लिम एकता, उच्च मानवीय प्रेम, राष्ट्रीय चेतना आदि की अभिव्यक्ति में 'सोने में सुहागा' का कार्य करते हैं। यथा—

१. हिन्दू-मुस्लिम एकता के सन्दर्भ में—

तू भी इन्सान है, मैं भी इन्सान हूं।
गर सलामत हैं हम, तो खुदाई कहां।
तू है मेरा खुदा, मैं हूं तेरा खुदा,
तू खुदा, मैं खुदा, फिर जुदाई कहां।"[2]

२. राष्ट्रीय चेतना के प्रसार के लिए—

"ऐसी होली—
ऐसी होली खेलो लाल ! ऐसी होली—
जन्मभूमि का दुख हरने को माता का मंगल करने को।
भरने को पीड़ित हृदयों में, सुख के झर-झर-झर झरने को।।
ले कर में कराल करवाल,
ऐसी होली—
ऐसी होली खेलो, लाल।"[3]

इस प्रकार 'उग्र' की कहानियों की भाषा भावाभिव्यक्ति में पूर्ण समर्थ तथा विषयानुरूप है। उसका स्वरूप वर्ण्य विषय, पात्र और परिस्थिति के अनुसार कहीं तत्सम शब्दों से युक्त है, और कहीं अरबी-फारसी, अंग्रेजी आदि के शब्दों को आत्मसात किए हुए है। उनकी प्रतीकात्मक तथा भावना-प्रधान कहानियों की भाषा में लाक्षणिकता, वक्रता, सांकेतिकता, नवीन उपमाओं आदि का प्राचुर्य मिलता है और सामाजिक तथा राजनैतिक

---

१. 'वह कंचन-सी काया', 'करुण कहानी', पृ०८८-८९
२. 'ऐसी होली खेलो, लाल', 'खुदाराम', पृ० ८७
३. वही, पृ० १२८

कहानियों की भाषा में अरबी-फारसी, अंग्रेजी आदि के शब्दों का स्वाभाविक प्रयोग लक्षित होता है। हास्य-व्यंग्य-प्रधान कहानियों में वे ग्रामीण बोलियों, विकृत हिन्दी आदि का भी प्रयोग करते हैं। उपमाओं, मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग विषय को प्रभावोत्पादक बनाने के निमित्त ही करते हैं। पद्यात्मक अंशों के प्रयोग से वे न केवल सरलता का संचार करते हैं, वरन् मार्मिकता, विचारोत्तेजकता आदि का भी समावेश कर देते हैं। वस्तुतः उनकी भाषा की सर्वप्रमुख विशेषता उसकी स्वाभाविकता और विषयानुरूपता ही है, वह भावों की पूर्णतः अनुगामिनी है। उसमें कृत्रिमता तथा क्लिष्टता का सर्वथा अभाव मिलता है। यथार्थवादी विषयों की अभिव्यक्ति में, वह अशिष्ट, अभद्र तथा नग्न-सी बन गई है। उसमें लोकप्रचलित गालियों, असभ्य शब्दों आदि का प्रयोग होने लगता है।

४. संवाद

पात्रों के परस्पर वार्तालापों को 'संवाद' या 'कथोपकथन' कहते हैं। इनका कार्य है—पात्रों के व्यक्तित्व का उद्घाटन, कथावस्तु को गति देना और लेखक के दृष्टिकोण को स्पष्ट करना। ये कथासाहित्य में नाटकीयता, सजीवता आदि की सृष्टि करते हैं। इनके मुख्य गुण हैं—उपयुक्तता, अनुकूलता, सम्बद्धता, स्वाभाविकता, संक्षिप्तता और उद्देश्यपूर्णता। इन गुणों के अभाव में सजीव से सजीव संवाद भी निरर्थक समझे जाएंगे।

'उग्र' की कहानियों में, भिन्न-भिन्न उद्देश्यों से संवाद-योजना मिलती है। प्रतीकात्मक तथा भावप्रधान कहानियों के संवादों में भावुकता, अस्पष्टता एवं सांकेतिकता अधिक है, वे घटनाओं को गति देने एवं पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने की अपेक्षा, भाव-विशेष के उद्घाटन को ही अपना लक्ष्य बनाते हैं। कथाकार का वर्ण्य-विषय भी भाव-विशेष ही है, वह घटनाओं के वर्णन और पात्रों के चरित्र-चित्रण की ओर बहुत कम ध्यान देता है। पाठकों में किसी भाव या अनुभूति को जगा देना ही उसे अभीष्ट है। उदाहरणार्थ—

"कहां सनके जाते हो ?"

"बांसुरी वाले का गला टीपने।"

"शैतान की इच्छा से-क्यों ?"

"जबान संभालो। वह शैतान नहीं, संसार का सम्राट है। शाहंशाह के राज में विद्रोह ? तू कौन है ? हट, मैं राजसेवा में इस समय तत्पर हूं।"

"सावधान ! नादान इन्सान ! पछताएगा शैतान के चक्कर में पड़ा संसार का सम्राट वह नहीं, मैं हूं--भगवान्।"

"तू सोने की झड़ी लगा सकता है ?"[१]

इन संवादों से मनुष्य की स्वार्थ-लोलुपता का भाव-विशेष उद्घाटित करना ही कथाकार को अभीष्ट है। वह घटना को गति देने या पात्रों के चरित्र को प्रकाशित कराने के ध्येय को गौण महत्त्व देता है।

ऐतिहासिक कहानियों में, 'उग्र' की संवाद-योजना कथा-सूत्रों से गहरा सम्बन्ध लिए हुए होती है। संवाद घटनाओं को संचालित करते हैं, पात्रों के चारित्रिक गुणों को उभारते हैं। 'रेन आफ टेरर' में एक गोरे और भारतीय वृद्ध व्यक्ति के संवादों का एक उदाहरण देखिए—

"उठ, शाला ! टुमको पेड़ पर लटकाएगा।"

"क्यों ?" बूढ़े ने अकड़कर कहा।

गोरा—"तू बलवई है।"

वृद्ध—"कौन कहता है ?"

गोरा—"कुछ नहीं सुनेगा। वेल मिस्टर रमजी, 'बीफ़' लाओ। इसके मुंह में डालो।"

यह बीफ़ क्या बला है, यह ब्राह्मण देवता नहीं जानते थे। सम्मुख आने पर उन्हें मालूम हुआ कि 'बीफ़' का अर्थ गोमांस होता है।

ब्राह्मण के मुंह में गो-मांस ! लाठी सीधी कर बूढ़ा खड़ा हो गया। "खबरदार। चाहे जान ले लो, पर गो-मांस का नाम न लेना।"[२]

इन संवादों से आततायी गोरे सैनिक की बर्बरता, भारतीय ब्राह्मण की अटूट धार्मिक आस्था, तत्कालीन अराजकता आदि का उद्घाटन स्पष्ट रूप से हुआ है।

सामाजिक कहानियों के संवाद वस्तुस्थिति का यथार्थ चित्र अंकित करते

---

१. 'मुक्ता', 'रिसर्च', पृ० ५-६

२. 'काल-कोठरा', 'रेन आफ टेरर', पृ० २८

हैं, उनमें तथाकथित अश्लीलता भी मिलती है। उनका लक्ष्य सामाजिक कुरूपता, क्रूरता, नारी की दयनीय स्थिति और पुरुष की पाशविकता को पाठकों के सामने रखना है। तत्कालीन भारतीय समाज का व्यभिचारी से व्यभिचारी पुरुष भी पत्नी को पतिव्रता के रूप में ही देखना चाहता था। वह सन्देह-मात्र से ही उसे कुलटा मानकर मार डालता था। 'करुण कहानी' के संवाद इस कटु सत्य को अभिव्यंजित करते हैं—

"आंख उन्हें दिखाना जो तुमको चाहते हैं। मेरे सामने नखरे न करो। चाहे जैसे हो तुम्हें बताना होगा--वह तुम्हारा कौन है ?"

"मैं नहीं जानती।"

"नहीं जानती ?"

लीला चुप रही।

"नाहक तुमने किसी भले आदमी का घर अपवित्र किया।" नफ़रत से गणेश ने कहा, तुम्हें तो रण्डी होना···।"

बीच में ही लीला ने तड़फकर कहा, "चुप रहो। मैं हाथ जोड़ती हूं, चुप रहो।"

···"हरामजादी ! रण्डी ! ले ! ! !" कहकर उसने भयानक छुरे को लीला की छाती के पार कर दिया।"[1]

राष्ट्रीय-चेतना प्रधान कहानियों के संवादों में देश-प्रेम, त्याग, साहस, जीवनोत्सर्ग के उच्च भाव मुखरित हो उठे हैं। ये संवाद पात्रों के राष्ट्रीय व्यक्तित्व को साकार करते हैं, घटनाओं को गति देते हैं और कथाकार के विचारों के वाहक हैं—

(गाना गाते-गाते युवक महासिंह के नथुने फड़कने लगे, कपोल और कान सुर्ख हो उठे, सांस जोर से चलने लगी। युवती पद्मा भी उत्तेजित हो उठी।)

'अस्तु' युवक ने कहा, "आज रात को पिछले पहर हम धावा करेंगे।"

"हमारी विजय होगी।"

"हो सकती है—होगी ही सही। मगर हममें से शायद ही कोई उस

---

१. 'यह कंचन-सी काया', 'करुण कहानी', पृ० ८८

विजय का आनन्द लेने के लिए बचे।"

"देवपुर की आने वाली पीढ़ी हमारी पूजा करेगा। हम पर गर्व करेगी। हम न बचेंगे तो क्या ?"[१]

उपर्युक्त विभिन्न प्रकार के उद्धरणों से स्पष्ट है कि 'उग्र' की संवाद-योजना कहीं प्रत्यक्ष और कहीं अप्रत्यक्ष रूप से मूल संवेदना को अभिव्यंजित करती है। उसमें उपदेशात्मकता, निरर्थक विस्तार तथा नीरसता का प्रायः अभाव मिलता है। संवादों द्वारा कथा-प्रवाह शक्ति तथा स्फूर्ति प्राप्त करता है। वे पात्रों की वृत्ति, आचरण, स्वभाव आदि को प्रकाश में लाने में भी सहायक हैं। प्रतीकात्मक तथा भावप्रधान कहानियों में वर्ण्य विषय के कारण ही सांकेतिकता, अस्पष्टता तथा भावुकता की प्रबलता हुई है। ऐतिहासिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय कहानियों के संवाद क्रमशः घटना-चक्र, यथार्थ वस्तुस्थिति और ओजस्विता को प्रश्रय देते हैं। उनमें विचारोत्तेजकता, उग्रता और विद्रोहात्मकता का भी यथोचित समावेश हुआ है। यथार्थवादी दृष्टिकोण के कारण, कतिपय संवाद नग्नता के दोष से नहीं बच पाए हैं। उनमें सामाजिक मर्यादाओं, नैतिक बन्धनों आदि की अवहेलना भी मिलती है।

'उग्र' की कहानियों की शिल्पविधि पर विचार करने के उपरान्त, हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं, कि उनकी शिल्पविधि प्रसाद की कहानी-कला के तत्वों से प्रेरणा लेकर विकसित हुई है। नवीन भाषा-शैली के प्रयोग और स्वच्छन्द व्यक्तित्व के कारण उनकी कई कहानियां अविकसित रह गई हैं। चरित्र की अवतारणा में भावुकता, कल्पना और यथार्थवादिता का उपयोग प्रतिपाद्य-विषय के अनुरूप हुआ है। उन्होंने अपने आदर्शवादी, यथार्थवादी तथा एक सीमा तक अति-यथार्थवादी दृष्टिकोण के अनुसार ही वस्तु-विन्यास, पात्र-निर्माण, संवाद-योजना तथा भाषा-प्रयोग में सफलता प्राप्त की है। भाषा-शैली एवं रूप छवि के वर्णन में कथाकार की मौलिकता यत्र-तत्र परिलक्षित होती है। उसने छायावादी-रहस्यवादी विशिष्ट शैली को अपने ढंग की कथाओं में ढाला है। उसके व्यक्तित्व की उग्रता, विद्रोहा-

---

१. 'ऐसी होली खेलो, लाल', पृ० १३३

त्मकता तथा स्वच्छन्दता वर्ण्य-विषय के अभिव्यक्ति पक्ष को भी कम प्रभावित नहीं करती है। इसी से उसमें परम्परागत नियमों की अवहेलना भी हुई है। कथाकार अपने कथ्य के प्रकाशन के लिए कई शैलियों का उपयोग करता है। वह शिल्पविधि के परम्परागत उपकरणों को अपनाता भी है और तोड़ता-फोड़ता भी है। उसकी शिल्पविधि बरसाती नदी के समान अपना मार्ग स्वयं बनाती चली जाती है।

(ख) 'उग्र' के उपन्यासों की शिल्पविधि

उपन्यास की शिल्पविधि के प्रधान उपकरण भी प्रायः वही हैं, जो कहानी के, किन्तु उनके स्वरूप, आकार-प्रकार, ध्येय आदि में पर्याप्त भिन्नता होती है। 'उग्र' के उपन्यासों की शिल्पविधि पर विचार करते समय, यह अन्तर स्वयं ही स्पष्ट होता जाएगा, यहां इन उपकरणों के आधार पर विवेच्य कृतियों की सफलता-असफलता का उद्‌घाटन ही अपेक्षित है।

१ वस्तु-विन्यास

यह उपकरण उपन्यास का आधारभूत तत्व है, इसके अभाव में न केवल उपन्यास की रचना नहीं हो सकती, वरन् उपन्यास एक कथाकृति ही नहीं बन सकता। इसी तत्व पर उपन्यास का भवन खड़ा होता है, भावनाओं की गहराइयां, चरित्र के विचित्र रंग, मन के उतार-चढ़ाव-ये सभी कथा में ही मिल सकते हैं। उपन्यास के अन्य तत्व, अप्रधान उपकरणों की भांति कार्य करते हैं, कथानक के योग से ही उपन्यास की रचना होती है।

वर्ण्य विषय के आधार पर उपन्यास का कथानक घटना प्रधान, चरित्र-चित्रण प्रधान, सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक, मनोविश्लेषणात्मक, आंचलिक आदि हो सकता है। रचना-शैली के विचार से कथात्मक, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक, हास्य-व्यंग्यात्मक तथा डायरी शैली के कथानक निर्मित होते हैं। उपन्यासकार जीवन के किसी भी क्षेत्र से कथा का निर्वाचन कर सकता है, उसकी अभिव्यक्ति के लिए किसी भी शैली का आश्रय

ले सकता है, किन्तु उसमें मानवीय अनुभूतियों, जीवन-व्यापारों, गठन, सम्बद्धता, मौलिकता, सत्यता तथा रोचकता का होना आवश्यक है। प्रतिपाद्य विषय के अनुरूप घटनाओं के निर्वाचन और निर्वाह में ही कथा-शिल्प की सार्थकता समझी जाएगी।

'उग्र' की औपन्यासिक कृतियों के कथानक सामाजिक यथार्थ को लेकर चले हैं। उनमें प्रकृतवाद, आलोचनात्मक यथार्थवाद, अति यथार्थवाद तथा आदर्शवाद के कतिपय तत्त्व भी मिलते हैं। वे कथात्मक, पत्रात्मक, आत्म-कथात्मक तथा संस्मरणात्मक शैलियों में निर्मित हुए हैं। उपन्यास-कार का प्रतिपाद्य-विषय सामाजिक विकृतियों का यथार्थ-चित्रण है, उसी के अनुरूप उसने सामाजिक कथानकों को प्रश्रय दिया है। 'कढ़ी में कोयला', उपन्यास की भूमिका में लेखक अपना मन्तव्य प्रकाशित करता हुआ लिखता है—'कढ़ी में कोयला' में जैसे एक या एकाधिक भारतीय समाज के बिगड़े स्वास्थ्य पर नीरोग प्रकाश डालने की कोशिश मैंने की है, वैसी ही कोशिशें मैं एक ज़माने से करता आ रहा हूं। मेरे सभी उपन्यास, उपन्यास कहीं कम और सामाजिक रोगों के एक्स-रे फोटो जियादा हैं। 'चन्द हसीनों के खुतूत' हिंदू-मुस्लिम समस्या पर है, (बुधुआ की बेटी) 'मनुष्यानन्द' में अछूत समस्या है, 'दिल्ली का दलाल' में भगाई हुई युवतियों की समस्या है, 'शराबी' उपन्यास का विषय उसके नाम ही से विदित है। 'घंटा' और 'सरकार तुम्हारी आंखों में' की मैं नहीं कह सकता, बाकी के मेरे सभी उपन्यास समस्या वाले ही हैं।[1]

'चन्द हसीनों के खुतूत', 'मनुष्यानन्द' और 'शराबी' के कथानक सामान्यतः यथार्थवादी ही हैं, इनमें कहीं-कहीं आलोचनात्मक यथार्थवाद तथा अतियथार्थवाद की विशिष्टताओं का समावेश हुआ है। 'चन्द हसीनों के के खुतूत' जवान, खूबसूरत दिलों की एक दर्दनाक दास्तान है। दो सच्चे प्रेमियों को समाज और धर्म की दीवारें परस्पर मिलने नहीं देती हैं। वे अपने-अपने दर्द को पात्रों के माध्यम से व्यक्त करते हैं। कथा का आरम्भ, विकास और अन्त पात्रों के द्वारा ही होता है। इस प्रेमपरक सामाजिक

---

१. 'कढ़ी में कोयला', 'ठाट', पृ० ५-६

लघु उपन्यास को रचना-शैली के आधार पर पत्रात्मक कह सकते हैं। इसकी समग्र कथा चार पात्रों के सात पत्रों के संचय से सांकेतिक है[1]। 'मनुष्यानन्द' का प्रधान उद्देश्य अछूतोद्धार है। उपन्यासकार इसी प्रतिपाद्य-विषय को इस उपन्यास की कथा के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। इस उपन्यास के प्रधान पात्र अघोड़ी मनुष्यानन्द अछूतों की दुर्दशा देखकर, उन्हें जगाते हैं, उनके उद्धार सम्बन्धी आन्दोलन को प्रोत्साहन देते हैं और उन्हीं के सद्-प्रयासों से अछूतों की मांगें मान ली जाती हैं। उन्हीं के माध्यम से बुधुआ की बेटी रधिया का उद्धार होता है और वह अपने अपमान का बदला लेने के लिए पुरुष जाति के विरुद्ध क्रुद्ध-सिंहनी बन जाती है। सम्भवतः अघोड़ी मनुष्यानन्द की चारित्रिक महत्ता को कथा में प्रधानतम तत्त्व समझकर ही, उपन्यासकार ने 'मनुष्यानन्द' नाम को, 'बुधुआ की बेटी' नाम की अपेक्षा अधिक उपयुक्त समझा है। वे ही कथा-नायक हैं और उनके जीवना-दर्शों को कथाकार सन्देश रूप में प्रस्तुत करता है। आलोच्य उपन्यास की कथा, कथात्मक शैली में निर्मित हुई है। उपन्यासकार इतिहासकार के समान वर्ण्य-विषय का उसकी सीमाओं के अनुसार उद्घाटन करता है और अन्त में अभिप्रेत भावों की अभिव्यक्त करता है। बीच-बीच में आत्म-कथात्मक शैली का उपयोग भी कथाकार ने किया है। 'शराबी' के कथा-नक का वर्ण्य-विषय मदिरापान के दुष्परिणामों को दिखाना और इस कुटेव से दूर रहने की प्रेरणा देना है। इस उपन्यास की नायिका जवाहर का पिता पारसनाथ शराब की लत से अपना सर्वनाश करता है और अन्त में मदिरा-पान का घोर विरोधी बनकर भट्टियों को बन्द कराता है। इसे रचना-शैली के आधार पर कथात्मक उपन्यास कह सकते हैं। इसमें वर्णनात्मक पद्धति का बाहुल्य है और मनोवैज्ञानिक शैली का उपयोग कम स्थलों पर ही मिलता है।

उपर्युक्त तीनों उपन्यास यद्यपि सामाजिक यथार्थ को प्रश्रय देते हैं, तथापि तीनों की रचना-शैली में भिन्नता मिलती है। 'चन्द हसीनों के खुतूत' में कथाकार वर्णनात्मक शैली को उपयुक्त नहीं समझता है। तत्कालीन

---

१. डॉ० सत्यपाल चुघ : एक हस्तलिखित लेख—'चन्द हसीनों के खुतूत'

परिवेश में, दो भिन्न जातियों के प्रेम-पात्रों के स्वच्छन्द प्रेम को गोपनीय रखने के लिए, उसे पत्रात्मक पद्धति अधिक उचित प्रतीत हुई है। इसी से वह कथा को निजी पत्रों के द्वारा विस्तार देता है। किन्तु 'मनुष्यानन्द' और 'शराबी' में समस्याएं समष्टिगत हैं, उन्हें वर्णनात्मक शैली में अभि-व्यंजित करना ही कथाकार को उपयुक्त लगा है। 'मनुष्यानन्द' में अघोड़ी बाबा के जीवन का पूर्वार्द्ध आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है, जिससे उसकी प्रभावोत्पादकता को बल मिल सके। इसी प्रकार 'शराबी' में पारसनाथ के मानसिक द्वन्द्व को मनोविश्लेषणात्मक शैली में अभिव्यक्ति देना कथाकार ने ठीक समझा है। वस्तुतः कथाकार का कथा-शिल्प अपने वर्ण्य-विषय के अनुरूप शैली-निर्वाचन का कार्य करता है।

'दिल्ली का दलाल' और 'फागुन के दिन चार' का वर्ण्य-विषय घोर यथार्थवादी माना गया है। इन्हें प्रकृतवादी उपन्यासों की कोटि में भी रखने का प्रयास किया गया है। 'दिल्ली का दलाल' का कथानक नारियों के अवैध व्यापार करने वाले नर-पिशाचों से सम्बन्धित है। रूप और यौवन के जान-मार व्यापारियों के कुकर्मों का विस्तारपूर्वक तथा नग्न चित्रण करने के कारण, इसमें अश्लीलता आ गई है। परन्तु इसीसे इसे प्रकृतवादी उपन्यास मान लेने के विपक्ष में चतुर्थ अध्याय में विचार किया जा चुका है। इसका कथा-नक भी सामाजिक यथार्थवादी ही है। इसकी रचना-शैली वर्णनात्मक तथा व्यंग्यात्मक है। कथाकार ने सामान्य कथा तो कथात्मक शैली में अभिव्यंजित की है और सीरी जैसे पात्रों की दर्द-कथा को आत्मकथात्मक शैली में व्यक्त करना अधिक समीचीन समझा है। नारियों के जीवन से खेलने वाले नरा-धमों का उपहास उड़ाने के लिए व्यंग्यात्मक शैली का उपयोग किया गया है। 'फागुन के दिन चार' की कथा का वर्ण्य-विषय बनारस और बम्बई के विकृत जीवन का उद्घाटन है। कथाकार ने मुख्यतः संस्मरणात्मक शैली में इन दोनों नगरों के सामाजिक भ्रष्टाचारों, कुत्सित प्रवृत्तियों तथा अनैति-कता को बड़े कलात्मक रूप में अंकित किया है। इसी शैली में कथ्य की अभिव्यक्ति उसे सहज तथा स्वाभाविक प्रतीत हुई है। वह स्वयं भी इन नगरों में वर्षों घूमा-फिरा तथा भटका है, इसलिए संस्मरणात्मक शैली का उपयोग, अनुभूतिपक्ष को साकार करने में पूर्ण समर्थ रहा है। किन्तु सामान्य

घटनाओं के लिए वर्णनात्मक शैली और अनाचारियों के जीवन-वृत्तों पर प्रकाश डालने तथा उनके प्रति उपेक्षा का भाव जगाने के लिए व्यंग्यात्मक शैली का आश्रय लिया गया है।

'जीजीजी' तथा 'सरकार तुम्हारी आंखों में' के कथानक सामाजिक यथार्थ-परक होने पर भी आदर्शवाद के निकट पहुंच गए हैं। 'जीजीजी' में प्रभा की जीवनगाथा को उत्तरोत्तर आदर्शवादी बना दिया गया है। वह भ्रष्टाचारी पति के दोषों को न देख, नारी के मातृ रूप को ही प्रश्रय देती है और साधना की भट्टी में तपते-तपते दम तोड़ देती है। किन्तु अन्य पात्रों के जीवन के यथार्थ पक्षों को ही मुख्यतः उभारा गया है। उनमें भी दीनानाथ के व्यभिचारी जीवन-वृत्त को कथाकार ने विस्तार सहित प्रस्तुत किया है। इस लघु उपन्यास का कथा-निर्माण आत्मकथात्मक शैली में हुआ है। नरकू, मुरली ठाकुर, प्रभा, दीनानाथ आदि सभी पात्र अपनी-अपनी जीवन-गाथा सुनाते चले जाते हैं। इससे कथा में जटिलता तथा विश्रृंखलता-सी आ गई है। पाठक को कथा समझने में श्रम करना पड़ता है, उसकी तन्मयता भंग हो जाती है और वह कथा-सूत्रों को जोड़ने में ही उलझ जाता है। उपन्यासकार स्वयं तटस्थ-सा बना रहता है, वह कहीं-कहीं ही कुछ अंश वर्णनात्मक शैली में कहता है। 'सरकार तुम्हारी आंखों में' की कथा में एक ओर सामाजिक तथा राजनैतिक ह्रासोन्मुखी जीवन का यथार्थवादी दृष्टिकोण से चित्रण हुआ है और दूसरी ओर भारतीय संगीत की अलौकिकता अभिव्यंजित हुई है। इसका कथानक कथात्मक शैली में निर्मित हुआ है। कथाकार स्वयं ही सारी घटनाओं, पात्रों के सम्बन्ध में वर्णन और बीच-बीच में अपने विचारों को उपस्थित करता चला जाता है। इसी कथा-शिल्प में उसे कथ्य की अभिव्यक्ति सुगम तथा उपयुक्त प्रतीत हुई है।

'जुहू' के कथानक का सम्बन्ध बम्बई के कुत्सित सामाजिक जीवन से है। कथाकार ने यथार्थवादी दृष्टिकोण से बम्बई के विलासी जीवन के अनावृत विवरण अंकित किए हैं। उसके अनुसार विलासिता उसकी हवा में है, उसके एक मुहल्ले का 'चोर', दूसरे में 'सेठ' पुकारा जाता है। रचना-शैली के नाते विवेच्य कथानक वर्णनात्मक शैली को प्रधानता देता है। इसमें कथाकार की विवरणात्मक प्रतिभा यत्र-तत्र मुखरित हो उठी है।

वह बिना किसी उलझन के, अत्यन्त सहज भाव से बम्बई के कुत्सित समाज की कथा को कहता चला जाता है।

इस प्रकार 'उग्र' के कथानक वर्ण्य-विषय की दृष्टि से तो सामाजिक यथार्थवादी ही हैं। उन्हें प्रकृतवादी, आदर्शवादी या अतियथार्थवादी कहना उपयुक्त नहीं है। कथाकार का स्वच्छन्द व्यक्तित्व कथा-शिल्प में भी मनमानी अवश्य करता है, किन्तु उसका मूल ध्येय सामाजिक अनाचारों के यथार्थ रूप से पाठकों को परिचित कराना ही है। वर्ण्य-विषय के अनुरूप वह कहीं वर्णनात्मक शैली का उपयोग करता है और कहीं आत्मकथात्मक शैली का। इसी प्रकार उसने संस्मरणात्मक और पत्रात्मक शैलियों का प्रयोग भी किया है। प्रतिपाद्य-विषय के अनुसार रचना-शैली के निर्वाचन और निर्वाह में उसका कौशल निश्चय ही सराहनीय है।

'उग्र' की औपन्यासिक कृतियों के कथानक, सामान्यतः सुगठित हैं, उनके विस्तार में प्रायः पारस्परिक सम्बद्धता बनी रहती है। घटनाओं का स्वतंत्र महत्व कम है और वे समग्र रूप से प्रभाव डालती हैं। कथाकार व्यर्थ के विस्तार से लगभग सावधान रहा है और उसने कथा-सूत्रों में कम-से-कम शिथिलता आने दी है। किन्तु उसके कथानक पूर्णतः सुगठित भी नहीं हैं, उनमें कहीं-न-कहीं शैथिल्य अवश्य आ गया है। 'चन्द हसीनों के खुतूत' और 'जीजीजी' में तो उसने कथा-गठन का कार्य बहुत-कुछ पाठकों पर छोड़ दिया है। प्रथम उपन्यास का कथानक पत्रों के संचयन से सांकेतिक सा बन गया है। द्वितीय उपन्यास के कथानक में भी गठन अपेक्षाकृत कम है, उसमें जटिलता और विचित्रता का प्राधान्य हो गया है। 'फागुन के दिन चार' के कथानक में दो विपरीत नगरों—काशी और बम्बई, की घटनाओं को एक साथ प्रस्तुत करने के कारण, कहीं-कहीं शिथिलता आ गई है। कथाकार नायक जगरूप के माध्यम से बिखरे कथानक को एकसूत्रता प्रदान करने का प्रयास अवश्य करता है, परन्तु, फिर भी, शैथिल्य एक सीमा तक बना ही रहता है। 'कढ़ी में कोयला' के कथानक के प्रारम्भिक भाग के सम्बन्ध में तो स्वयं लेखक स्वीकार करता है—"प्रेस के भूतों की भूल से इस उपन्यास का चौदहवां परिच्छेद पहले के स्थान पर छप गया है। अतः उपान्यास का शुभारम्भ विवाद-ग्रस्त और किंचित कम मनोरंजक हो गया

है।"[1] 'मनुष्यानन्द' की कथा एक-आध स्थल पर अघोड़ी मनुष्यानन्द तथा बुधुआ के लम्बे भाषणों से शिथिल होने लगती है, जिसे कथाकार शीघ्र ही गठन प्रदान करता है। 'शराबी', 'जुहू' और 'दिल्ली का दलाल' उपन्यासों के कथानक सर्वाधिक सुगठित हैं।उसका मुख्य कारण, विषय की स्पष्टता और कथात्मक शैली का प्रयोग कह सकते हैं।

'उग्र' अपने उपन्यासों में आधिकारिक कथाओं के साथ-साथ प्रासंगिक कथाओं का समावेश भी करते हैं। गौण कथाओं का उपयोग, मूलकथा को गति देने के लिए या किसी-न-किसी समस्या को स्पष्ट करने के लिए ही करते हैं। वे प्रायः अनावश्यक नहीं हैं, उनके समावेश से उपन्यासों का महत्त्व बढ़ा ही है, कम नहीं हुआ। किन्तु, 'मनुष्यानन्द' और 'फागुन के दिन चार' में प्रासंगिक कथाएं संख्या में कुछ अधिक हो गई हैं, उनसे उपन्यास कुछ बोझिल-से बन गए हैं। मूल संवेदनाओं के सहायक होने के कारण, उन्हें सर्वथा निरर्थक भी नहीं माना जा सकता है। कथाकार प्रासंगिक कथाओं के प्रायः दोनों उपभेदों—'पताका' और 'प्रकरी' का उपयोग अपने उपन्यासों में करता है। यथा—'फागुन के दिन चार' में नन्दकुमार की कथा 'पताका' और 'कढ़ी में कोयला' में गौरीसिंह की कथा 'प्रकरी' है। प्रथम प्रासंगिक कथा, एक बार आरम्भ होकर, अन्त तक चलती रहती है और द्वितीय प्रासंगिक कथा बीच में आरम्भ होकर, बीच में ही समाप्त हो जाती है।

कथा-निर्माण की सामान्य विशेषताओं की दृष्टि से भी 'उग्र' के उपन्यासों के कथानक प्रायः सफल हैं। उनमें सम्बद्धता, मौलिकता, निर्माण-कौशल, रोचकता आदि विशिष्टताओं का निर्वाह मिलता है। कथाकार प्रत्येक कथानक की घटनाओं को श्रृंखलाबद्ध करने का स्वाभाविक प्रयास करता है। उदाहरणार्थ 'चन्द हसीनों के खुतूत' के विविध पत्रों की विभिन्न घटनाओं को उपन्यासकार ने एक सुन्दर श्रृंखला का रूप दिया है। पत्रों के काल-क्रम, पत्रान्तर्गत चयनित प्रसंगों तथा उनकी पारस्परिक परोक्ष सम्बन्ध निहति से पाठक विच्छिन्न से कथासूत्रों को श्रृंखलित करने में सहज ही

---

१. 'कढ़ी में कोयला', पृ० ६

समर्थ हो जाता है।[1] इसी प्रकार 'दिल्ली का दलाल' में दिल्ली, लखनऊ आदि विभिन्न नगरों की घटनाएं परस्पर एक श्रृंखला-सी लिए हुए हैं। 'शराबी' और 'जुहू' के कथानक अल्प घटनाओं को लेकर चले हैं, इसलिए इनमें सम्बद्धता का गुण पाया जाना स्वाभाविक है। 'फागुन के दिन चार' में कथा की श्रृंखला अवश्य कुछ शिथिल हुई है, जिसे पुनः नायक जगरूप द्वारा जोड़ा गया है। 'जीजीजी' की आत्मकथा शैली, कथा में विश्रृंलता तो नहीं लाती, उससे कुछ जटिलता का संचार अवश्य होता है। सामान्य पाठक, सभी पात्रों की आत्मकथाओं को सुनने में जहां विचित्रता पाता है, वहां उलझ भी जाता है। परन्तु सभी उपन्यासों के कथानकों को एक साथ देखने से, यही कहा जाएगा कि कथाकार सम्बद्धता के गुण का पालन ही करता है, विरोध नहीं। उसमें इस गुण के निर्वाह का कौशल है, उसकी प्रयोग-प्रिय शैली ने ही इसका कहीं-कहीं उल्लंघन किया है।

आलोच्य कथाकार कथा-निर्माण में मौलिकता का पूर्ण ध्यान रखता है। उसने मानव-जीवन के अच्छे-बुरे पक्षों को देखा है, इसी से वह जीवन-अनुभूतियों की अभिव्यक्ति अधिक विस्तार और सूक्ष्मता से कर सका है। यह उसका सौभाग्य या दुर्भाग्य है कि उसने जीवन के स्वस्थ पक्षों की अपेक्षा, कुत्सित अंगों, सामाजिक विकृतियों तथा धार्मिक आडम्बरों पर अधिक लेखनी चलाई है। उससे अश्लीलता आई और कथाकार को अनेक छोटे-बड़े आलोचकों की बौछारें सहनी पड़ी हैं। परन्तु उससे कथानकों की मौलिकता और उग्र-प्रतिभा को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। उसने मौलिक घटनाओं की सृष्टि द्वारा सामाजिक कुरूपता को कथाओं का रूप दिया है। उसने मानव-समाज की अनेक समस्याओं और उनसे सम्बन्धित तथ्यों का साक्षात् कराने में प्रखर प्रतिभा का परिचय दिया है।

'उग्र' के उपन्यासों के कथानक अस्वाभाविक घटनाओं तथा कोरी कल्पनाओं की अपेक्षा स्वाभाविक घटनाओं तथा यथार्थ गतिविधियों को प्रश्रय देते हैं। कथाकार बिना समझे-बूझे किसी विषय पर लेखनी नहीं चलाता है। उसने मानव-समाज के विविध पक्षों को बड़ी निकटता से देखा

---

१. डा० सत्यपाल चुघ : एक हस्तलिखित लेख—'चन्द हसीनों के खुतूत'

है और उसकी विकृतियों के मूल कारणों को समझा है। उसने सुधार की भावना से सामाजिक विद्रूपताओं का वास्तविक स्वरूप पाठकों के सामने रखा है। किन्तु, 'मनुष्यानन्द' के अघोड़ी बाबा और 'सरकार तुम्हारी आंखों में' के उस्ताद गुलाब खां के कतिपय क्रिया-कलापों में अस्वाभाविकता अवश्य मिलती है। 'मनुष्यानन्द' का सत्रहवां परिच्छेद और 'सरकार तुम्हारी आंखों में' का अन्तिम भाग औपन्यासिक कथा-शिल्प की दृष्टि से दोषपूर्ण ही है। उनकी सत्यता में सामान्यतः विश्वास नहीं किया जा सकता है।

रोचकता की दृष्टि से, उग्र के कथानक सफल हैं। उनमें आद्योपान्त सरसता मिलती है, इसी से वे हृदय को छूने में समर्थ हैं। उनके शब्द बोलते हैं, घटनाएं पाठकों को मन्त्रमुग्ध कर देती हैं। कथाकार की लेखनी में जादू है, जो पाठकों के सिर पर चढ़कर बोलता है।[1] कुछ आलोचकों ने 'उग्र' के कथानकों की रोचकता का यह अर्थ भी लगाया है कि कथाकार धनोपार्जन के लिए उन्हें नग्न दृश्यों से सरस बनाता है और वे अमर्यादित हैं। इस आक्षेप का उत्तर चतुर्थ अध्याय में दिया जा चुका है, अतः यहां इतना कहना ही पर्याप्त है कि अश्लीलता का कारण, कथाकार का अति-यथार्थवादी दृष्टिकोण ही है, धनोपार्जन की समस्या उसके सामने गौण रूप में ही रही है।

संक्षेप में, 'उग्र' की औपन्यासिक कृतियों के कथानक सामाजिक हैं। उनका वर्ण्य-विषय सामाजिक व्यभिचार तथा समाज की विभिन्न समस्याएं हैं। रचना-शैली की दृष्टि से वे कथात्मक, आत्मकथात्मक, संस्मरणात्मक, पत्रात्मक आदि शैलियों में निर्मित हुए हैं। उनमें कथाकार की मौलिक शैली, जिसे 'उग्र शैली' के नाम से सम्बोधित किया जाता है, उसकी स्वच्छन्दता, उग्रता तथा विद्रोहात्मकता सर्वत्र लक्षित होती है। रचना-लक्ष्य की दृष्टि से कथाकार ने मुख्यतः यथार्थवादी कथानकों को प्रश्रय दिया है, बीच-बीच में प्रकृतवादी, आदर्शवादी, अतियथार्थवादी और आलोचनात्मक यथार्थवादी तत्वों का भी समावेश हो गया है। उनमें कथा-

---

१. डॉ० त्रिभुवनसिंह : 'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद', पृ० ३८४

निर्माण की सामान्य विशेषताओं का निर्वाह प्रायः हुआ है। कतिपय कथानकों के कतिपय अंश अस्वाभाविकता का दोष अवश्य रखते हैं, उनके मूल में भारतीय अलौकिकता का दिग्दर्शन है। कथानकों की अश्लीलता साधन है, साध्य नहीं, उससे कथा-शिल्प को आघात नहीं पहुंचा है। कथाकार सुधार के उद्देश्य से ही सामाजिक अनाचारों को यथार्थ रूप में अंकित करता है। किन्तु उसका उग्र व्यक्तित्व जहां सीमा का उल्लंघन कर गया है, वहां की अश्लीलता अपने आप में दोष ही मानी जाएगी, गुण नहीं।

२. पात्र और चरित्र-चित्रण

उपन्यास का दूसरा महत्त्वपूर्ण उपकरण पात्र और चरित्र-चित्रण है, पात्रों के क्रिया-कलापों से ही कथानक और कथावस्तु का निर्माण होता है। पात्रों के सम्बन्ध में फार्स्टर लिखते हैं—"आत्माभिव्यक्ति करता हुआ उपन्यासकार कुछ एक शब्द-मूर्तियां गढ़ लेता है, उनके साथ और लिंग जोड़ता है, उन्हें अनुभव प्रदान करता है, उनके उद्धरण-चिह्नों में बातचीत करवाता है—ये शब्द-मूर्तियां ही उपन्यास के पात्र हैं।"[1] इस प्रकार उपन्यासों के पात्रों को सजीव शब्द-मूर्तियां तो कह सकते हैं, परन्तु ऐसी शब्द-मूर्तियां जिनमें कथानक की एकसूत्रता होती है।

उपन्यासकार विभिन्न प्रकार के सशक्त एवं प्रभावशाली पात्रों की सृष्टि द्वारा मानव-चरित्र की विशेषताओं का उद्घाटन करता है और यह भी दिखाता है कि सामाजिक परिस्थितियां कहां तक मनुष्य को प्रभावित करती हैं। वह पात्रों की मानसिक विचारधारा का तथा उनके चरित्र का ऐसे कौशल से वर्णन करता है कि उसका प्रभाव पाठकों पर पूर्ण पड़ता है।[२] कथानक की दृष्टि से पात्रों के मुख्यतः दो भेद किये जा सकते हैं—प्रधान-पात्र और गौण-पात्र। वर्ग के विचार से पात्रों को वर्गगत और व्यक्तिगत

---

1. Forster, 'Aspects of the Novel', p. 44
"The novelist—makes up a number of words masses roughly describeing himself—gives them names and sex assigne them—his characters."

२. श्री ब्रजरत्नदास : 'हिन्दी उपन्यास-साहित्य', पृ० २९८

इन दो भेदों में विभाजित किया जाता है। पात्रों की सृष्टि में उपन्यास-कार पूर्ण स्वतन्त्र होता है, वह काल्पनिक पात्रों की सृष्टि भी कर सकता है। किन्तु, यथार्थ जीवन से लिए गए नए पात्र अधिक सजीव तथा प्रभा-वोत्पादक होते हैं।

चरित्र-चित्रण से अभिप्राय पात्रों के व्यक्तित्व के बाह्य तथा आन्तरिक स्वरूप के उद्घाटन से हैं। इसकी दो विधियां प्रचलित हैं—प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक और परोक्ष या अभिनयात्मक। चरित्र-चित्रण की मुख्य विशेषताएं हैं—अनुकूलता, स्वाभाकिता, सप्राणता, सहृदयता और मौलिकता।

'उग्र' की औपन्यासिक कृतियों में भारतीय समाज की विभिन्न समस्याओं के उद्घाटन तथा मानव-चरित्र के स्वरूप के विश्लेषण के लिए लगभग ९० पुरुष पात्रों तथा ४० स्त्री-पात्रों की सृष्टि हुई है। इनमें से अधि-कांश पात्रों-मुरारी कृष्ण, याकूब, मानिक, पारसनाथ, पन्नालाल, अब्दुल्ला, सन्तू, नन्दन, बुधुआ, घनश्याम, लियाकत हुसैन, रहीम, मदनसिंह, दीनानाथ मंगलप्रसाद, घमण्डीलाल, घीसालाल, मदनू, लीलाधर, जगरूप, हरिसिंह, रामजी, नर्गिस, जवाहर, हीरा, कुन्दन, सीरी, नैना, रधिया, हुस्ना आदि का सम्बन्ध यथार्थ जीवन से है। परन्तु अघोड़ी मनुष्यानन्द, भूदेव शर्मा, रामराज, गांगुली, टुन-टुन, प्रभा, प्रेमा, महादेवी आदि पात्र यथार्थ जीवन से सम्बन्ध रखते हुए भी आदर्शवादी हैं और भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति गहन आस्था रखते हैं। ये पात्र गौरवशाली परम्पराओं तथा मर्यादापूर्ण मान्यताओं के पोषण और प्रसार के लिए प्रयत्नशील हैं।

'उग्र' मुख्यतः सामाजिक उपन्यासकार हैं, इसलिए उनके अधिकांश पात्र वर्गगत हैं। वे भारतीय समाज के उच्च, मध्य और निम्न वर्ग से संबंध रखते हैं। उच्च वर्ग के पात्र, अपने वर्ग के तत्कालीन भ्रष्टाचार, शोषण-वृत्ति तथा विलासिता का उद्घाटन करते हैं। मध्यवर्ग के पात्र, उस समय की सामाजिक असंगतियों और उनसे होने वाले दुष्परिणामों की कथा कहते हैं। निम्नवर्ग के पात्र अज्ञानता, विवशता और नीचता के सभी व्यापारों को प्रकाश में लाते हैं। इसी प्रकार हिन्दू पात्रों में आर्य-समाजी पात्र तर्क-वितर्क, सुधार एवं आर्य-धर्म के प्रचार में तल्लीन हैं और सनातन-धर्मी पात्र

पुरातन परम्पराओं, रूढ़िवादी मान्यताओं तथा अन्धविश्वासमयी धार्मिक वृत्तियों पर प्राण न्यौछावर करते हैं। मुसलमान पात्रों में संकीर्ण विचारों के मुसलमान धार्मिक उन्माद से अन्धे होकर हिंसा वृत्ति का आश्रय लेते हैं और उदार मुसलमान मानवता के ऊंचे आदर्शों के अनुसार आचरण करते हैं। 'उग्र' के नारी-पात्र मध्यवर्ग तथा निम्नवर्ग से सम्बंधित हैं। मध्यवर्ग के नारी-पात्र अपने वर्ग के कठोर बन्धनों, पुरुषों के अन्यायपूर्ण व्यवहार तथा निजी वेदना को व्यक्त करते हैं। निम्नवर्ग की नारियां प्रायः वेश्याएं हैं, जो अपने नैतिक पतन और उसके मूल कारणों का उद्घाटन करती हैं।

आलोच्य कथाकार ने घटनाओं के संचालन और मूल संवेननाओं की अभिव्यक्ति के लिए मुख्य पात्रों के साथ अनेक गौण-पात्रों की सृष्टि भी की है। यथा-मुरारी, बुधुआ, मनुष्यानन्द, गुलाब खां, जगरूप आदि प्रधान पुरुष-पात्रों और नर्गिस, जवाहर, रधिया, मनोरमा, जीजीजी, मिस रोज आदि प्रधान स्त्री-पात्रों के साथ, रामराज, छोगालाल आदि गौण पुरुष-पात्रों तथा सीरी, सुकली, गुलाब, मीरा आदि गौण स्त्री-पात्रों का आयोजन भी किया है। उसके गौण-पात्र अनावश्यक नहीं हैं, वे वातावरण के निर्माण में सहायता देते हैं, कथानकों को सरस तथा सबल बनाते हैं। उनके माध्यम से प्रधान-पात्रों के चरित्र पर प्रकाश भी पड़ता है।

'उग्र' के प्रधान-पात्रों में नायक-नायिका, प्रतिनायक-प्रतिनायिका पताका-नायक, पताका-नायिका आदि का निर्वाचन करना कठिन है। वे पुरातन मान्यताओं में अधिक विश्वास नहीं रखते हैं। व्यापक दृष्टिकोण से यदि विचार करें तो, मुरारीकृष्ण, मानिक, अब्दुल्ला, अघोड़ी मनुष्यानन्द, उस्ताद गुलाब खां, जगरूप और हरिसिंह को क्रमशः 'चन्द हसीनों के खुतूत', 'शराबी', 'दिल्ली का दलाल', 'मनुष्यानन्द', 'सरकार तुम्हारी आंखों में', 'फागुन के दिन चार' एवं 'जुहू' का नायक माना जा सकता है। इसी प्रकार स्त्री-पात्रों में नर्गिस, जवाहर, रधिया, फीरोज़ी, जीजीजी, मिस रोज़ एवं हुस्ना को नायिका का पद दे सकते हैं।

स्थिरता और गतिशीलता की दृष्टि से यदि 'उग्र' की औपन्यासिक कृतियों के पात्रों का विभाजन करें तो, याकूब, घनश्याम, दीनानाथ, घीसा-लाल, जगरूप, नन्दकुमार, जान, हरिसिंह, कुन्दन, फ़ीरोज़ी, हुस्ना, प्रभा

आदि पात्रों को स्थिर-चरित्र और अली हुसैन, पारसनाथ, भूदेव शर्मा, रामराज, बुधुआ, अघोड़ी मनुष्यानन्द, लियाकत हुसैन, जवाहर, रधिया, प्रेमा आदि पात्रों को 'गतिशील-चरित्र' कह सकते हैं। प्रथम प्रकार के चरित्र प्रायः परिस्थितियों एवं घटनाओं के घात-प्रतिघात से प्रभावित नहीं होते हैं और द्वितीय प्रकार के चरित्र बाह्य परिस्थितियों के अनुसार संवेदनशील हैं, उनके जीवन में उत्थान-पतन के अवसर पग-पग पर आते हैं, वे उठते भी हैं और गिरते भी हैं। उनमें मानवीय गुण-दोषों का प्रदर्शन अधिक सफलता से हुआ है, इसी से वे पाठको कों अपेक्षाकृत अधिक प्रभावित भी कर सके हैं।

आलोच्य कथाकार अपने पात्रों के व्यक्तित्व के बाह्य एवं आन्तरिक पक्षों में, बाह्य पक्ष का उद्घाटन मुख्य रूप से करता है। वह बाह्य स्वरूप को प्रकाश में लाने के लिए पात्रों की बातचीत के निजी ढंग, हाव-भाव, रहन-सहन, चाल-ढाल, कार्यकलाप आदि का आश्रय लेता है। यथा-'मनुष्यानन्द' में घनश्याम और रधिया की बातचीत, हाव-भाव आदि से घनश्याम के मिथ्याभिमान तथा नीचता और रधिया की अबोधता, दीनता एवं भावी-विद्रोह की आशंका को वाणी दी गई है—

"ज्यादे टिर्र-टिर्र न करो !" उसने पुरुष और जबरदस्त के स्वर में कहा—"मैंने तुम्हें क्या ठगा है ? कौन-सा बैंक अपने पर्स में रखकर तुम आई थीं जो मैंने ठग लिया ? मैं शराब पीता हूं—पीता हूं। तुमसे मतलब ? मेरी और भी वेश्याएं हैं, तुम कौन हो बोलने वाली ?"

"ठीक कहा तुमने', अब राधा ने बोलना बन्द कर दिया—"ठीक कहा तुमने, मैं कौन हूं बोलने वाली। गरीब को क्या अधिकार है बोलने का ? लुटे हुओं को बोलने का क्या अधिकार है ? बाप रे ! ये तुम्हारी वही मीठी और रसीली आंखें जिन्होंने मेरी आंखों को चूम-चूमकर वफादार रहने की प्रतिज्ञाएं की थीं ? यों भी आंखें बदल सकता है पाजी पुरुष ! ऐसा तोते चश्म भी होता है नीच पुरुष। बस ! बस, मैं कौन हूं ? हाय री मां ! मैं कौन हूं ?"

इसके बाद वह बिजली-सी चमकती, तड़पती कमरे के बाहर निकल गई। घनश्याम ने भी उसे रोकने या बुलाने की चेष्टा नहीं की। वह उठा ही नहीं पलंग से। सुबह हो गई, धूप निकल आई, कमरे का वातावरण गर्म

हो चला, फिर भी, न तो उस कमरे में वह गरीब-औरत ही आई और न वह अमीर-पुरुष ही कमरे के बाहर हुआ।'[1] इस उद्धरण से कथाकार के कला-कौशल का बहुत कुछ परिचय मिल जाता है। वह पात्रों के बाह्य व्यक्तित्व को ही उभारता है, उनके आन्तरिक भावों एवं विचारों के विश्लेषण में अज्ञेय, जैनेन्द्र प्रभृति मनोवैज्ञानिक कथाकारों के समान प्रयत्नशील नहीं है। उसके पात्र शब्द-मूर्तियां तो हैं, किन्तु उनके आन्तरिक जीवन से पाठकों का परिचय बहुत कम होता है।

उपर्युक्त उद्धरण तथा उसके विवेचन का यह अर्थ भी नहीं है कि 'उग्र' की चरित्र-चित्रण-कला पात्रों के आन्तरिक पक्ष की सर्वथा उपेक्षा करती है या उसकी अभिव्यक्ति में असमर्थ है। वे अपनी कुछ कृतियों में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को भी प्रश्रय देते हैं, उनमें वे ऐसी परिस्थितियों का सृजन करते हैं, जिनसे पात्रों का संघर्षण होता है और उनके दमित गुण-दोष स्वतः अपने स्वाभाविक रूप से बाहर उभर आते हैं। उदाहरणार्थ 'फागुन के दिन चार' में जगरूप अपने स्वच्छन्द जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव देखता है, समय के प्रहारों से उसकी आंखें खुलती हैं, वह अपने अन्तिम दिनों में पश्चात्ताप करता है। उसी के शब्दों में आत्मविश्लेषण देखिए—'जगरूप तू जानता है? तू अपनों को छोड़कर बनारस से बम्बई आया था केवल अपने सुख के मोह में तो? जल्द से जल्द नवाबी-मजे लेने। ऐसी कमाई करने जिससे जिन्दगी इन्द्रसभा नाटक की तरह बराबर रंगीन बनी रहे। देख तो तू अपनी देह। देख तू अपनी सूरत! ओरे आत्म-पोषी! महज अपने को चाहने वाला कहां से कहां पहुंचता है, देख तो! तू काशी में, कुल में, कुलीनता की सीमा से रहता तो क्या तेरी ऐसी गति होती?'[2] इस प्रकार 'उग्र' अपने प्रतिपाद्य-विषय, कथानकों आदि के अनुरूप पात्रों के व्यक्तित्व को उभारते हैं। उनका उद्देश्य प्रायः बाह्य व्यभिचार को चित्रित करना है और उनके कथानक बाह्य जीवन के यथार्थ को लेकर चलते हैं, इसलिए पात्रों के चरित्र-चित्रण में यदि उनकी कला बाह्य व्यक्तित्व को प्रधानता दे, तो यह

१. 'मनुष्यानन्द', पृ० १९९
२. 'फागुन के दिन चार', पृ० २४२

स्वाभाविक ही है।

'उग्र' चरित्र-चित्रण की प्रचलित दोनों पद्धतियों—प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक और परोक्ष या अभिनयात्मक का अवसरानुसार उपयोग करते हैं। प्रथम पद्धति का आश्रय लेते हुए, वे स्वयं पात्रों के गुण-दोषों, आचार-विचारों तथा दृष्टिकोण का परिचय देते हैं और द्वितीय पद्धति को अपनाते समय, वे अपने पात्रों को कतिपय गुणों से विभूषित करके, स्वयं पृथक् हो जाते हैं और उनके कार्यकलापों, वार्तालापों, परिस्थितियों, उनसे होने वाली प्रतिक्रियाओं आदि के माध्यम से चरित्रों को प्रकाश में आने देते हैं। प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक पद्धति द्वारा किए गए चरित्र-चित्रण का एक उदाहरण देखिए—'पारसनाथ सिंह मुंशीगंज के रहने वाले, ऊंचे क्षत्रिय हैं।···पारसनाथ लड़कपन में अक्सर शराब पीते थे। वह इस तरह कि उनके पिता बड़े शौकीन और विलासी थे। वह रोज भोजन के साथ या पहले अथवा बाद—जैसी जब मौज हुई—बोतल का सेवन करते थे।··· पारसनाथ आरम्भ में छिपकर शराब पीते थे। जब उसके पिता इधर या उधर हो जाते तब वह खुली बोतलों पर छापा मारते। पहले ध्यान से देख लेते कि कितनी शराब है। फिर इच्छानुसार पीकर बोतल में उतना ही पानी मिला देते। पारस के पिता को कुछ खबर भी न होती।"[१] इस उद्धरण से स्पष्ट है कि चरित्र-चित्रण की यह पद्धति अपेक्षाकृत बहुत सरल है, किन्तु इसका अधिक प्रयोग कथाकार की चरित्र-चित्रण-कला में पटुता के अभाव का सूचक भी हो सकता है। इसलिए सजग कलाकार अप्रत्यक्ष या अभिनयात्मक-पद्धति का अधिक आश्रय लेते हैं। उग्र की रचनाओं में इस पद्धति का उपयोग भी यत्र-तत्र हुआ है। 'फागुन के दिन चार' का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

"यह जान साला कौन है ?" जरा खिसियाए-स्वर में जगरूप ने जानना चाहा।

"मेरा पुराना लवर।"

"इसे यहां मेरे बंगले पर क्यों बुलाया गया ?"

---

१. 'शराबी', पृ० ५९-६०

"तेरा बंगला कैसा ? तेरा फ्लैट तो मालाबार हिल पर है जहां तेरी तो …वो है…।"

"डियरी…।" जगरूप नरम पड़ मधुर बोला।

"गुण्डा ! हमारी !" रोजी गरम पड़ कटु बोली।

"इतना गुस्सा ? तुम्हें बहकाया किसने कि मैं उस स्त्री को चाहता हूं जिससे मेरी शादी हुई है। मेरी माई साथ न होती तो मैंने उसे बम्बई में ठहरने तक न दिया होता।"

"वह कानूनन ठहरने की हकदार है। तेरी वाइफ…।"

"तू शैतान सिवा हविस के और किसे मानने वाला है ?"[1]

जगरूप और रोजी के उपर्युक्त संवाद, आचार-विचार तथा हाव-भाव उनके चारित्रिक स्वरूप का उद्‌घाटन करते हैं। कथाकार तटस्थ है, वह जगरूप की विलासिता तथा स्वाभिमानहीनता और रोजी की व्यभिचारी वृत्ति तथा निडरता को उन्हीं के वार्तालापों से प्रकाशित होने देता है।

'उग्र' की चरित्र-चित्रण-कला अनुकूलता, स्वाभाविकता, सप्राणता, सहृदयता एवं मौलिकता की विशिष्टता से बहुत कुछ सम्पन्न है। उनके अधिकांश उपन्यास प्रायः लघु आकार को लेकर चलते हैं, इसलिए उनमें कथानकों के अनुकूल पात्रों का सृजन तथा निर्वाह सरलता पूर्वक हो सका है। किन्तु 'कढ़ी में कोयला' में पात्रों की संख्या कुछ अधिक है, इसमें २३ पुरुष-पात्र और ५ स्त्री-पात्र हैं। कई पात्रों का सम्बन्ध कथा से कम और वातावरण को उभारने से अधिक है। 'उग्र' अस्वाभाविक पात्रों के सृजन में अधिक रुचि नहीं रखते हैं। उनके लगभग सभी पात्र-मुरारी-कृष्ण, याकूब, अब्दुल्ला, सन्तू, बुधुआ, घनश्याम, नर्गिस, रधिया, महामाया आदि यथार्थ जीवन से सम्बन्धित हैं। उनके चरित्र-चित्रण में स्वाभाविकता के गुण का सर्वत्र निर्वाह हुआ है। उनकी अच्छाइयां हमें प्रेरणा देती हैं, उनके दोष हमें सजग बनाते हैं। १३० पात्रों में केवल दो-तीन पात्र अस्वाभाविक-से लगते हैं। यथा—'मनुष्यानन्द' के अघोड़ी बाबा और 'सरकार तुम्हारी आंखों में' के उस्ताद गुलाब खां के चरित्र अलौकिकता से युक्त हैं। ये अपनी करामात

---

१. 'फागुन के दिन चार', पृ० १८७

से असम्भव को सम्भव कर दिखाते हैं। उस्ताद गुलाब खां का दीप-राग द्वारा अग्नि प्रज्वलित करना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। किन्तु सांस्कृतिक विवेचन और औपन्यासिक कला दोनों दृष्टियों से इनके ये कार्य-व्यापार दोषपूर्ण ही हैं।

आलोच्य उपन्यासों के पात्रों के चरित्र-चित्रण में अनुकूलता और स्वाभाविकता के गुणों ने सप्राणता का संचार किया है। अधिकांश पात्र मानव-जीवन की विविध अनुभूतियों को व्यक्त करते हैं, उनमें मानवीय राग-द्वेष, मान-अपमान आदि के भाव प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। अघोड़ी बाबा और उस्ताद गुलाब खां, जिन्हें अलौकिक चरित्रों के अन्तर्गत रखा गया है, उनमें भी मानव-जीवन के उतार-चढ़ाव और प्रेम-व्यापार मिलते हैं। इसी प्रकार उनमें मानवीय दयालुता, करुणा, चित्त की कोमलता, रसज्ञता आदि की भी कमी नहीं है। कथाकार ने मानव और दानव पात्रों की एक साथ सृष्टि करके, मानव-पात्रों की श्रेष्ठता और दानव पात्रों की निकृष्टता प्रमाणित की है। मानव-पात्र अपने सुख-दुःख में दूसरों की सहानुभूति एवं संवेदना की अपेक्षा रखते हैं। वे निजी अस्तित्व भी रखते हैं और स्वार्थ के एकमात्र पुतले भी नहीं बनते हैं। दूसरों को पीड़ित दशा में देखकर, उनमें दया, करुणा तथा ममता उमड़ती है, वे स्वयं कष्ट सहकर भी दुखियों के उद्धार के लिए प्रयत्नशील हैं। भूदेव, नन्दन, रामराज, प्रभा, नरकू, मुरली ठाकुर, असगरी, गोविन्द शर्मा आदि पात्र इसी प्रकार के हैं। इनमें सहृदयता का गुण उचित मात्रा में विद्यमान है। दानव पात्रों में ठीक इसके विपरीत निष्ठुरता, क्रूरता, पाशविकता तथा अनैतिकता का आधिक्य मिलता है। अब्दुल्ला, सन्तू, दीनानाथ, घीसालाल आदि पात्रों में मानवीय संवेदना का अभाव और पाशविकता की प्रधानता ही उन्हें दानव बनाती है। ये धन और भोग-विलास के कीड़े हैं। कथाकार इन पर करारे व्यंग्य-बाण कसता है, इनके स्वार्थी जीवन को समाज के लिए अभिशाप मानता है। इनका शरीर तो मानवीय ही है, किन्तु हृदय से ये पशु हैं। इनमें पाशविक भोग-लिप्सा तथा असन्तोषी वृत्ति मिलती है। कथाकार इनके दानवीय स्वरूप की यथार्थ स्थिति का उद्घाटन करना अपना कर्तव्य समझता है, जिससे मानव-समाज सतर्क हो सके और इन्हें कानून की शरण में ले जाकर,

दण्ड दिला सके। वह हृदय परिवर्तन में एक सीमा तक ही विश्वास रखता है। उसने लियाकत हुसैन आदि के माध्यम से पश्चाताप-वृत्ति को दिखाया अवश्य है, किन्तु दुष्टों के साथ, कठोर-से-कठोर व्यवहार करने में ही उसे सन्तोष तथा न्याय प्रतीत होता है।

'उग्र' के पात्र निजी आचार-विचार, आदर्श तथा व्यवहार लिए हुए हैं। इसलिए उन्हें अनुकृति न कहकर, मौलिक मानना अधिक उपयुक्त है। वे अपने सद्‌गुणों से अच्छे और दुर्गुणों से बुरे हैं, उनका आचरण 'अपनापन' सूचित करता है। वे हमारे सम्मान के पात्र भी हैं और उपेक्षा के कारण भी हैं। अघोड़ी मनुष्यानन्द, रामराज, नन्दन, भूदेवशर्मा, मुरारीकृष्ण आदि का आदर्शमय चरित्र हमें प्रभावित करता है और अब्दुल्ला, सन्तू, याकूब, घीसा आदि के कुकर्म हमारे क्रोध के भावों को उभारते हैं। नन्दकुमार, जिसे कथाकार का अपना ही रूप कह सकते हैं, वह भी मौलिक पात्र है, उसके सद्‌गुण आकर्षण की वस्तु हैं और दुर्बलताएं सावधानी का संकेत करती हैं। १३० पात्रों में एक पात्र भी ऐसा नहीं है, जिसे अनुकृति कह सकें, सभी पात्र निजी कार्यकलाप, चाल-ढाल तथा बोलचाल की विशिष्टता रखते हैं। वे स्वस्थ हों या अस्वस्थ, किन्तु मौलिक हैं। उन्हें प्राचीन पात्रों की अनुकृति या विदेशी पात्रों की प्रतिछाया नहीं माना जा सकता है।

संक्षेप मे, 'उग्र' के पात्र तत्कालीन सामाजिक जीवन की अच्छाइयों और बुराइयों के सूचक हैं, उनके कार्य-व्यापार घटनाओं का संचालन करते हैं और कथाओं की मूल संवेदनाओं को अभिव्यक्ति देते हैं। वे सजीव शब्द-मूर्तियों के समान हैं और वर्ग-विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनमें कुछ 'स्थिर-चरित्र' हैं और कुछ 'गतिशील-चरित्र हैं। गतिशील पात्र उठते भी हैं और गिरते भी हैं। उत्थान और पतन की सीढ़ियों पर चढ़ने और उनसे गिरने में उनकी गतिशीलता बड़ी प्रभावोत्पादक बन पड़ी है। कथाकार उनके बाह्य व्यक्तित्व का ही विशेषज्ञ है, उनके आन्तरिक व्यक्तित्व के विश्लेषण की अधिक आवश्यकता उसे अनुभव नहीं होती है। कतिपय पात्रों की मानसिक हलचलों से ही वह हमारा परिचय कराता है। उसने चरित्र-चित्रण के लिए प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक और परोक्ष या अभिनयात्मक पद्धतियों का यथोचित उपयोग किया है। उसके चरित्र-चित्रण में अनुकू-

लता, स्वाभाविकता, सप्राणता, सहृदयता आदि गुण मिलते हैं। उसके पात्र मौलिक हैं और अपने समय के अस्वस्थ समाज की कथा कहते हैं। वे काम-कुण्ठाओं से ग्रस्त न होकर, अन्य कुकर्मों, कुरीतियों तथा विसंगतियों से घिरे हुए हैं। उनमें मानव-पात्र, दानव-पात्रों की पाशविकता का घोर विरोध करते हैं। कथाकार का 'उग्र' तथा क्रान्ति-प्रिय व्यक्तित्व उनमें मुखरित हो उठा है। दुष्ट तथा दुराचारी पात्रों के प्रति घृणा एवं विद्रोह का भाव जगाना ही कथाकार को अभीष्ट है। वह इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए व्यभिचारी पात्रों को नग्न रूप में चित्रित करता है। उसके ये पात्र शरीर से मनुष्य होकर भी, पशु हैं और कठोर-से-कठोर दण्ड के अधिकारी है। कथाकार उनके प्रति सहानुभूति दिखाना अनुचित समझता है।

३. भाषा

'उग्र' की औपन्यासिक कृतियों की भाषा भागवत उपयुक्तता, सुबोधता, सरलता और स्वाभाविकता को प्रश्रय देती है। उनका भाषा पर अनूठा अधिकार है। वे सोच-सोच कर भाषा को नहीं सजाते हैं, प्रत्युत ऐसा ज्ञात होता है कि सूरूर में आने पर भाषा उनके हृदय से प्रवाह रूप में स्वतः निकलती चली आती है। संस्कृत शब्दावली से भरी हो या फारसी-अरबी शब्दों की भरमार हो, सभी में उक्त गुण वर्तमान रहते हैं। भाषा के अलंकरण में भी वही स्वाभाविकता तथा उल्लास दिखाई पड़ता है, जिससे कहीं-कहीं वे उपमान पर उपमान की लड़ी-सी पिरो देते हैं। उनका अलंकार-विधान अत्यन्त चमत्कारपूर्ण होता है। उनकी चमत्मार-प्रियता, शब्द-योजना वाक्य-योजना तथा अभिव्यंजना सभी में पाई जाती है।[1]

'उग्र' हिन्दी भाषा के प्रायः सभी रूपों पर पूर्ण अधिकार रखते हैं और उनका सफल प्रयोग भी उनके उपन्यासों में हुआ है। वे विषय, पात्र, स्थान आदि के अनुरूप भाषा-स्तर निर्धारित करते हैं। जैसे—प्रकृति-चित्रण करते समय उनकी भाषा तत्सम शब्दों से युक्त साहित्यिक तथा परिष्कृत होती है—'विश्वनाथजी के मन्दिर के स्वर्ण-कलश पर अस्ताचलगामी अंशुमाली

---

१. श्री ब्रजरत्नदास : 'हिन्दी उपन्यास-साहित्य', पृ० २९८

की हिरण्य-उज्वल किरणें जैसे दिव्यता बरसा रही थीं।...काशी वाले तट पर असीघाट से राजघाट तक महान मायामय मोहक मेला-सा फैला हुआ ऐसा लगता था जैसे आनन्द, उल्लास और रस की नौका-वाहिनी-सेना ने बनारस पर चढ़ाई कर दी हो और उसे गुदगुदा गद-गदित कर दबोच लिया हो।'[1] सामान्य विवेचन या वार्तालापों में 'उग्र' बोल-चाल के शब्दों से युक्त सरल हिन्दी का प्रयोग करते हैं, जिसमें किसी विशेष प्रकार के शब्दों के प्रयोग का आग्रह नहीं होता और जिसकी कसौटी भावगत उपयुक्तता ही होती है। इस प्रकार की भाषा का सौष्ठव उनकी कृतियों में सर्वत्र विकीर्ण है। 'मनुष्यानन्द' का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—'उस पगली ने तो उस पर अपना सर्वस्व ही निछावर कर दिया। वह उसके प्रलोभनों में बुरी तरह फंस गयी। सामाजिक या दुनिया के ढंग से विवाह न होने पर भी वह भार्या का पार्ट खेलने लगी।'[2]

अरबी-फारसी के शब्दों से युक्त हिन्दी का प्रयोग 'चन्द हसीनों के खुतूत' में ही अधिक हुआ है। उसका कारण मुसलमान पात्रों का प्राधान्य तथा विषय की अनुरूपता है। कथाकार नर्गिस, असगरी, याकूब, अलीहुसैन आदि मुसलमान पात्रों के मुख से अरबी, फारसी आदि शब्दों से युक्त हिन्दी का प्रयोग कराना अधिक समीचीन समझता है। इस प्रकार की भाषा में भी कृत्रिमता नहीं आई है, कथाकार ने विदेशी शब्दों को हिन्दी भाषा की प्रकृति के अनुरूप खपाया है—'बन्दा परवर ! आप मर्द लोग; जो अपनी सफाई, अक्लमन्दी, बहादुरी और तहज़ीब के लिए मशहूर हैं, औरतों को नेस्तो-नाबूद क्यों नहीं कर देते ? यही कीजिए और जरूर कीजिए। बड़ा सबाब होगा।...मैं मुसलमान हूं। खुदापरस्त, इस्लामपरस्त और मजहब-परस्त हूं। मैं इस बात को हर्गिज बर्दाश्त नहीं कर सकता कि मेरी बहन किसी ग़ैर कौम वाले के साथ ब्याही जाए।'[3] इस प्रकार की अरबी-फारसी के शब्दों से युक्त हिन्दी का ही नहीं, कथाकार तो उर्दू के शेरों, कवितांशों

---

१. 'फागुन के दिन चार', पृ० १

२. 'मनुष्यानन्द', पृ० १७५

३. 'खुदाराम और चन्द हसीनों के खुतूत', पृ० ६८-६९

आदि का प्रयोग भी करता है। उससे विषय में मार्मिकता तथा प्रभावोत्पादकता का संचार होता है और भाषा भावों को अभिव्यंजित करने में अधिकाधिक सशक्त बनती है। हिन्दू-मुस्लिम एकता के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया गया एक कवितांश देखिए—

'साक़ी की मुहब्बत में,
जब सर को झुकाता हूं
शीशा नज़र आता है।
बुतख़ाने के पर्दे में काबा नज़र आता है।'[1]

कथाकार हिन्दी की विभिन्न बोलियों का बहुत कम उपयोग करता है। सम्भवतः उसे अपने विषय की अभिव्यक्त में उनके उपयोग की आवश्यकता ही नहीं जान पड़ती। उनका यथार्थवादी दृष्टिकोण भाषा-प्रयोग की उलझनों में उलझना नहीं चाहता, वह तो सामाजिक गतिविधिवों को ही उभारना चाहता है। फिर भी, वातावरण का यथातथ्य चित्रण करने के लिए, उसने कहीं-कहीं स्थानीय भाषाओं-बोलियों आदि का आश्रय लिया है। इस प्रकार के प्रयोग 'फागुन के दिन चार' में मुख्यतः मिलते हैं—'अरे ! हम्मे लपटावत हय—वाहरे !'...'चाचा ! तू ओहर गसले तई हम्में लपटावे लगलन—हमारी।'...'बररै बालक एक सुभाऊ।'[2] ये उद्धरण बनारसी बोली के हैं और इनके माध्यम से बनारसी बोल-चाल, रहन-सहन, आचार-विचार आदि की एक हल्की-सी झलक अंकित करना ही कथाकार का उद्देश्य है। किन्तु आंचलिक उपन्यासों की तुलना में इस प्रकार के प्रयोग नगण्य हैं और न ही कथाकार को अभीष्ट हैं। वह तो सामाजिक अनैतिकता, व्यभिचार तथा कुत्सित प्रवृत्तियों के वास्तविक चित्रण के लिए सीधी-सादी, सरल तथा स्वाभाविक साहित्यिक हिन्दी का प्रयोग ही उपयुक्त समझता है। उसमें अशिष्टता, अभद्रता तथा अश्लीलता के आने का भय भी उसे नहीं है। वह तो निस्संकोच भाव से, कथ्य को अभिव्यक्ति देता चला जाता है। 'कढ़ी में कोयला' के घीसालाल द्वारा प्रयुक्त भाषा का एक

---

१. 'खुदाराम और चन्द हसीनों के खुतूत', पृ० १०४-१०५
२. 'फागुन के दिन चार', पृ० ६७

उदाहरण देखिए—'हमारा आदर्श पत्नीव्रत नहीं, शेयर बाजार है। सो, जिस काम से भी बुद्धि बाज़ार-भाव समझने के योग्य हो, वही हमारा कर्तव्य है। कुछ लोग गांजा पीकर काम करते हैं, कुछ अफ़ीम खाकर, पर, मुझे औरतें ही अच्छी लगती हैं। तुम्हारी इतनी ही इज्जत बहुत है कि मैं दो-चार शादियां और नहीं कर लेता। तुम्हें मेरी हरकतें पसन्द नहीं आतीं, तो कलकत्ते रहती ही क्यों हो। ऊंटनी रेगिस्तान में ही प्रसन्न रहती है। जाओ तुम राजस्थान।'[1]

'उग्र' की भाषा कहीं-कहीं मर्यादा का उल्लंघन भी करती है। वे विषयानुरूपता तथा पात्रानुकूलता की धुन में नग्न भाषा का प्रयोग भी करने लगते हैं। उसमें अश्लील शब्दों, गालियों—'हरामज़ादे', 'हरामी', 'सूअर', 'साली' आदि का निस्संकोच प्रयोग देखिए—

'तेरे मरे बाप पर नहीं ? हरामी !'

+ + +

'सूअर ! सबके सामने बदजुबानी। साली ! कमीनी !'
'कमीनी का बच्चा। सुअर का बच्चा।'[2]

अशिष्ट शब्दों तथा गालियों का प्रयोग, साहित्यिक कृतियों के महत्त्व को कम करता है, उसमें वृद्धि नहीं लाता उनका प्रभाव भी हानिकारक होता है, उससे हमारी वासनावृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है। साहित्य का काम चित्त-वृत्तियों का परिष्कार तथा उदात्तीकरण करना है उन्हें कुपथ की ओर अग्रसर करना नहीं है। इसलिए 'उग्र' के ये प्रयोग अनुचित ही माने जाएंगे, इनसे यथार्थ व्रस्तुस्थिति चाहे स्पष्ट हो, किन्तु सद् प्रभाव नहीं पड़ता है। वास्तविक दशा के उद्घाटन का उद्देश्य यदि सुधार है, तो उसमें ये प्रयोग कथाकार को असफल बना देते हैं। सम्भवत: यही कारण है कि आलोच्य उपन्यासकार को अनेक आलोचकों की बौछारें सहनी पड़ीं, उसे उपेक्षित जीवन व्यतीत करना पड़ा और वह उचित सम्मान से वंचित ही रहा।

---

१. 'कढ़ी में कोयला', पृ० १६४
२. 'फागुन के दिन चार', पृ० १५३

इस प्रकार 'उग्र' के उपन्यासों की भाषा अनेक गुणों से सुशोभित होने पर भी अश्लीलता के दोष से दूषित है। उससे उनकी कृतियों के महत्त्व को गहरा आघात पहुंचा है। किन्तु इस दोष को यदि दृष्टि से ओझल कर दें, तो 'उग्र' भाषा के सम्राट-से लगते हैं। उनके पास शब्द-भण्डार की कमी नहीं है। वे हिन्दी भाषा के अनेक रूपों के विशेषज्ञ हैं और उनका सफल, विषयानुरूप तथा पात्रानुकूल प्रयोग करना, उन्हें भली प्रकार से आता है। वे भाषा को न तो संवारते हैं और न बनाते हैं, वह स्वयं ही पहाड़ी झरने की तरह बहती चली जाती है, उसका सहज सौन्दर्य सहृदय पाठकों को मन्त्र-मुग्ध किए बिना नहीं रहता। कालिदास के समान वे नए-से नए उपमानों का प्रयोग यत्र-तत्र करते हैं और उनका अलंकार-विधान अत्यन्त स्वाभाविक होता है। 'भाषा यदि बहता नीर है', तो उसका उत्कृष्ट उदाहरण हमें 'उग्र' की भाषा के रूप में मिल सकता है। वह विषयानुरूप यथार्थप्रिय, व्यंग्यात्मक, लक्षणाओं तथा व्यंजनाओं से युक्त है और उसका सर्वप्रमुख गुण सहजता है। वह वर्ण्य-विषय को अभिव्यंजित करने में पूर्ण समर्थ है।

४. संवाद

'उग्र' के कथासाहित्य में नाटकीयता का तत्व प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। उसका मूल स्रोत हम प्रथम अध्याय में देख भी चुके हैं। 'उग्र' कथाकार होने के साथ नाटककार भी हैं, इसलिए नाटक के इस प्रधान तत्व —'संवाद' का उपयोग वे यत्र-तत्र करते हैं। उनकी संवाद-योजना, केवल कुतूहल या मनोरंजन के संचार के लिए नहीं होती है, उसका उद्देश्य पात्रों के चरित्र का उद्‌घाटन, यथार्थ स्थिति का प्रकाशन तथा कथानकों को गति देना कह सकते हैं। कहीं-कहीं तो यह संवाद-योजना, कथाकार की आत्माभिव्यक्ति का सबल साधन भी बन गई है। वह पात्रों के वार्तालापों के माध्यम से अपनी मान्यताओं को अभिव्यंजित करता है। उसके संवाद, पात्रों की बौद्धिक तथा मानसिक स्थिति के अनुरूप, विषयानुसार तथा सटीक होते हैं। 'कढ़ी में कोयला' में आज के प्रबुद्ध पाठकों के संवाद देखिए—

"तो परसों के 'जगरक्षक' में उन आदमियों के नाम नहीं प्रकाशित होंगे ?"

"गठरी मिल जाएगी—जो कि निश्चित है—तो लिस्ट जरूर रोक ली जाएगी।"

"और जनता से किया वायदा ?"

घमंडीलाल के अनुसार जनता अखबार के लिए है, न कि अखबार जनता के लिए। अखबार का जनता से वही सम्बन्ध है जो नेता का भीड़ से या गड़रिये का भेड़ों से, जिन्हें वे विचारों के चारे चराते हैं, बहका बहका कर दुहने और ऊन उतारने के लिए।"

"कुछ को कुछ दिन और बहुतों को बहुत दिन भले ही कोई ठग ले, पर, सबको सब दिन ठगना असम्भव है। किसी दिन 'जगरक्षक' वालों को लेने के देने पड़ जाएंगे।"

"यह पत्रकारिता नहीं, पाप है।"

"पाप ही नहीं, ऐसा पत्र सारे जनपद के लिए अभिशाप है"

"कहां है घमंडीलाल-संचालक 'जगरक्षक' ? वह हमें बार-बार ठगता क्यों है ?"

"कहां है घमंडीलाल ?"

"घमंडीलाल मुर्दाबाद।"[1]

इन संवादों से आज के प्रबुद्ध पाठकों के मानसिक आक्रोश, बदला लेने की उत्तेजना, सत्य को सत्य कहने की निर्भीकता और अधिकारों की सजगता का प्रकाशन हुआ है। उनके इन भावों एवं विचारों में कथाकार की अपनी आत्मा बोल रही है। वह स्वार्थी पत्रकारिता को देश और समाज के लिए कलंक तथा विनाशक मानता है। लोभी तथा घटिया संचालकों के प्रति घृणा उत्पन्न करना उसका लक्ष्य है। वह उन्हें नग्न करके, उनके विरुद्ध जनधारणा की अपार शक्ति को उभारता है, जिससे वे मानवता से खिलवाड़ न कर सकें। जनता को भेड़-बकरी के समान अपनी स्वार्थपूर्ति का साधन न बनाएं।

'उग्र' की संवाद-योजना, कथा-सूत्रों से सम्बन्धित होती है, इसी से वह कथानकों को गति देने में समर्थ है। उससे घटनाओं में सजीवता का संचार

---

१. 'कढ़ी में कोयला', पृ० १६३-१६५

होता है और कुतूहल की वृद्धि होती है। 'दिल्ली का दलाल' में पुलिस दारोगा और वृद्ध रामराज के संवादों का एक उदाहरण देखिए—

"कहां से आ रहा है?"

"कलकत्ता से।"

"आयं?" ताज्जुब से दारोगा ने पूछा—"कलकत्ता से? कब आया?"

"आज ही सवेरे।"

"और इसी तरह नंगे सिर, नंगे पांव? दिल्ली में तेरा ऐसा कौन-सा काम अटका था?"

"बताता हूं सरकार", सूखे होठों और कीच-भरी आंखों को पोंछता हुआ वह बोला—"मुहल्ला 'रसूलगंज' आपही के इलाके में पड़ता है?"

"हां" दरोगा ने कहा—"पड़ता तो है—क्यों?"

"उसी मुहल्ले के ८३ नम्बर के मकान में कोई अब्दुल्ला रहता है—आपको मालूम है?"

"रसूलगंज में अब्दुल्ला रहता है या अब्दुल्लकरीम यह मुझे क्यों मालूम होने लगा? अब्दुल्ला तेरा कौन है? उससे तेरा क्या मतलब है?"

"आप अब्दुल्ला को नहीं जानते। आश्चर्य प्रकट हुए बूढ़ा बोला—कैसे थानेदार हैं आप! कैसी पुलिस है इस शहर की। अगर आप अब्दुल्ला—ऐसे बदमाश, शैतान, राक्षस और हरामज़ादे को नहीं जानते तो फिर आपका दारोगा होने का क्या फायदा?"[1]

उपर्युक्त संवाद कथा को एक नया मोड़ देते हैं, उसकी गति को तीव्रता प्रदान करते हैं, इनमें पात्रों की क्रियाशीलता और अकर्मण्यता स्पष्ट झलक रही है। वृद्ध रामराज अपने संवादों से निष्क्रिय पुलिस-अधिकारियों को दुत्कारता है, उन्हें जगाता है और आगामी घटनाओं की पृष्ठभूमि प्रदान करता है। कथाकार उसके वार्तालापों के माध्यम से कथा-प्रवाह को बल देने के साथ-साथ, उपन्यास की मूल संवेदना को भी वाणी देता है। वह नहीं चाहता कि अब्दुल्ला जैसे नर-पिशाच नारियों का अवैध व्यापार करें।

---

१. 'दिल्ली का दलाल', पृ० १४३-१४४

उसकी हार्दिक इच्छा है कि पुलिस के अधिकारी और कर्मचारी उन्हें पकड़े, कठोर-से-कठोर दण्ड दिलाएं और रूप एवं यौवन के जानमार नराधमों से असंख्य अबलाओं के जीवन को छुटकारा मिले।

आलोच्य कथाकार ने संवादों के द्वारा कटु अनुभवों को मुखरित भी कराया है। उसके पात्र अपने वार्तालापों, संलापों तथा लघु भाषणों से अपने जीवन की अच्छी-बुरी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करते हैं। 'शराबी' का पारसनाथ शराब की लत से अपना सर्वस्व खोता है। वह अपनी पैतृक सम्पत्ति, इकलौती बेटी, प्रतिष्ठा, सुख-शान्ति सभी कुछ स्वाहा करने के उपरान्त अपना अनुभव प्रकट करता हुआ कहता है—'ए शराब को गले लगाने वालो ! बचो इससे ! यह वह नशा है जो अच्छे-से-अच्छे इंसान को शैतान की भट्टी में बरबस ले जाकर झोंक देता है। यह वह सनक है जिसमें आदमी अपने खानदान को, ईमान को और भगवान् तक को भूल जाता है। यह भले आदमियों के पीने की चीज़ नहीं, यह शरारत का पानी है, सत्यानाश का प्रबल प्रवाह है।'[1] इस संवाद में भी उपन्यास का मूल ध्येय साकार हो उठा है। कथाकार मदिरापान के दुष्परिणामों को, एक शराबी के शब्दों में ही व्यक्त करके, कथ्य को प्रभावशाली बनाता है।

नाटकीय हाव-भाव, पैनापन, प्रवाह, स्वाभाविकता और रोचकता की दृष्टि से भी 'उग्र' के उपन्यासों के संवाद, कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। वे अमूर्त में मूर्त का आभास दिलाने में समर्थ हैं—

"वाह गुरू।" आज तो बड़े खुश नज़र आ रहे हो। बात क्या है ?"

"कुछ भी नहीं, झिल्लर।"

"है तो जरूर कोई बात—कोई चिड़िया फंसी ?"

"अजी राम भजो ! मैं कोई बहेलिया नहीं।"

"जरूर कुछ-न-कुछ गोलमाल है गुरु ! तुम्हारे गाल की झुर्रियां खुशी से फूल उठी हैं।"

"आज से एक बड़े आदमी के घर नाच सिखाने का काम लगा है।"

"यह मारा गुरू ! मैं पहले ही कह रहा था कि कोई माशूक़ है पर्द-ए-

---

१. 'शराबी', पृ० १५५

जिन्दगी में।"[1]

'उग्र' की संवाद-योजना घटना, अवसर, वातावरण तथा पात्रों के स्वभाव के अनुकूल चमत्कार-वृद्धि में भी अद्भुत सहयोग देती है। 'कढ़ी में कोयला' का घीसालाल व्यभिचारी है, उसकी रमणी-रंजकता की चर्चा की दुर्गन्धित हवा कलकत्ता से मारवाड़ तक फैल जाती है। उसकी पत्नी गीताबाई, अपने पति को कुल्टा स्त्रियों से बचाने तथा सम्पत्ति की रक्षा के निमित्त, कलकत्ता चली आती है। गीताबाई सभी कुछ आंखों से देखने के उपरान्त अर्द्ध विक्षिप्त-सी हो उठती है, घीसालाल उसे डांटता है, वह भभक उठती है, दोनों के संवादों का आयोजन देखिए—

"तुम अगर पत्नीव्रत निभाने वाले नहीं" लाल होकर, दांत पीसकर, गीता ने कहा—"तो, सेठ, गीता भी पतिव्रता नहीं है।"

"क्या?"—घीसालाल को जैसे बिच्छू ने डंक मार दिया हो—"ऐसी बात तुम्हारे मुंह से निकल सकती है—नीच।"

"गाली देना मैंने अपने पूज्य पिताजी से सीखा नहीं।" गीता की आंखों में आंसू नहीं खून डबडबा आया—"पर, जैसी बात मुंह से काढ़ कर मैं नीच बन सकती हूं, वैसी ही बात बेधड़क बोलने वाला मर्द क्या मान जाएगा? क्या माना जाएगा नित्य निर्लज्ज आचरण करने वाला? स्त्री के पातिव्रत का फल अगर ऐसा ही पति है जैसी कि मेरी विपत्ति, तो आग लगे पातिव्रत के मुंह में। पति की क़सम खाकर विश्वपति के सामने मैं बेखौफ़ कहने को तैयार हूं, कि मैं पतिव्रता नहीं हूं। मेरे तीनों बच्चे तुम्हारे नहीं हैं।"

"तेरे बच्चे हमारे नहीं? डाकन!" घीसालाल अपने आपे के बाहर —"फिर किससे हैं?"

"पहले आईने में अपना मुंह देखो।" गीताबाई के चेहरे पर आत्महत्या का संकल्प करने वाली शोभा।—"फिर मोहन, सोहन और पार्वती का मुंह देखो! और फिर सारी दुनिया में खोजते फिरो, सारी ज़िन्दगी, कि तुम्हारे बच्चों का मुंह किस पुरुष से मिलता है। सेठ, तुम पत्नीव्रत नहीं, तो

---

१. 'फागुन के दिन चार', पृ० १३१-१३२

मैं पतिव्रता नहीं—हा हा हा !"[1]

इस प्रकार 'उग्र' के उपन्यासों के संवाद यथार्थवादी हैं, उसमें क्लिष्टता, अस्पष्टता, रहस्यमयता आदि का अभाव मिलता है। उनका प्रधान गुण वर्ण्य-विषय के अनुकूल होना है। वे कथानकों को गति देते हैं, पात्रों के व्यक्तित्व को प्रकाश में लाते हैं और कथाकार की मान्यताओं को अभिव्यक्त करते हैं। उसमें नाटकीय हाव-भाव, पैनापन स्वाभाविकता और कुतूहल मिलता है। वे प्रायः संक्षिप्त हैं किन्तु कतिपय स्थलों पर उनका आकार बड़ा भी हो गया है, उनमें भाषणों का-सा विस्तार आ गया है। फिर भी, 'उग्र' की संवाद-योजना अपनी स्वाभाविकता और विषयानुरूपता के कारण विशेष महत्त्व रखती है। उससे औपन्यासिक शिल्प को बल मिला है।

संक्षेप में, 'उग्र' के उपन्यासों की शिल्पविधि यथार्थवादी दृष्टिकोण का अनुसरण करती है। वर्ण्य विषय के आधार पर उनके कथानक सामाजिक हैं और रचना-शैली की दृष्टि से वे वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक तथा संस्मरणात्मक शैलियों में निर्मित हुए हैं। रचना-लक्ष्य के विचार से वे यथार्थवादी होने पर भी अति-यथार्थवादी, आलोचनात्मक यथार्थवादी, प्रकृतवादी और आदर्शवादी कतिपय तत्त्वों को ग्रहण किए हुए हैं। उनका प्रधान दोष अश्लीलता है, इसी से वे समाज की विभिन्न समस्याओं को अपना कर भी उपेक्षा की वस्तु बने रहे हैं। कथाकार का मूल लक्ष्य सुधार की भावना ही है, किन्तु सामाजिक व्यभिचार का वर्णन करते समय, जहां भी वह सीमा का उल्लंघन कर गया है, वहां अभद्रता आ गई है। उसका कुप्रभाव भी पाठक ग्रहण करते हैं, यही कथाकार की असफलता है। उसके पात्र समाज से अच्छी-बुरी प्रेरणा प्राप्त कर, स्वकर्मानुसार फल के अधिकारी बनते हैं। कथाकार प्रेमचन्द की भांति न तो किसी को पुरस्कार देता है और न तिरस्कार, दुष्टों के प्रति उसकी कोई सहानुभूति नहीं है, इसलिए उन्हें कठोर-से-कठोर दण्ड दिलाने में उसे सन्तोष-सा अनुभव होता है। उसने लगभग १०३ मौलिक पात्रों की सृष्टि की है और उनका चरित्र-चित्रण प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों शैलियों में किया है।

---

१. 'कढ़ी में कोयला', १६४-१६५

उसके अधिकांश पात्र वर्गगत हैं और सामाजिक अनाचारों को प्रकाश में लाते हैं। कथाकार उनके बाह्य व्यक्तित्व को ही निकटता से देखता और दिखाता है, उससे अन्त:करण में प्रवेश करने की आवश्यकता उसे अनुभव नहीं होती है। उसके पात्र काम-कुण्ठाओं से रहित, तामसिक वृत्तियों के अधीन तथा सामाजिक कुरूपता के शिकार हैं। आलोच्य उपन्यासों की भाषा भावगत उपयुक्तता को प्रश्रय देती है, उसका प्रधान गुण सहजता तथा स्पष्टता है। वह विविध अलंकारों, सूक्तियों, कवितांशों, मुहावरों, लोकोक्तियों, अन्य भाषाओं के शब्दों आदि को अपनी प्रकृति के अनुरूप ग्रहण करती है। उसका प्रवाह अविच्छिन्न तथा प्रभावोत्पादक है, उसमें कृत्रिमता नाम के लिए भी नहीं है। कथाकार उसका निर्माण नहीं करता है, वरन् वह उसके हृदय से प्रवाहित होने वाला स्रोत है, जिसमें अपूर्व छटा विद्यमान है। उसमें नए-नए उपमानों की लड़ियां-सी मिलती है, जो वर्ण्य-विषय को बल प्रदान करती हैं। भाषा के आंचलिक प्रयोगों में कथाकार की कोई रुचि नहीं है। वह यथार्थ गतिविधियों के उद्घाटन की धुन में अशिष्ट शब्दों तथा लोक-प्रचलित गालियों का निर्भीकता से उपयोग करता है। उससे भाषा अनावृत-सी बन गई है, उसमें अभद्रता का दोष आ गया है। साहित्यिक कृतियों के महत्त्व को वह आघात पहुंचाती है। संवाद-योजना की दृष्टि से ये उपन्पास बहुत कुछ सफल हैं। संवाद सोद्देश्य तथा कथा-सूत्रों से सम्बन्धित हैं, वे पात्रों के चरित्र को प्रकाशित करते हैं। कथा-कार की अपनी आत्मा उनमें मुखरित हो उठी है। वे पात्रों की बौद्धिक तथा मानसिक स्थिति के अनुरूप हैं, उनमें भावों तथा विचारों को व्यक्त करने का पूर्ण सामर्थ्य वर्तमान है। वे नाटकीय हाव-भाव, पैनापन, प्रवाह तथा स्वाभाविकता के गुणों से युक्त हैं। घटना, अवसर तथा वातावरण के अनु-सार होने के कारण, उनके आयोजन से औपन्यासिक शिल्प को शक्ति मिली है। उनका आकार प्राय: संक्षिप्त है, किन्तु कहीं-कहीं वे भाषणों का रूप भी ले लेते हैं, उससे कथावस्तु में नीरसता आ जाती है। उनके आयोजन में, नैतिकता के बन्धन भी कतिपय स्थलों पर ढीले हो गए हैं, उससे उनमें अश्लीलता का दोष आ गया है। वस्तुतः कथाकार का स्वच्छन्द व्यक्तित्व

ही कथानकों, संवादों और भाषा में अभद्रता लाता है। वह सामाजिक नैतिकता के सामान्य बन्धनों को स्वीकार नहीं करता है और पाठकों के सम्मुख समाज की वास्तविक स्थिति का, सजीव चित्र अंकित करने में अपनी कला की सार्थकता समझता है।

हास्य-व्यंग्य

हास्य-व्यंग्य प्रधान रचनाएं चित्तवृत्तियों को उल्लसित करती हैं और उनसे समाज-सुधार का कार्य भी होता है। हास्य से हमारे जीवंन में नव-उत्साह का संचार होता है। इससे हम खोई हुई शक्ति को फिर से प्राप्त करते हैं, यह जीवन का विटामिन है। इसके अभाव में जीवन भार-स्वरूप बन जाता है। थेकरे के अनुसार हास्यप्रिय लेखक, प्रीत, अनुकम्पा एवं कृपा के भावों को जाग्रत कर उनको उचित ओर नियंत्रित करता है। असत्य दम्भ तथा कृत्रिमता के प्रति घृणा और कमज़ोरों, दरिद्रों, दलितों और दु:खी पुरुषों के प्रति कोमल भावों के उदय कराने में सहायक होता है।[1]

व्यंग्य हास्य की आत्मा है। वह सोद्देश्य होता है, उसमें निन्दा या सुधार की भावना अवश्य होती है। मेरीडिथ के विचार से अगर आप हास्यास्पद का इतना मज़ाक उड़ाते हैं कि उसमें आपकी दयालुता समाप्त हो जाय तो आपका हास्य, व्यंग्य की कोटि में आ जायगा। वस्तुत: जब हास्य विशद आनन्द को त्याग कर प्रयोजननिष्ठ हो जाता है तो वह व्यंग्य का मार्ग पकड़ लेता है। उसके माध्यम से लेखक सदैव हंसी द्वारा दण्ड देना चाहता है, फलत: उसमें चिड़चिड़ापन भी आ जाता है। वह आलम्बन के प्रति तिरस्कार, उपेक्षा या भर्त्सना की भावना लेकर बढ़ता है और सामाजिक एवं धार्मिक कुरीतियों, व्यवहारों या रूढ़ि-मुक्त परम्पराओं को हेय तथा हास्यास्पद रूप में प्रस्तुत करता है। व्यंग्य के लिए तीन बातें आवश्यक हैं—

1. 'The humorous writer professes to awaken and direct your love, your pity, your kindness—your scorn for the weak, the poor, the appressed, the unhappy."
   Thackery : 'English Humourists' (1949), p. 13.

(१) निन्दा, (२) सामाजिक हित और (३) वर्तमान या जीवित लक्ष्य की सीमा। व्यंग्य में हास्य इतना कठोर हो जाता है कि कभी-कभी वह हास्य की सीमा से बाहर निकल जाता है।[1]

सामाजिक जीवन की बुराइयों के निवारण में व्यंग्य ही अधिक उपयोगी होता है। उसकी तुलना हंटर से कर सकते है जो पाखण्डी साधुओं, व्यभिचारी नर-पिशाचों, शोषक-खटमलों एवं बर्बर शासकों को बड़ी सरलता से राह पर ले आता है। श्री जी० पी० श्रीवास्तव के अनुसार— "बुराई रूपी पापों के लिए इससे बढ़कर कोई दूसरा गंगाजल नहीं है। यह वह हथियार है, जो बड़े-बड़ों के मिज़ाज चुटकियों में ठीक कर देता है। यह वह कीड़ा है जो मनुष्यों को सीधी राह से बहकने नहीं देता। मनुष्य ही नहीं, धर्म और समाज को भी सुधारने वाला है तो यही है।"[2] व्यंग्य प्रायः कठोर, कटु तथा निर्मम होता है और चोट लगाने के उपरान्त मरहम-पट्टी लगाना आवश्यक नहीं समझता है। उसका संचालक रोष है और वह अपनी सार्थकता शर-संधान में समझता है। आलम्बन को घायल करना ही उसका परम लक्ष्य है।

आचार्य भरत मुनि ने हास्य के दो विभाग किए हैं—आत्मस्थ और परस्थ। जब पात्र स्वयं हंसता है तो आत्मस्थ है, जब दूसरे को हंसाता है तो परस्थ है। पण्डितराज जगन्नाथ के अनुसार हास्य के विभाव को देखने से जो हास्य उत्पन्न होता है वह आत्मस्थ है और किसी अन्य को हंसता हुआ देखकर जो हास्य उत्पन्न होता है वह परस्थ है। साहित्य-दर्पण में हास्य के छः भेद किए गए हैं—स्मित, हसित, विहसित, उपहसित, अपहसित और अतिहसित। 'स्मित' में दांत दिखाई नहीं देते हैं, दृष्टि कुछ कटाक्षपूर्ण हो जाती है, नीचे का होंठ भी कुछ हिलने लगता है और चेहरे पर माधुर्य आ जाता है। 'हसित' में दांत कुछ-कुछ दिखाई देने लगते हैं, गाल और आंखें फूली हुई प्रतीत होती हैं। 'विहसित' में हंसने की क्रिया शब्द-युक्त होती है, लोग उसे सुन सकते हैं और आंखें कुछ सिकुड़ जाती हैं। 'उपहसित' में नथुने

---

१. डॉ० बरसाने लाल चतुर्वेदी : 'हिन्दी साहित्य में हास्य रस', पृ० ४६
२. वही, पृ० १६

फूल जाते हैं, सिर और कन्धे सिकुड़ जाते हैं। 'अपहसित' में सिर तथा कंधे स्पष्ट रूप से हिलने लगते हैं, आंखों में जल आ जाता है और पेट पकड़ने की आवश्यकता भी अनुभव होने लगती है। 'अतिहसित' में हास्य के सब लक्षण और परिणाम सर्वथा स्पष्ट हो जाते हैं और हंसते-हंसते पेट पकड़ना पड़ता है।[1] इनमें स्मित तथा हसित उत्तम लोगों के योग्य हैं। विहसित तथा उपहसित मध्य श्रेणी के लोगों से सम्बन्ध रखते हैं और अपहसित एवं अतिहसित का सम्बन्ध निम्न कोटि के लोगों से है। हास्य के सामान्य रूप हैं—परिस्थितिमूलक हास्य, शाब्दिक हास्य, अशिष्ट हास्य आदि। हास्य-सृजन के मुख्य प्रकार हैं—पात्रों की यान्त्रिक क्रिया, किसी पात्र विशेष की असामाजिक विद्रूपता, किसी वाक्य-विशेष की आवृत्ति, किसी भाषा-विशेष का अधिकाधिक प्रयोग, पात्रों की हास्यास्पद स्थिति, वाक्छल, सम्बद्ध उपमाएं, शब्दालंकार, साधारण घटना का प्रसिद्ध सामयिक प्रसंग से सम्बन्ध बिठाकर, साधारण बात का ब्यौरेवार वर्णन, साधारण विषय की प्रामाणिकता के लिए अनुसंधित्सु पाण्डित्य प्रदर्शन, संवाद-शैली आदि।

हिन्दी के हास्य-व्यंग्य-साहित्य को समृद्ध बनाने में 'उग्र' का योगदान कम महत्त्व का नहीं है। इनके हास्य में अलमस्त फक्कड़पन और व्यंग्य में दुधारी तलवार का तीखापन मिलता है। इन्होंने 'पिशाची', 'सोसायटी आफ डेविल्स', 'काने का ब्याह', 'कम्युनिस्ट दरवाजे पर', 'सनकी अमीर', 'मूसल ब्रह्म', 'गंगा, गंगदत्त और गांगी' आदि अनेक हास्य-व्यंग्य प्रधान कहानियों की रचना की है। इनके सामाजिक अति यथार्थवादी उपन्यासों में समाज के विभिन्न दुर्गुणों एवं दुर्नीतियों पर बड़े तीखे, सशक्त एवं स्पष्ट व्यंग्य किए गए हैं। ये धनलोलुप सेठों, विलासी राजाओं, ज़मींदारों, रूप और यौवन के जान-मार व्यापारियों, दुराचारी नर-पिशाचों, पियक्कड़ों, व्यभिचारी फिल्म-निर्देशकों, अभिनेताओं, अभिनेत्रियों, काशी के धर्मावतार सामाजिक पंडों आदि पर बड़ी निडरता के साथ तिलमिलाने वाले व्यंग्य-बाण छोड़ते हैं। इनका लक्ष्य अपने आलम्बनों के प्रति पाठकों के हृदय में घृणा, तिरस्कार एवं क्रोध के भाव उभारना है। इनका व्यंग्य-विधान

---

१. डॉ० बरसाने लाल चतुर्वेदी : 'हिन्दी साहित्य में हास्यरस', पृ० २६

स्पष्ट, सशक्त तथा प्रभावशाली होने के साथ-साथ अश्लीलता का दोष भी लिए हुए है। उदाहरणार्थ —'फागुन के दिन चार' में ये नृत्य-शिक्षक दूल्हाखां पर व्यंग्य करते हुए कहते—"सो, युवती के घुटने वह सही करता, सावधानी से उसकी रान सहलाता हुआ। फिर, सितार दोनों जोबनों के बीच में फिट करने की कोशिश में पहले सितार की लकड़ी से उसके कुच दबाता। इस पर युवती अगर हंस कर रह जाती तो अपने पंजे का प्रयोग करता।"[१]

'उग्र' की रचनाओं में प्राप्त हास्य कहीं आत्मस्थ है और कहीं परस्थ है। 'पिशाची', 'सोसायटी आफ डेविल्स', 'काने का ब्याह' आदि कहानियों का हास्य आत्मस्थ है। इनके पात्र बाबू श्रीलाल, पीटर दि ग्रेट, शैतान-मण्डली के सभापति, अन्य सदस्य, मक्खनलाल आदि स्वयं हंसते हैं। बाबू श्रीलाल के हास्य का आलम्बन उनका मित्र रामनाथ है और पीटर, शैतान-मण्डली के सभापति एवं अन्य सदस्यों के आलम्बन गोरा साहब तथा जासूस जामवन्तसिंह हैं। मक्खनलाल के हास्य का आलम्बन काना कमलनैन है। ये पात्र अपने-अपने आलम्बनों का उपहास उड़ाते हैं, उन्हें भांति-भांति से तंग करते हैं। परन्तु यह सभी कुछ हास्य की सीमा का उल्लंघन नहीं करता है, इसीसे इन रचनाओं के हास्य में कटुता, कठोरता तथा चिड़चिड़ापन कम है। 'गंगा, गंगदत्त और गांगी', 'मूसल ब्रह्म', 'सनकी अमीर' आदि कहानियों का हास्य-व्यंग्य परस्थ है। इनके पात्र गंगदत्त, गोसाइंन, अब्दुल्ला, चौधरी रनजीत राय आदि स्वयं नहीं हंसते हैं। ये अपने कार्य-व्यापारों से जाने या अनजाने दूसरों को ही हंसाते हैं। इन कहानियों में उल्लसित करने वाला हास्य कम और तीखा व्यंग्य अधिक मिलता है, उसमें कटुता भी आ गई है। कथाकार की सहानुभूति आलम्बनों को नहीं मिलती है, वह उनका उपहास उड़ाना ही उचित समझता है। इन कहानियों के पात्र अपने आचरण से दूसरों को सताते हैं, इसीसे कथाकार उनकी दुर्दशा देखने में सन्तोष-सा अनुभव करता है।

'उग्र' की कहानियों का हास्य मुख्यतः विहसित तथा उपहसित प्रकार का है और उसका सम्बन्ध मध्य श्रेणी के लोगों से अधिक है। स्मित तथा

---

१. 'फागुन के दिन चार', पृ० १३३-१३४

हसित की शिष्टता इन कहानियों में नहीं मिलती है। यह हास्य उत्तम लोगों के लिए कम है परन्तु इसमें उपहसित तथा अतिहसित की अशिष्टता भी नहीं मिलती है। इन कहानियों को पढ़ते या सुनते समय हम हंसते हैं, हमारा मुंह, गाल आदि फूल-फूल जाते हैं, हंसने की क्रिया शब्द-युक्त होती है और सिर तथा कन्धे सिकुड़-से जाते हैं। परन्तु पेट पकड़ने, आंखों में आंसू आने, कन्धों के हिलने आदि के व्यापार नहीं होते हैं। 'सोसायटी आफ डेविल्स' का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

"अंग्रेजी बोलना बेकार समझकर साहब ने लंगड़ी हिन्दी की शरण ली-

"यू शूआर।"

पीटर—"देख, सूअर-ऊअर मत कहे, नाहीं त कही देत हई, आपन मुंह नाहीं देखतन बनरे के···"

साहब—"तुम इस गाड़ी में काहे आया ?"

पीटर—"तू काहे अहलइ ? पइसा देहली, तब अइली। केहू के बाप का साझा।"

साहब—"बाहर निकल जाओ ! गाधा।"

पीटर—"कहथई सूत जा। पी के बौरा मत, गदहा बनैब त लात खा जाबइ।"

पीटर हंसने लगा। उधर साहब बहादुर अंगारे की तरह लाल और गर्म हो गए। वह एक बार फिर उठकर खड़े हो गए और कमीज़ की बाहें चढ़ाने-उतारने लगे।"[1]

आलोच्य कथाकार हास्य के उद्रेक को 'काने का ब्याह', 'सोसायटी ऑफ़ डेविल्स', 'पिशाची', 'गंगा, गंगदत्त और गांगी' आदि कहानियों में ही प्रश्रय देता हैं। वह अपने प्रतिपाद्य-विषय के लिए हास्य की अपेक्षा व्यंग्य को ही अधिक उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण समझता है। उसके विधान में उसे सफलता भी अधिक मिली है। उसे जीविका, शान्ति, विद्रोह तथा देश-प्रेमकी भावनाओं के लिए यायावरी जीवन व्यतीत करना पड़ा। इस बीच अपने समाज के विविध वर्गों को बड़ी निकटता से देखा और पहचाना और उनकी भीतरी

---

१. 'चित्र-विचित्र', सोसायटी ऑफ़ डेविल्स, पृ० ५८-५६

तथा बाह्य कुरूपताओं का उद्घाटन करना अपना कर्त्तव्य समझा। उसने सामाजिक जीवन की अनीतियों, कुप्रथाओं तथा समाज के ठेकेदारों पर तीखे व्यंग्य-बाण छोड़े, जिससे सुधार हो सके। कतिपय पापियों, पाखण्डियों तथा भ्रष्टाचारियों के सम्बन्ध में वे लिखते हैं—"लिख तो डालूं, लेकिन जीवित महाशयों की बिरादरी-अन्ध भक्त-का बड़ा भय है। बहुतों के बारे में सत्य प्रकट हो जाए तो उनके यश और जीवन का चिराग ही लुप-लुप करने लगे। कुछ तो मरने-मारने पर भी आमादा हो सकते हैं···मेरे खतरनाक प्रायः जीवन में ऐसे कोलाहलकारी संस्मरणों की भरमार है जिन्हें यदि रेकार्ड पर उतार दिया जाय तो सम्बन्धित महानुभाव फरिश्ते नहीं, आदमी नजर आने लगें। हनुमान विशुद्ध प्राकृतिक रूप में, बाल और पूंछ के साथ ऐसे नज़र आने लगें कि अन्य-भक्त लोग भड़ककर रह जाएं। ऐसे-ऐसे लोग बम्बई में, कलकत्ता में, इन्दौर में, उज्जैन में, बनारस में, पटना में और अब तो दिल्ली में भी हैं। डाक्टर जीकल,मिस्टर हाइड, बाहर समाज में सुवर्ण के भोले मृग की तरह दिखाई देने वाले अन्तः कालनेमि, जिन्हें मैं बहुत निकट से जानता हूं, ऐसों के बारे में अपने संस्मरण यदि कभी मैंने लिखे तो उसका उद्देश्य भण्डाफोड़ या व्यक्तिगत विद्वेष नहीं होगा।"[१]

'उग्र' की रचनाओं में व्यंग्य, उपहास आदि की ही प्रधानता मिलती है। परिहास का सौष्ठव इनी-गिनी कहानियों में ही उपलब्ध होता है। परिहास द्वारा आविर्भूत हास्य में, सुरुचि, सुबुद्धि तथा सहानुभूति की विशेष मात्रा रहती है। परिहास की आत्मा साश्रु हो जीवन पर अपनी दृष्टि फेंकती है और जहां कहीं चोट करती है उसकी मरहम-पट्टी भी उसी क्षण से आरम्भ कर देती है। उपहास की आत्मा क्रोध एवं रोष से परिचालित होकर शर-संधान करती है और व्यक्ति को अपने स्थान से च्युत कर, उसकी अधोगति देख उसे सन्तोष मिलता है।[२] 'उग्र' का हास्य-व्यंग्य परिहास के गुणों का निर्वाह नहीं करता है और वह उपहास का समर्थक है। उसमें सहानुभूति, करुणा, कोमलता आदि की न्यूनता और कठोरता, क्रूरता

---

१. 'अपनी खबर', पृ० १०-१२

२. डॉ० एस० पी० खत्री : 'हास्य की रूप-रेखा', प्रथम संस्करण, पृ० २१०

तथा उग्रता का आधिक्य मिलता है। कथाकार सामाजिक असंगतियों, कुप्रथाओं तथा भ्रष्टाचारी व्यक्ति का स्पष्ट उपहास उड़ाता है। 'हत्यारा समाज' का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—"बी० ए० करते ही मेरे सिर पर 'विवाह' वज्रपात हुआ। लड़की वाले पुनः दरवाजे तोड़ने लगे, इस बार पिताजी मेरी शादी करने को पूरे तैयार बैठे थे। बस, मैं नीलाम पर चढ़ा दिया गया। दहेज और तिलक की बोली लगने लगी। एक हज़ार, दो हज़ार पांच हज़ार ! पर जिसका बाप कई लाख का आसामी उसके एकमात्र पुत्र के लिए केवल पांच हज़ार। असम्भव ! पिताजी की 'सरकारी बोली' पन्द्रह हज़ार से कम होती ही नहीं। पहले रुपये, फिर लड़की।"[1] इस प्रकार के व्यंग्य-प्रहारों से कथाकार पाठकों के मन में भ्रष्टाचारियों के प्रति घृणा और विद्रोह के भाव जगाने में बहुत कुछ सफल रहा है।

कथाकार का दृष्टिकोण यथार्थवादी है, इसलिए वह प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से व्यंग्य-योजना का आश्रय लेता है। उसका हास्य विशद आनन्द को त्यागकर प्रयोजननिष्ठ हो जाता है। निन्दा और सुधार ही उसका लक्ष्य है। उसके कथा-साहित्य का सबसे बड़ा गुण व्यंग्य ही है। वे अपने सामाजिक उपन्यासों में ही नहीं, अपनी आदर्शवादी तथा रूमानी कहानियों के भावुकतापूर्ण वातावरण में भी व्यंग्य के अवसरों को हाथ से जाने नहीं देता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से वह ऐसी घटनाओं और पात्रों को चुन लेता है, जो अपने आप में अपने अस्तित्व और समाज के प्रति व्यंग्य हैं। मोटरकार पर तो हर आदमी सवार हो सकता है, परन्तु 'पिशाची' का हास्य-व्यंग्य सहने की क्षमता किसमें है ? 'ब्लेक एण्ड ह्वाइट' के सेठ भारत-भूषण का विद्रूपमय जीवन उसे कितना दयनीय बना देता है और गांव की साधारण जनता के विषाक्त अन्धविश्वासों पर प्रबल आक्रमण करने वाला 'मूसल-ब्रह्म' और 'गंगा, गंगदत्त और गांगी' के वृद्ध ब्राह्मण की शास्त्र सम्मत और शास्त्रीय भोग-लिप्सा का यह विद्रूप क्या इन रचनाओं के अतिरिक्त और कहीं मिल सकता है ?[2]

---

१. 'यह कंचन-सी काया', पृ० ९८-९९

२. श्री राजकमल चौधरी : 'चित्र-विचित्र', भूमिका

'उग्र' उर्दू के महान् व्यंग्यकार सदाअत हसन मंटो के समान किसी व्यक्ति, समाज या बर्बर शासक से डरते नहीं हैं। वे अपने प्रतिपाद्य विषय के अनुरूप बड़ी निर्भीकता के साथ स्पष्ट व्यंग्य-बाण छोड़ते चले जाते हैं। 'चन्द हसीनों के खुतूत' में नौकर-शाही को लक्ष्य बनाकर किए गए व्यंग्य-कोड़ों का प्रहार दर्शनीय है—"चारों ओर डण्डा-शाही, ईंटा-शाही, छुरा-शाही, तलवार-शाही, गुण्डा-शाही, औरंग-शाही, नादिर-शाही का बोलबाला है। धूर्त नौकर-शाही, अपवित्र-नौकर-शाही और इन सब खुराफातों की जड़ नौकर-शाही इस समय घूंघट में मुंह छिपाये है। नौकर-शाही शासन की शक्ति कूट-नीति के दृढ़ गढ़ों और अड्डों के भीतर बैठकर हिन्दू-मुसलमानों के सौभाग्य-गढ़ में सुरंगें लगा रही है और अपने भयंकर काले हाथों को दृढ़ बना रही है। हत्या, षड्यन्त्र और उथल-पुथल का नाम तक सुन लेने पर 'उग्र'-रूप से दमनताण्डव करने वाली नौकर-शाही-नीति इस समय कूट-लीलारत है, सड़कों पर भायं-भायं हो रहा है और गलियों में सायं-सायं।"[1] इस व्यंग्य-बाण से 'उग्र' ब्रिटिश-सरकार की कूटनीति को निरावरण करते हैं, राजभक्तों की आंखें खोलते हैं और देशवासियों के हृदय में विद्रोह, रोष तथा घृणा के भाव जगाते हैं।

व्यंग्य-हास्य की आत्मा है और 'उग्र' उसके विशेषज्ञ हैं। उनके व्यंग्य व्यक्ति-विशेष को नहीं वरन् वर्ग-विशेष को आधार बनाते हैं। 'कढ़ी में कोयला' आदि उपन्यासों में इस प्रकार के व्यंग्य अधिक मिलते हैं। 'उग्र' मालेमस्त मारवाड़ी समाज की स्वार्थपरता, नीचता कृतघ्नता पर प्रहार करते हुए कहते हैं—"काम पड़ने पर कुत्ते को कुत्ताजी कहेगा—बिहारी खांड या बाज़ारी रांड की तरह मुंह बनाकर—मगर, मतलब का दूध निकलते ही, माता-माता कहता हुआ गऊ को भी बेघास की पेंशन देकर पिंजरापोल पठा देगा। पहलवान की तरह हाथी की तरह, अपने गांव से आकर सेठों की सेवा में खपते-खपते उन्हें करोड़पति बनाने में देसवाली जब गल जाता है, तब सेठ साहब उसे जवाब दे देते हैं। कटु नहीं महा-मधुर शब्दों में—देखो पण्डित ! अब तुम इतने बूढ़े हो गए हो कि तुम से काम

---

१. 'खुदाराम और चंद हसीनों के खुतूत', अष्टम संस्करण, पृ० १११-११२

लेना अनुचित मालूम पड़ता है। सो, अब तुम अपने गांव में जाकर बाल-बच्चों में राम-राम करते विश्राम करो।"[1]

आलोच्य साहित्यकार जैसे ब्रिटिश सरकार की कूटनीति, शोषक सेठों, नर-पिशाच व्यापारियों और सामाजिक असंगतियों पर शर-संधान करने में नहीं हिचकिचाया, वैसे ही वह उन भारतीय राजाओं का भी बड़ी निडरता के साथ उपहास उड़ाता है, जो पारस्परिक विद्वेष एवं अज्ञानता के वशीभूत होकर एक-दूसरे का विनाश करने में अपना सर्वस्व होम कर रहे थे। 'सरकार तुम्हारी आंखों में' उपन्यास के महाराज अजबगढ़ और धरमपुर-महाराज के वजीर रंगीनखां के संवादों द्वारा उनका जो तीखा उपहास उड़वाया गया है, वह देखते ही बनता है—

"दुरुस्त है हुज़ूर ! आपकी और खादिम की राय इस मसले पर बिलकुल एक है। साम्राज्य के लिए, उसकी बहबूदी के लिए, उसके 'प्रोग्राम' को अमन से चलते रखने के लिए देसी रियासतें वैसी ही ज़रूरी हैं…"

"जैसे तेज़ कुल्हाड़ी के लिए लकड़ी का डंडा।"

"बजा है ! बिलकुल एक राय हैं हुज़ूर और ख़ादिम इस अहम मसले पर। काठ ही की मदद से काठ कटता है।"

"आप कुछ ऐसा कीजिए, जिससे रेजिडेंट की तेज़ ताक़त कुल्हाड़ी बन जाय, उसके विरुद्ध-लकड़ी का डंडा मैं बनूंगा। खर्चा चाहे जो लगे।"

"बड़-बड़ों में पासा फेंकना है—कई लाख लग सकते हैं।"

"दूंगा-दूंगा खां साहब ! अपने पड़ोसी के सर्वनाश के लिए मैं प्राण तक दे दूंगा।"[2]

'उग्र' के क्रान्तिकारी तथा विद्रोही जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव आते रहे। उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना पड़ा। 'भारत के पेरिस' अर्थात् बम्बई नगर में उन्होंने लगभग बीस वर्ष व्यतीत किए, यहां के धनवान विलासी नर-नारियों के व्यभिचारी जीवन को निकटता से देखा और यथास्थान उनका व्यंग्यात्मक अनावृत रूप पाठकों के सामने रखना अपना

---

१. 'कढ़ी में कोयला', पृ० ३२
२. 'सरकार तुम्हारी आंखों में', चतुर्थावृत्ति पृ० ७४

कर्तव्य समझा। 'फागुन के दिन चार' उपन्यास के माध्यम से अनेक स्पष्ट व्यंग्य किए—"यह बम्बई शहर है। यहां माले-मस्त सेठ सुन्दरियों के पीछे सर्वस्व लुटाते हैं और फिर, अक्सर उनपर अधिकार पाते ही काल के गाल में चले जाते हैं। तब वे सुन्दरियां तगड़े, तन्दुरुस्त, तेजस्वी तरुणों के पीछे सर्वस्व लुटाने की लोभ-ललित लीलाएं करती हैं।"[1] इसी प्रकार के अनेक तीखे व्यंग्य वे अन्यत्र भी करते हैं, बम्बई को रोग-वियोगमयी वेश्या सिद्ध करते हैं, जहां की विख्यात अधिष्ठात्री देवियां हैं—मुंबादेवी और महालक्ष्मी। मुंबादेवी के सामने है विचित्र व्यापारों से भरा विस्तृत बाज़ार, जिसमें सोना-ही सोना, तो महालक्ष्मी के सामने है रेस का जुआड़ी-बाजियों का मैदान, जिसमें खोना-ही खोना। मुंबादेवी जो कुछ देती हैं, महालक्ष्मी उसी वक्त से छीन लेती हैं। महालक्ष्मी की लुटेरी अष्ट भुजाओं में से कुछ हैं—रेस, रंडी, वरंडी, सट्टा, बट्टा और असन्तोष खट्टा।[2]

कथाकार नगर-नगर, गांव-गांव, गली-गली और घर-घर भटकता रहा। उसने जहां पुरुषों की अनैतिकता, अधिनायकवादिता, क्रूरता और पशुता को देखा और उस पर व्यंग्य किए, वहां हिन्दू-नारियों की अतिभावुकता, अन्धविश्वास और दुर्बलता को भी अभिशाप माना और उनका उपहास उड़ाया। हिन्दू-नारियों की अतिभावुकता और अन्धविश्वास से ही लाभ उठाकर रूप और यौवन के जान-मार नर-पिशाच व्यापारी उन्हें अपने जाल में फंसाते हैं। वे उनका सतीत्व लूटते हैं और भेड़-बकरियों के समान उन्हें बेचते हैं। 'दिल्ली का दलाल' का तो मुख्य प्रतिपाद्य विषय ही यही है। कथाकार सुधार के उद्देश्य से ही हिन्दू-नारियों का उपहास उड़वाता है—"उफ़ ! क़सम खुदा की ! ग़ज़ब की भोली होती हैं हिन्दुओं की औरतें। देवता, पीर, भूत और जिन्न के नाम सुनते ही कांपने लगती हैं। फिर तो उनसे जो चाहो वही मांग लो। गहने, पैसे और—उसको कोई मज़हबी नाम रखकर यानी पूजा-पत्तर का रूप देकर—इज्ज़त भी।"[3] इस

---

१. 'फागुन के दिन चार', पृ० १०३

२. 'व्यक्तिगति', पृ० ५२-५२

३. 'मनुष्यानन्द', पृ० ४०

प्रकार के व्यंग्यात्मक उपहास उड़ाने का प्रभाव बड़ा गहरा और प्रभावशाली होता है। उससे आलम्बन सजग बनता है, पाठक भी सावधान होता है और नर-पशुओं के प्रति घृणा का भाव जागता है।

उपर्युक्त विभिन्न उदाहरणों और उनके विवेचन से स्पष्ट है कि 'उग्र' का हास्य-व्यंग्य विषयानुरूप तथा मूल संवेदनाओं को उभारने वाला है। अब यह देख लेना भी आवश्यक है कि वे हास्य-व्यंग्य के उद्रेक के लिए किन-किन रूपों का आश्रय लेते हैं। उग्र के हास्य-व्यंग्य के शैलीगत रूपों में विभिन्न उपमाओं, संवादों, शब्दालंकारों, विचित्र भाषा आदि का सहयोग प्रधान है। इनका पृथक्-पृथक् सौष्ठव द्रष्टव्य है—

(१) उपमाओं द्वारा हास्य-व्यंग्य-संचार—

(क) "हमारे अनेक भारतीय भाई रेल में गोरों को देखकर वैसे ही कांपने लगते हैं, जैसे कोई बच्चा अयोध्या की हनुमानगढ़ी या काशी के दुर्गा मन्दिर का मोटा बन्दर देखकर।"[१]

(ख) "तब तब वह दांत-टूटा देहाती चुटकियां ही लेता रहा और एडवोकेट साहब नीम का काढ़ा पीने जैसा मुंह बनाते रहे।"[२]

(ग) "मैं इस कद्र परेशान हो चुका था डबल ज़ीरो की खोज में कि अब चारों ओर से हटकर मेरा ध्यान मकान के नम्बरों पर यों डट गया जैसे गुरु द्रोणाचार्य द्वारा बतलाये गए निशाने पर अर्जुन की एकान्त दृष्टि।"[३]

(२) संवाद-शैली द्वारा हास्य-व्यंग्य का उद्रेक—(काने कमलनैन और उसके मित्र मक्खनलाल के संवाद)

"मैं काना हूं तो इसमें मेरा क्या वश ?" तमक कर कमलनैन ने पूछा, "क्या काने के हृदय नहीं होता ? या वह आदमी नहीं दानव होता है ? वजह क्या जो महज एक आंख कम होने से सुनते ही वे नाक सिकोड़ बैठती हैं ?"

---

१. 'चित्र-विचित्र', 'सोसायटी आफ डेविल्स', पृ० ५६
२. „ 'मूर्खों का मीना-बाजार', पृ० ७७-७८
३. „ 'कम्यूनिस्ट दरवाज़े पर', पृ० ११३

"असल में काने पति से आंखें चार हो नहीं पातीं, फिर प्यार दिल में आवे तो किस दरवाज़े ?" मक्खन ने गम्भीर मुद्रा से कहा।

कमलनैन और भी झन्नाया, "मेरी सरकार हो, तो मैं समाज की युवतियों को विवश करूं, विवश—काने पतियों पर पहले नज़र डालने के लिए। काना—होने पर आ जाय तो बेजोड़ बनकर रहता है जैसे, ऋषि शुक्राचार्य, राणा रणजीतसिंह, लार्ड वेवल।"[१]

(३) शब्दालंकारों के प्रयोग से हास्य-व्यंग्य का सृजन—

(क) "जो मोटर पर बैठकर मटरगश्ती करना जानता है, वह उसके उछले हुए कीच-कर्दम को यदि न पहचाने, तो यह घोर लज्जा का विषय है।"[२] (छेकानुप्रास)

(ख) "अहो ! अहो ! धन्य ! धन्य ! अपना नवरूप देखते ही गंगदत्त पागलों की तरह प्रसन्नता में नाच और चिल्ला उठे।"[३] (वीप्सा)

(ग) "मैं—मैं वही हूं वह ब्राह्मण तुम्हारा, सुन्दरि !" गंगत्त ने पुनः समझाना चाहा, "मैं जवान हो गया हूं—राजर्षि के दर्शन कर। डरो मत ! भागो मत ! मैं तुम्हारा पति हूं।"

"बाप रे ! दौड़ो रे !" ब्राह्मणी अधिक अपमान न सह सकी, "बचाओ ! मेरा पुत्र पागल हो गया है।"[४] (वीप्सा)

(४) विचित्र भाषा के प्रयोग से —(शैतानी भाषा)

(क) एक शैतान ने पूछा—"यण्डलू हण्डलू कौनलूलू हण्ड ?" (यह कौन है ?)

शैतान ने शैतानी भाषा में प्रश्न किया था।

मैंने उत्तर दिया, जाण्डलू, सुण्डलू सण्डलू। हण्डलू माण्डलू रेण्डलू पीण्डलू छेण्डलू पण्डलू डाण्डलू हण्ड।"[५] (जासूस हमारे पीछे पड़ा है)

---

१. 'चित्र-विचित्र,' 'काने का ब्याह', पृ० ६७
२. „ 'पिशाची', पृ० १
३. „ 'गंगा, गंगदत्त और गांगी', पृ० ५१
४. वही, पृ० ५२
५. 'चित्र-विचित्र', 'सोसायटी आफ डेविल्स', पृ० ६१

(ख) "यू कां जाता है ?"
"पिसाब करै। काहें ?"
"उडर नेई। हाटो, वोई टुमारा वास्टे नेई हाय।"
"बाह रे, हम्मै पिशाब लगल हौ। ई रंग दूसरे के उप्पर गांठे।"[1]

संक्षेप में, 'उग्र' के कथा-साहित्य का हास्य-व्यंग्य मनोरंजन की सामग्री देता है, सामाजिक विद्रूपताओं का उद्घाटन करता है और समाज-सुधार की अप्रत्यक्ष रूप से प्रेरणा देता है। कथाकार के यथार्थवादी दृष्टिकोण के कारण वह स्पष्ट तथा यथार्थ है, उसमें स्वाभाविकता, कटुता तथा तीखापन मिलता है। वह मृदुल, निष्कलुष, रोमांचित करने वाला तथा सुसंस्कृत कम है और उत्तेजक, उन्मुक्त, वीभत्स तथा तिलमिलाने वाला अधिक है। उसमें तथाकथित अश्लीलता, अशिष्टता आदि भी मिलती है। कथाकार अपने आलम्बनों के प्रति कठोर है, वह उनके प्रति उपेक्षा, तिरस्कार तथा विद्रोह-भाव जगाना चाहता है, जिसमें उसे पर्याप्त सफलता भी मिली है। परन्तु अधिकांश रचनाओं में उसका हास्य अपनी सीमा से बाहर होकर, स्पष्ट व्यंग्य का रूप धारण कर लेता है।

---

१. 'चित्र-विचित्र', 'सोसायटी आफ डेविल्स', पृ० ५७

उपसंहार

लौह-लेखनी के धनी 'उग्र' व्यक्तिगत जीवन में ही नहीं, साहित्यिक जगत् में भी उपेक्षित ही रहे। उसका मुख्य कारण यही था कि उन्होंने व्यक्ति-विशेष अथवा समाज के मिथ्या, आडम्बरपूर्ण और पतित चरित्र का साथ न दे, उसका निर्भीकता से विरोध किया। वे विद्रोही थे, लीक छोड़-कर चलने वाले थे, और इसका मूल्य उन्हें चुकाना पड़ा। वे एक संगठित आन्दोलन के शिकार हुए, फिर भी, उनके 'उग्र व्यक्तित्व' ने उन्हें सामा-जिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक रूढ़ियों, अन्धविश्वासों एवं विकृतियों के विरुद्ध क्रान्ति करने के लिए निरन्तर प्रेरणा दी। उनकी परम्परा-विरोधी रचनाओं को पढ़ या सुनकर, वाराणसी के गुण्डानुमा पण्डे, उनके हाथ-पांव तोड़ देने की धमकियां देने लगे और अंग्रेज सरकार ने तो उनकी अनेक रचनाओं को जब्त ही कर लिया। किन्तु 'उग्र' अपनी 'उग्र-शैली' में, देश और समाज के यथार्थ जीवन को लेकर, ज्वालामय रचनाएं लिखते ही रहे। उन्होंने अपनी पूर्ववर्ती या समकालीन साहित्यिक परम्परा का पालन न किया, उनका कृतित्व निजी जीवन और व्यक्तित्व से प्रेरणा ग्रहण करता रहा, और उस पर बहिरंग परिस्थितियों का प्रभाव भी यत्र-तत्र परिलक्षित होता है।

'उग्र' की रचनाएं सरस, भावपूर्ण, विचारोत्तेजक तथा विवादास्पद हैं। उन्हें कथाकार का विद्रोही, विस्फोटक और आग्नेय व्यक्तित्व प्राणवान् बनाता है। उसकी संस्कारगत उग्रता, तत्कालीन स्वतन्त्रता-आन्दोलनों, रूसी-क्रान्ति और तेजस्वी युवकों एवं युवतियों से प्रोत्साहन पाकर, अन्याय अनाचार और शोषण के विरुद्ध बम्बार्डमेंट करने में देश और समाज का

मंगल समझती है। कथाकार ऊंची कल्पनाओं और खोखले आदर्शों में अविश्वास प्रकट करता हुआ, समाज के कुत्सित अंगों को निकटता से देखना और दिखाना अनिवार्य समझता है। उसका विरोध स्वस्थ समाज-व्यवस्था से नहीं, वरन् पतित, और ध्वस्त गतिविधियों से है, जो मानव को दानव बनाती हैं।

'उग्र' ने हिन्दी-जगत् को लगभग १५० कहानियां और १० उपन्यास भेंट किए। इस विपुल भण्डार में 'ध्रुव-धारणा', 'उसकी मां', 'देश-भक्त', 'जल्लाद', 'सनकी अमीर', 'ऐसी होली खेलो, लाल', 'कला का पुरस्कार', 'अभागा किसान' आदि कहानियां और 'चन्द हसीनों के खुतूत', 'बुधुआ की बेटी' (मनुष्यानन्द), फागुन के दिन चार' आदि उपन्यास उनकी प्रतिनिधि रचनाएं हैं और हिन्दी-साहित्य की स्थायी निधि हैं। इनमें ब्रिटिश सरकार, नौकर शाही, वर्ण-जाति व्यवस्था, रूढ़ि-परम्परा एवं अन्धविश्वास, स्त्री-पूरुष के अमर्यादित सम्बन्धों एवं उच्छृंखल वैवाहिक सम्बन्धों आदि का भण्डा-फोड़ किया है और स्वस्थ राष्ट्रीय तथा सामाजिक चेतना को प्रश्रय मिला है।

'उग्र' के कथासाहित्य की एक प्रमुख प्रवृत्ति है—समष्टि-चेतना। उनकी समष्टि-चेतना का क्षेत्र व्यापक है, उसमें विविध समस्याओं, जन-जागरण तथा स्वदेशी एवं विदेशी आन्दोलनों को स्थान मिला है। सामाजिक समस्याओं में अछूत-समस्या, भगाई हुई युवतियों की समस्या, विवाह-समस्या, मद्यपान-समस्या, वेश्या-समस्या, बच्चों के संरक्षण की समस्या, जाति-पांति-समस्या, विधवा-समस्या, अन्धविश्वास और पाखण्ड-समस्या, स्त्री-पुरुष के अधिकारों की समस्या आदि का चित्रण यथार्थ रूप में हुआ है। कथाकार कतिपय समस्याओं के ही समाधान देता है, शेष समस्याओं को सुलझाने का कार्य वह पाठकों और समाज-सुधारकों पर छोड़ देता है। वह अपनी रचनाओं के अन्त में, पुरस्कार और तिरस्कार वितरण की पद्धति को प्रायः नहीं अपनाता है। प्रेमचन्द के समान विविध आश्रमों की स्थापनाओं में भी उसकी आस्था नहीं है। वह अपने व्यक्तित्व के अनुरूप यथार्थवादी दृष्टिकोण को प्रधानता देता है और सामाजिक विद्रूपताओं के उद्घाटन में ही अपनी कला का सार्थकता समझता है।

आलोच्य कथाकार की राजनीतिक चेतना को तीन रूपों में देख सकते हैं—ईस्ट इण्डिया कम्पनी या ब्रिटिश सरकार तथा ज़ारशाही के दमन-चक्र के विरोध रूप में, अछूतोद्धार आन्दोलन के रूप में और साम्प्रदायिक संघर्ष की निन्दा के रूप में। वह ईस्ट इण्डिया कम्पनी की धांधली, ब्रिटिश सरकार के कुचक्रों और ज़ारशाही अन्याय के विरुद्ध बड़ी निर्भीकता से लेखनी चलाता है उसका राष्ट्रधर्मी कलाकार राष्ट्रीय आन्दोलनों से उत्तेजित होकर, निरन्तर गरजता और बरसता है। उसे राज-द्रोह के अभियोग में जेल जाना पड़ता है, उसकी अनेक कृतियां जब्त कर ली जाती हैं और उसका निजी जीवन यायावरी रूप ग्रहण करता है, किन्तु पाशविकता और अन्याय के आगे वह घुटने नहीं टेकता। इसी प्रकार वह हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता और छूआछूत की समस्या की भर्त्सना करता है। उसका विश्वास मानवता के ऊंचे आदर्शों में है, जिनमें न कोई हिन्दू है, और न कोई मुसलमान। वह अपने इसी दृष्टिकोण से, मिथ्याभिमानी ब्राह्मणों और जाति-भेद के समर्थकों की कड़ी आलोचना करता है। उसका यह कार्य उसे प्रेमचन्द के निकट ले जाता है और उस पर गांधीवादी आदर्शों, तत्कालीन राजनीतिक आन्दोलनों, आर्य-समाज की सुधार-योजनाओं के प्रभाव को व्यंजित करता है।

'उग्र' की आर्थिक-चेतना, साम्यवाद के अप्रत्यक्ष प्रभाव को ग्रहण करती है। वे पूंजीवाद के विरोधी हैं, और निर्धनों, पीड़ितों तथा शोषितों के प्रति हार्दिक सहानुभूति रखते हैं। उनके अनुसार साम्यवाद रूस या चीन से नहीं आएगा, वह तो काले ज्वर की भांति देश-देश में स्वयं ही उत्पन्न हो जाएगा। देश के निर्धन पीड़ित तथा विवश प्राणी ही साम्यवादी बन जाते हैं और पूंजीवाद के विध्वंस में जुट जाते हैं। अपनी इन धारणाओं के अनुसार 'उग्र' धनिकों, ज़मींदारों और सूदखोरों के प्रति क्रान्ति के भाव उभारते हैं। उनके कुकर्मों का नग्नरूप पाठकों के सामने रखते हैं। इस नाते उनकी 'कढ़ी में कोयला', 'अभागा किसान', 'टॉम, डिक, हैरी एण्ड लिमिटेड', 'नौ सौ निन्यानवे', कम्युनिस्ट दरवाजे पर' आदि रचनाएं विशेष महत्त्व रखती है। इनमें स्वदेशी साम्यवाद अभिव्यंजित हुआ है। कथाकार रूसी साम्यवाद की नास्तिकता, द्वन्द्वात्मक भौतिकता, वर्ग-संघर्ष की कटुता आदि

की अपेक्षा भारतीय समता, मानवीय सहानुभूति तथा सेवा-भावना को बढ़ावा देता है।

'उग्र' की ऐतिहासिक चेतना, वर्तमान को सबल बनाने के लिए, अतीत की गौरवमयी वीरगाथाओं से उपजीव्य खोजती है। उसमें स्थूल घटनाओं के स्थान पर ऐतिहासिक सत्य को प्रश्रय मिला है। वह देशी और विदेशी शासकों के विरुद्ध विस्फोट उत्पन्न करती है। उस पर युग-चेतना, रूसी-क्रान्ति और राजपूतकालीन शौर्य का विशेष प्रभाव पड़ा है। 'उग्र' की ऐतिहासिक रचनाएं, देश के लिए आत्मबलिदान की भावनाओं का रचनात्मक प्रसार करती हैं। उनका ऐतिहासिक और साहित्यिक महत्त्व सदैव अक्षुण्ण बना रहेगा।

सांस्कृतिक चेतना की दृष्टि से भी 'उग्र' उग्र ही बने रहे हैं। उनकी अन्तरात्मा यद्यपि भारतीय संस्कृति की अलौकिकता पर मुग्ध रही है, तथापि वे भारतीय सांस्कृतिक पतन पर जीभर कर बरसे हैं। उन्होंने धर्म में घुसे आडम्बरों, दुराचारों और विकारों को अनावृत करना आवश्यक समझा। धार्मिक कट्टरता और अन्धविश्वासों को उन्होंने अभिशाप प्रमाणित किया। व्यभिचारी संगीतकारों, नृत्य शिक्षकों और अभिनेताओं के खोखले जीवन की उन्होंने यत्र-तत्र पोलें खोली हैं। वस्तुतः 'उग्र' की लेखनी देश और समाज के स्वस्थ रूप को नहीं, वरन् अस्वस्थ रूप को, मूर्त्त रूप देने में अद्वितीय है। उसका प्रधान कारण, उनका यथार्थवादी दृष्टिकोण ही है।

'उग्र' के दृष्टिकोण के सम्बन्ध में यद्यपि गम्भीर मतभेद पाया जाता है, तथापि उन्हें नग्नतावादी, प्रकृतवादी आदि न मानकर, यथार्थवादी कहना अधिक उपयुक्त है। अपने स्वच्छन्द और 'उग्र-व्यक्तित्व' के कारण, वे यथार्थवाद की सामान्य सीमा का उल्लंघन करके, प्रकृतवाद, अति-यथार्थवाद और आलोचनात्मक यथार्थवाद के कतिपय तत्वों को भी ग्रहण करते हैं। इस दृष्टि से उनकी तुलना श्रीचतुरसेन शास्त्री, इलाचन्द्र जोशी, मन्मथनाथ प्रभृति लेखकों से की जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि समाज के कुत्सित तथा घृणित अंगों पर लिखते समय वे सामाजिक मान-मर्यादाओं की अवहेलना करते है, और संयत भाषा के स्थान पर, अश्लील शब्दों और वर्जित गालियों से युक्त भाषा का प्रयोग करते हैं। उससे अशिष्टता,

अश्लीलता और अभद्रता उनकी रचनाओं में स्थान बनाती है। किन्तु, देखना यह है कि क्या यह अश्लीलता ही उनका साध्य है ? उत्तर स्पष्ट है—नहीं। महात्मा गांधी जैसे नैतिकतावादी के सम्मुख भी जब यह उलझन भरा प्रश्न रखा गया तो उन्होंने लेखक की सचाई का अनादर करने से स्पष्ट इन्कार कर दिया था। उन्होंने अपने पत्र में, आलोच्य कथाकार के दृष्टि-कोण को स्वस्थ माना था, और उसकी पुष्टि में लिखा था—'लेखक ने अमानुषी व्यवहार पर घृणा ही पैदा की है।' ऐसी स्थिति में 'उग्र' को नग्नतावादी या प्रकृतवादी नहीं माना जा सकता है। प्रकृतवाद मनुष्य को पशु मानता है और उसे, उसके प्राकृतिक रूप में देखने का प्रयास करता है। वह स्वस्थ परम्पराओं, मर्यादाओं और मानवीय मूल्यों में अविश्वास प्रकट करता है। किन्तु, 'उग्र' के कथा-साहित्य में न तो मनुष्य को पशु सिद्ध किया गया है, और न स्वस्थ मर्यादाओं का तिरस्कार ही हुआ है। वे तो पाश-विकता के घोर विरोधी हैं और उसके प्रति घृणा जगाते हैं। वे प्रकृतवाद के विरुद्ध उपदेशात्मकता को भी ग्रहण करते हैं। उनका दृष्टिकोण सुधारवाद आशावाद, मानवतावाद और आदर्शवाद को उचित सम्मान देता हुआ, प्रेमचन्द के दृष्टिकोण के निकट दिखाई देता है। उनकी धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक चेतना राष्ट्रीय जागरण से प्रभावित है, और इन विषयों पर निर्मित रचनाओं को, स्वस्थ यथार्थवादी ही माना जाएगा। उनमें नग्नता और प्रकृतवादी तत्वों का सर्वथा अभाव मिलता है। 'दिल्ली का दलाल', 'फागुन के दिन चार' आदि उपन्यासों की नग्नता भी साधन ही है, साध्य नहीं। इनमें 'उग्र', रूप और यौवन के जान-मार नर-पिशाचों के कार्य-कलापों के प्रति विरोध और घृणा जगाते हैं। उन्हें जीवन के प्रांगण में विजयी नहीं, वरन् परास्त, और सिसक-सिसककर दम तोड़ते हुए दिखाते हैं।

'उग्र' के कथा-साहित्य के कुछ अंशों की नग्नता के कुप्रभाव को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। गांधी जी जैसे आदर्शवादियों पर चाहे उनकी रचनाओं की नग्नता का कुप्रभाव न पड़े, किन्तु सामान्य पाठक उनके कुत्सित विषयों के रसमय चित्रण-जाल में उलझ जाते हैं। कथाकार यद्यपि बार-बार यही कहता है कि उसका उद्देश्य समाज का परिष्कार और सुधार है, तथापि वह कतिपय घृणित प्रसंगों के वर्णन में रुचि लेने लगता

है और उसी से वह मूल विषय या सुधार-प्रवृत्ति के उद्देश्य से विमुख होकर, पाठकों को भी पथ-भ्रष्ट करता है। उसके कथा-साहित्य में, कतिपय ऐसे स्थल अवश्य मिलते हैं, जो सामाजिक बुराइयों को अनावृत करने के साथ-साथ, अपने रसमय आकर्षण से पाठकों को उलझाते हैं, जिसका अस्वस्थ प्रभाव भी पड़ता है और यह 'उग्र' के कथा-साहित्य का सबसे बड़ा दोष है।

'उग्र' के कथा-साहित्य को शिल्पविधि में गत्यात्मकता, परिवर्तनशीलता और कथ्यानुरूपता की विशिष्टता चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुई है। वह अनुभूति की प्रभावशाली अभिव्यंजना में पूर्ण समर्थ है तथा मौलिकता के गुण से अलंकृत है। 'उग्र' की कहानियों की शिल्पविधि प्रसाद की कहानी-कला के तत्वों से प्रेरणा लेकर विकसित हुई है। उसमें चरित्र अवतारणा की भावुकता तथा रूप छवि के वर्णन की भव्यता, कवित्व शक्ति और भाषा-शैली की स्वाभाविकता का सौष्ठय द्रष्टव्य है। 'उग्र' के उपन्यासों की शिल्पविधि यथार्थयादी दृष्टिकोण के अनुसार सामाजिक कथानकों, यथार्थ पात्रों, उन्हीं के अनुकूल संवादों तथा भाषा प्रयोगों को महत्त्व देती है।

वर्ण्य-विषय के आधार पर 'उग्र' की कहानियों के कथानक राजनीतिक, सामाजिक, हास्य व्यंग्य-प्रधान और ऐतिहासिक हैं। रचना-शैली की दृष्टि से उन्हें वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक, कथोपकथनात्मक तथा संस्मरणात्मक कह सकते हैं। रचना-लक्ष्य के अनुसार वे आदर्शवादी एवं यथार्थवादी हैं। उनमें प्रकृतवाद, अति-यथार्थवाद आदि के कुछ तत्वों का सन्निवेश भी मिलता है। उनके आरम्भ आकर्षक, विकास स्वाभाविक और अन्त बड़े मार्मिक हैं। वे लघु आकार वाले भी हैं और दीर्घ आकार वाले भी, किन्तु लघु आकार वाले कथानक साधारण हैं, उनका उद्देश्य कथा प्रस्तुत करना नहीं, अपितु किसी भाव-विशेष को जगाना ही है। 'मेघराग' जैसी कहानियों में 'उग्र' ने अस्वाभाविक घटनाओं को भी दिखाया है, जो शिल्पगत दोष ही माना जाएगा।

'उग्र' की कहानियों में राष्ट्रीय-चेतना, धार्मिक आडम्बरों, सामाजिक समस्याओं और मानव-चरित्र के स्वरूप का विश्लेषण करने के लिए सैकड़ों पात्रों की सृष्टि की गई है। ये पात्र घटनाओं को संचालित करते हैं, वातावरण के निर्माण में सहायता देते हैं और कहानीकार के मूल भावों को अभि-

व्यंजित करते हैं। उनमें काम-कुण्ठाएं कम और क्रियाशीलता अधिक मिलती है। यह क्रियाशीलता उन्हें उत्थान की ओर भी ले जाती है, और पतन की ओर भी। उनका चरित्र-चित्रण प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों पद्धतियों से हुआ है। कथाकार कहीं तो स्वयं उनके आचार-विचार पर प्रकाश डालता है और कहीं, उन्हीं के वार्तालापों, कार्य-कलापों तथा रहन-सहन से उनका व्यक्तित्व उभरने देता है। वे यंत्र-चालित कम और स्वकर्मानुचालित अधिक हैं। 'उग्र' अपने पात्रों को, अच्छाई या बुराई के उपलक्ष्य में, पुरस्कार या तिरस्कार का वितरण नहीं कराते हैं। यहीं उनके पात्र, प्रेमचन्द के पात्रों से पर्याप्त भिन्न हो जाते हैं।

'उग्र' की कहानियों की भाषा, उनके उपन्यासों से कुछ भिन्न है। उसमें विषयानुसार भावुकता, मूर्तिमत्ता, काव्यमयता, विचारोत्तेजकता, ओजस्विता, लाक्षणिकता, प्रवाह, आकर्षण, साम्य-स्थापन, चमत्कार-प्रदर्शन, मादकता, वक्रता, व्यंग्यात्मता आदि की छवि मिलती है। कथ्य के अनुरूप स्वाभाविक भाषा के प्रयोग में 'उग्र' अपने उपमान आप हैं। उनकी नई-नई उपमाएं जादू-सा कर देती हैं। कथाकार अपनी भाषा को विविध अलंकारों, सूक्तियों, कवितांशों आदि से सुसज्जित करता हैं। वह तत्सम, तद्भव, देशी और विदेशी शब्दों का समुचित चयन तथा निर्वाह भी कर सका है। उसने पात्र, स्थिति तथा अवसर के अनुसार अंग्रेजी, उर्दू, फारसी, अरबी और स्थानीय भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया है। वे शब्द हिन्दी की प्रकृति में समा गए हैं और उसे समृद्ध, प्रभावशाली तथा सशक्त बनाते हैं। इसी प्रकार कवितांशों का प्रयोग भावों और विचारों को मार्मिक बनाता है, वह कथ्य के अभिव्यंजन में साधक है, बाधक नहीं। 'उग्र' के उपन्यासों की भाषा अपेक्षाकृत अधिक व्यंग्यात्मक, यथार्थ तथा अन्य भाषाओं के शब्दों से युक्त है। उसमें भावुकता, लाक्षणिकता, काव्यमयता आदि की अपेक्षा स्पष्टता, कटुता, तीक्ष्णता और अभद्रता मिलती है। उसमें सर्वाधिक खटकने वाली वस्तु अशिष्टता ही है, जो अश्लील शब्दों और वर्जित गालियों के प्रयोग से उत्पन्न होती है।

'उग्र' अपनी कहानियों में पात्रों की वृत्ति, आचरण, स्वभाव आदि के अनुरूप संवाद-योजना का कौशल दिखाते हैं। उनके संवादों में उपदेशात्म-

कता, निरर्थकता तथा नीरसता का अभाव मिलता है। वे नाटकीय सौन्दर्य से युक्त हैं और वस्तु-विन्यास को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से गति देते हैं। प्रतीकात्मक कहानियों के कतिपय संवाद अस्पष्ट तथा रहस्यमय हैं। उनमें कल्पना, भावुकता और सांकेतिकता की प्रधानता, छायावादी प्रभाव की ही अभिव्यंजक है। ये कहानियां छायावादी-रहस्यवादी युग में निर्मित हुई थीं। सामाजिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक कहानियों की संवाद-योजना में स्पष्टता, निर्भीकता और उग्रता मिलती है। वे कहानीकार के भावों, विचारों, मान्यताओं और 'उग्र' व्यक्तित्व को वाणी देते हैं। उनका नियोजन, इन कहानियों को सशक्त बनाता है।

वर्ण्य-विषय की दृष्टि से, उग्र के अधिकांश उपन्यासों के कथानक सामाजिक हैं। वे सामाजिक समस्याओं, कुरीतियों तथा विद्रूपताओं को प्रतिपाद्य विषय बनाते हैं। किन्तु, 'घण्टा' और 'सरकारी तुम्हारी आंखों में' के कथानक विचित्रता, अस्वाभाविकता और काल्पनिकता को अधिक महत्त्व देते हैं। इनकी शिल्पविधि पर प्रेमचन्द-पूर्व युगीन घटना-प्रधान जासूसी एवं तिलस्मी उपन्यासों का कुछ प्रभाव लक्षित होता है। रचना-शैली के अनुसार 'उग्र' के उपन्यासों के कथानक वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक, संस्मरणात्मक आदि शैलियों में निर्मित हुए हैं। रचना-लक्ष्य के आधार पर उन्हें मुख्यतः यथार्थवादी कह सकते हैं। उनमें सुगठन, संबद्धता, मौलिकता, निर्माण-कौशल, संभवता रोचकता आदि विशिष्टताएं एक सीमा तक मिलती हैं। वे कुत्सित जीवन से सम्बन्धित होने तथा अभिव्यंजना के खुलेपन को अपनाने के कारण, अश्लीलता के दोष से दूषित भी हैं।

'उग्र' के उपन्यासों के पात्र न तो प्राचीन पात्रों की अनुकृति हैं और न विदेशी पात्रों की प्रतिच्छाया बनकर आए हैं। वे अच्छे-बुरे सामाजिक जीवन से प्रेरणा पाकर, मौलिक रूप में उपस्थित हुए हैं। उनमें अधिकांश पात्र वर्गगत हैं और उनका चरित्र गतिशीलता से युक्त है। वे अपने स्वभाव, कर्म तथा व्यवहार के अनुसार उठते भी हैं और गिरते भी हैं। उपन्यासकार उनके बाह्य व्यक्तित्व को ही विश्लेषणात्मक या अभिनयात्मक पद्धति से उभारता है। जैनेन्द्र, अज्ञेय, नागर प्रभृति उपन्यासकारों के रचना-काल में विरचित उपन्यासों में भी, 'उग्र' पात्रों के आन्तरिक व्यक्तित्व को बहुत

कम महत्त्व देते हैं। यह उनके शिल्प-विधान की सीमा ही है। इसीसे उनके उपन्यासों में अधिक विकास या उत्कर्ष नहीं हुआ है। 'फागुन के दिन चार' में जगरूप, लीलालधर आदि के चरित्र-चित्रण में मनोवैज्ञानिक स्पर्श, साधारण स्तर तक ही सीमित रहा है, उसमें गहराई का अभाव मिलता है। वस्तुतः 'उग्र' की चरित्र अवतारणा, प्रेमचन्द की आदर्शवादिता और जैनेन्द्र की मनोवैज्ञानिकता से शून्य है। उसमें बहिरंग यथार्थ जीवन की गति-विधियों एवं उतार-चढ़ावों की पर्यवेक्षण-शक्ति की प्रचुरता मिलती है।

'उग्र' के उपन्यासों की संवाद-योजना सोद्देश्य है। उसी से इन उपन्यासों में नाटकीयता, कुतूहल और गत्यात्मकता का संचार हुआ है। संवाद पात्रों की बौद्धिक तथा मानसिक स्थिति के अनुरूप हैं। वे उपन्यासकार की मान्यताओं को वाणी देने में भी पूर्ण समर्थ हैं। उनमें अस्पष्टता, क्लिष्टता और रहस्यात्मकता का अभाव मिलता है। वे कथा-सूत्रों से सम्बन्धित तथा घटनाओं में सजीवता का संचार करने वाले हैं। उनके माध्यम से उपन्यास-कार पात्रों का चरित्र-चित्रण करता है, और वस्तुस्थिति को उभारता है। संवादों की भाषा का स्तर विषयानुरूप होने से, कथ्य को बल मिला है।

'उग्र' ने अपने कथा-साहित्य को रोचक तथा प्रभावशाली बनाने के लिए ही हास्य-व्यंग्य तत्व का सार्थक विनियोग किया है। उससे पाठकों को मनोरंजन की सामग्री मिलती है, सामाजिक विद्रूपताओं का उद्‌घाटन होता है और अप्रत्यक्ष रूप से, समाज सुधार की प्रेरणा भी मिलती है। कथाकार ने व्यक्ति और समाज की विकृतियों तथा विपरीतताओं को हास्य-व्यंग्य का आलम्बन बनाया है। उसे शास्त्रीय दृष्टि से 'विहसित' तथा 'उपहसित' नाम दे सकते हैं। उसमें 'स्मित' एवं 'हसित' की शिष्टता कम मिलती है। वह प्रायः मृदुल, निष्कलुष, सुसंस्कृत तथा रोमांचित करने वाला नहीं, वरन् अपने आलम्बनों के प्रति घृणा तथा विद्रोह-भाव जगाने वाला है। प्रतिपाद्य-विषय के अनुरूप हास्य अपनी सीमा का उल्लंघन करके, स्पष्ट व्यंग्य का रूप धारण कर लेता है, और उसमें कटुता तथा तीखापन समाविष्ट हो जाता है। 'उग्र' के व्यंग्यों की चोट सोद्देश्य होती है, और उसमें दुधारी तलवार का तीखापन उपलब्ध होता है। कथाकार हास्य-व्यंग्य के संचार के लिए उपमाओं, शब्दालंकारों, विचित्र भाषा आदि का प्रयोग करता है।

संक्षेप में, 'उग्र' का कथा-साहित्य गर्हित यथार्थ के उद्घाटन को प्रधान विषय बनाता है और उस पर निर्मम प्रहार करता है। इसी से प्रेमचन्द-युग में 'उग्र' का अलग व्यक्तित्व उभरता है। उनकी शैली की ओजस्विता तथा सम्मोहन-शक्ति उन्हें सभी लेखकों से पृथक् कर देती है। उनका अपना व्यक्तित्व है, जो उनके साहित्य के विषय-चयन और शैली-विधान दोनों में परिव्याप्त है। उन्होंने प्रेमचन्द-युग की आदर्शवादिता के विरुद्ध जीवन के कुत्सित अंगों का चित्रण करके एक नए पथ का निर्माण किया। उनका प्रभाव प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से, उनके परवर्ती कथाकारों पर देखा जा सकता है। श्री चतुरसेन शास्त्री, ऋषभचरण जैन, उपेन्द्रनाथ अश्क, नागार्जुन आदि ने जिस गर्हित यथार्थ, आलोचनात्मक यथार्थ या अति-यथार्थ को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है, उसके सूत्र 'उग्र' के कथा-साहित्य में ढूंढे जा सकते हैं। प्रेमचन्द-युग में जीवन के कुत्सित अंगों को वर्ण्य-विषय बनाना बड़े जोखिम का काम था, जिसे 'उग्र' ने बड़ी निर्भीकता से आरम्भ किया और उसी से उन्हें अनेक वरिष्ठ आलोचकों की बौछारों का सामना करना पड़ा। यह संयोग ही तो था कि उन्होंने एक ऐसे नीति-प्रधान आदर्शवादी युग में लिखना आरम्भ किया, जिसमें गर्हित-कुत्सित यथार्थ के अंकन को प्रोत्साहन नहीं मिल सकता था। इसलिए उन्हें आलो-चकों से सहानुभूति मिली भी नहीं। आज राजकमल चौधरी ने उनकी भूमिका लिखी हैं और ये एक ऐसे अदृश्य सूत्र का संकेत देती हैं जो 'उग्र' तक जाता है। इस प्रकार 'उग्र' का कथा-साहित्य अपना ऐतिहासिक महत्त्व भी रखता है। वह अपने गुणों से लोकप्रियता और दोषों से उपेक्षा पाता रहा है। उसमें अभिव्यंजित राष्ट्रीय चेतना, समाज-सुधार की भावना और जीवन के प्रति निःशंक दृष्टिकोण उसे सम्मान दिलाता है। उसकी भाषा-शैली की व्यंजनाएं, वक्रोक्तियां तथा तीखे-व्यंग्य-प्रहार उसे अपना उपमान आप बनाते हैं। उसकी प्रवचनात्मकता, अश्लीलता, मूल विषय से विकर्षित करने वाली रसात्मकता और अभिव्यक्ति की स्थूलता उसकी सीमाओं को सूचित करती है। फिर भी, 'उग्र' हिन्दी के विशिष्ट लेखक और शैलीकार के रूप में सदैव अमर रहेंगे। उनकी 'उग्र-शैली' तो आज भी अन्यत्र दुर्लभ है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

उपजीव्य ग्रन्थ (पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' विरचित)

१. ऐसी होली खेलो, लाल, २. कला का पुरस्कार, ३. काल कोठरी, प्रथम संस्करण, १९६४, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली
४. कढ़ी में कोयला, प्रथम संस्करण, १९५५, उग्र-प्रकाशन, दिल्ली
५. खुदाराम और चन्द हसीनों के खुतूत, अष्टम संस्करण, १९५५, दिल्ली
६. घण्टा, तृतीय संस्करण, हिन्दी पुस्तक एजेंसी, दिल्ली तथा बनारस
७. चाकलेट, तृतीय संस्करण, १९५५, टण्डन ब्रदर्स, कलकत्ता
८. चित्र-विचित्र, प्रथम संस्करण, १९६४, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली
९. जीजीजी, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली
१०. जुहू, हिन्दी पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली
११. पोली इमारत, प्रथम संस्करण, १९६४, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली
१२. पंजाब की महारानी, षष्ठ संस्करण, १९६३, गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ
१३. फागुन के दिन चार, द्वितीय संस्करण, १९६५, रणजीत प्रिन्टर्स दिल्ली
१४. मनुष्यानन्द, चतुर्थ संस्करण, १९६४, " "
१५. मुक्ता, प्रथम संस्करण, १९६४, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली
१६. दिल्ली का दलाल, पंचम संस्करण, १९६५, रणजीत प्रिन्टर्स दिल्ली
१७. यह कंचन-सी काया, प्रथम संस्करण, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली
१८. रेशमी, षष्ठ संस्करण, १९६३, गंगा-पुस्तकमाला, लखनऊ
१९. शराबी, १९६१, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली
२०. सरकार तुम्हारी आंखों में, चतुर्थ संस्करण, गंगा-पुस्तकमाला, लखनऊ
२१. सनकी अमीर, द्वितीय संस्करण, सं० २०१२ वि० " "

सहायक-ग्रन्थ-सूची

१. डॉ० एस० पी० खत्री : हास्य की रूप-रेखा, प्रथम संस्करण, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस

२. डॉ० गणेशन : हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन

३. डॉ० चण्डीप्रसाद जोशी : हिन्दी उपन्यास : समाज शास्त्रीय विवेचन, अनुसंधान-प्रकाशन, कानपुर

४. श्री जयशंकर प्रसाद : काव्य कला तथा अन्य निबन्ध

५. श्री पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' : अपनी खबर, प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

६. " " व्यक्तिगत, प्रथम संस्करण गंगा-पुस्तकमाला, लखनऊ

७. " " महात्मा ईसा, चतुर्थ संस्करण, रणजीत प्रिन्टर्स, दिल्ली

८. " " फाइल और प्रोफाइल, प्रथम संस्करण रणजीत प्रिन्टर्स, दिल्ली

९. डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा : हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन, प्रथम संस्करण

१०. श्री ब्रजरत्नदास : हिन्दी उपन्यास-साहित्य, प्रथम संस्करण, हिन्दी साहित्य-कुटीर, बनारस

११. डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल : हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास, द्वितीय संस्करण, साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग

१२. श्री शिवदानसिंह चौहान : हिन्दी गद्य-साहित्य
१३. डॉ० श्रीकृष्णलाल : आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, चतुर्थ सं०, हिन्दी परिषद् प्रकाशन, विश्वविद्यालय, प्रयाग
१४. डॉ० सुरेश सिन्हा : हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास, प्रथम संस्करण, अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली
१५. डॉ० सत्यपाल चुघ : प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि, प्रथम संस्करण
१६. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी : अशोक के फूल
17. Brown : Psychodynamics of Abnormal Behaviour.
18. Cazamian : A History of English Literature, Ch. V, Realism.
19. Forster : Aspects of the Novel.
20. Robert Louis Stevenson : A Humble Remonstrance (1884)
21. Thackery : English Humourists (1949)

पत्र-पत्रिकाएँ

१. आलोचना : १३
२. धर्मयुग : १६ अप्रैल, १९६७
३. सारिका : जनवरी १९६८

लेख

१. श्री जवाहरलाल नेहरू : नई संस्कृति की खोज (चिंतना में संकलित)
२. श्री प्रेमचन्द : उपन्यास (गद्य तरंगिणी में संकलित)
३. श्री संतराम बी० ए० : जातिवाद (चिंतना में संकलित)
४. डॉ० सत्यपाल चुघ : चन्द हसीनों के खुतूत (हस्तलिखित)